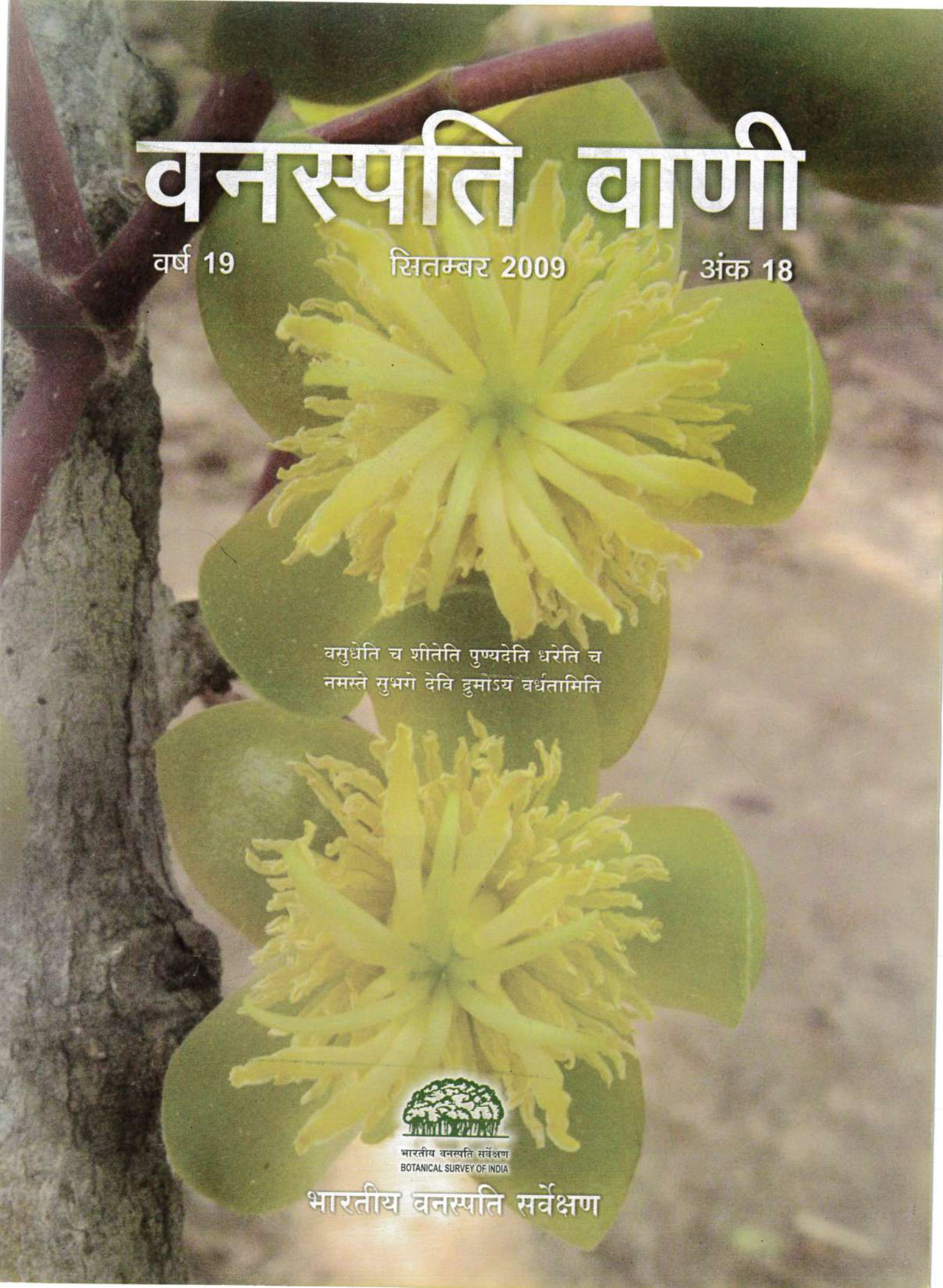

वनस्पति वाणी

वर्ष 19 सितम्बर 2009 अंक 18

वसुधेति च शीतेति पुण्यदेति धरेति च
नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोऽयं वर्धतामिति

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

© भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, **2009**
इस प्रकाशन का कोई अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित/ रिट्रिवल पद्धति से भण्डारण या इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

ISSN : 0975 – 4342

संरक्षक : डा. एम संजप्पा
प्रधान सम्पादक : डा. देवेन्द्र कुमार सिंह
सम्पादक मण्डल : डा. परमजीत सिंह
डा. प्रतिभा गुप्ता
श्री नवीन चौधरी
श्री थान सिंह

- वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रामाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिए लेखक उत्तरदायी है।

- इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है।

आवरण चित्र :

मुख आवरण : *रोडोडेन्ड्रान केसी*
(चित्र : एम. संजप्पा)

पृष्ठ आवरण : भारतीय वनस्पति उद्यान में द्विनारियल

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉमप्लेक्स, साल्ट लेक, कोलकाता - 700 064 द्वारा प्रकाशित एवं मे. इम्प्रींटा, 243/2 बी, ए.पी.सी. रोड, कोलकाता - 700 006 द्वारा मुद्रित।

विषय सूची

डार्विन : 200 वीं जयंती

1. चार्ल्स डार्विन – महान प्रकृतिविद जिसने सृष्टि को ईश्वर द्वारा रचे जाने की धारणा को चुनौती दी : एच. जे. चौधरी 1

प्रथम वाटिका : पूर्वोत्तर क्षेत्र

2. पूर्वोत्तर भारत में पाये जाने वाले कुछ विरल एवं मनमोहक आर्किड्स : संध्या ज्योति फुकन एवं सुशील कुमार सिंह 6
3. मेचुका (पश्चिम सियांग) : परिचय एवं वानस्पतिक सर्वेक्षण : कुमार अम्बरीष 10
4. असम के रंजक प्रदान करने वाले, कीटनाशक एवं महत्वपूर्ण औषधीय पौधे : एक अवलोकन : बिपिन कुमार सिन्हा एवं रमेश कुमार 14
5. मानस राष्ट्रीय उद्यान में पाये जाने वाले भारतीय हाथियों का आहार-विहार : सान्तनू दे, बिपिन कुमार सिन्हा एवं रमेश कुमार 21
6. मेघालय की वानस्पतिक विविधता : बिकारमा सिंह, बिपिन कुमार सिन्हा एवं विवेक नारायण सिंह 25
7. नोकरेक जीवमंडल के वन एवं वनस्पतियां : एक अवलोकन : बिकारमा सिंह, बिपिन कुमार सिन्हा, एस० फुकन एवं विवेक नारायण सिंह 29
8. बलपक्रम राष्ट्रीय उद्यान : अशोक बसु 35

द्वितीय वाटिका : नमभूमि

9. भारत में नमभूमि के रामसार स्थल : सुनील कुमार श्रीवास्तव 36
10. हिमाचल प्रदेश के नमभूमि –रामसार स्थल की वनस्पति विविधता : सुनील कुमार श्रीवास्तव 40
11. भोज नमभूमि : शैवालों के दृष्टिकोण से एक परिचय : एस. एल. गुप्ता 47

तृतीय वाटिका : पादप समूह

12. शैवाल जनित जैव ईंधन ऊर्जा का एक सशक्त विकल्प : प्रतिभा गुप्ता 50
13. प्रतिप्रदाह औषधि के रूप में शैवाल का उपयोग : प्रतिभा गुप्ता 54
14. शैवाल : एक अवलोकन : आर. के. गुप्ता एवं दीनेश्वर के. साह 58
15. शैवालों की बहूपयोगिता : अरविन्द कुमार 64
16. शैवाक (LICHENS) : परिचय, विविधता एवं उपयोग : विवेक नारायण सिंह 67
17. पर्णोद्भिद् मानव जीवन में कितने उपयोगी? : ए० बेनियामिन एवं सुशील कुमार सिंह 72

चतूर्थ वाटिका : पादप जाति विशेष

18. एजोला – एक बहूपयोगी जलीय पर्णांग : बृजेश कुमार एवं हरीश चन्द्र पाण्डे 81

19. भारत में सिंबीडियम की प्रजातियों का उपयोग एवं संरक्षण : राजीव गोगोई एवं सुशील कुमार सिंह 85

20. भारत के ''ज्वेल आर्किड'' : अभिषेक भट्टाचार्जी, एच० जे० चौधरी एवं दीनेश्वर कुमार साह 88

21. कैक्टस आर्किड : सुशील कुमार सिंह एवं विवेक नारायण सिंह 92

22. रोडोडेन्ड्रान्स – रोचक पौधों का एक समूह : एल० इबेमहल चनू एवं विवेक नारायण सिंह 93

23. भारत में मोरेसी कुल की प्रजातियाँ (वंश फीकस लि. के अतिरिक्त) तथा आर्थिक उपयोगिताएं : गौतम कुमार उपाध्याय, सुनील कुमार श्रीवास्तव एवं अनीस अहमद अन्सारी 97

24. पेडीकुलेरिस वंश का विशिष्ट अनुकूलन व उत्तर जीविता : आरती गर्ग एवं सौरभ सचान 104

25. सिक्किम हिमालय की पोटेन्टिला (Potentilla L.) की कुछ रोचक व सुन्दर जातियाँ : ए. ए. अन्सारी एवं ए. के. साहू 106

26. बेंत - भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक परिचय : पुष्पा कुमारी एवं परमजीत सिंह 108

27. द्विनारियल (डबल कोकोनट) का भारतीय वनस्पति उद्यान में संरक्षण : शिव कुमार एवं गिरिजा शंकर गिरि 112

28. संजीवनी – मिथक या सत्य? : प्रशान्त केशव पुसालकर एवं संजय उनियाल 117

29. एरेबिडाप्सिस थैलियाना–पादप जगत का ड्रोसोफिला : मनोज ई. हेम्ब्रम एवं बृजेश कुमार 121

30. फूल से खुशबू खफा-खफा है..... : जगदीश लाल 123

पंचम वाटिका : औषधीय वनस्पति

31. मधुमेह : समस्या और निदान : रमेश कुमार एवं बी. के. सिन्हा 124

32. वजाउल मफासिल (जोड़ों का दर्द) के यूनानी उपचार में प्रयोग की जाने वाली वनस्पतियाँ : रमेश कुमार एवं नईम अंसारी 127

षष्ठ वाटिका : विविध

33. लोक वनस्पति विज्ञान(ETHNOBOTANY) : एक अवलोकन : हरीश सिंह 'भुजवान' 129

34. ग्रह व राशियों से संबंधित वनस्पतियाँ और उनका संरक्षण : गोपाल कृष्ण एवं हरीश सिंह 'भुजवान' 134

35. भारत के दीर्घायु वृक्ष : विजय कुमार मासतकर 137

36. वट सवित्री पूजा : गौतम कुमार उपाध्याय 139

37. फलों के औषधीय गुण : थान सिंह 140

38. औषधीय गुण सम्पन्न कुछ पेड़ पौधे : नन्दलाल तिवारी 142

39. डी एन ए बारकोड से पादप अभिनिर्धारण : एम. संजप्पा एवं परमजीत सिंह 149

40. पर्यावरण समाचार (संकलन) : संजीव कुमार 151

41. अंटार्कटिका : क्या आप जानते हैं..... ? : आर. के. गुप्ता एवं श्याम किशोर महतो 152

सप्तम वाटिका : भू-मण्डलीय तापन

42. भू-मण्डलीय तापन : वर्तमान समय का सर्वाधिक चर्चित विषय : ए. के. वैश्य, ए. प्रामाणिक और सव्यसाची साहा 154

43. दाहक विन्दु की ओर बढ़ते कदम : ए० बी० डी० सेलवम 160

44. भू-मण्डलीय तापन : एक वैश्विक समस्या : सौरभ सचान 162

काव्य वाटिका

45. ''कलम बोली'' : भगवती प्रसाद उनियाल 165

46. ''क्रिकेट'' : भगवती प्रसाद उनियाल 166

47. ''अब धरती को चैन से रहने दें'' : भोला नाथ 167

48. ''भारत की प्राकृतिक सम्पदा'' : भोला नाथ 169

49. ''खुश रहो'' : अरविन्द सकलानी 170

शब्द वाटिका

50. वनस्पति विज्ञान की आधार शब्दावली : नवीन चौधरी 171

छपते छपते

51. इटानगर वन्यजीव अभयारण्य : आर. सी श्रीवास्तव व आर. के. चौधरी 174

52. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में राजभाषा कार्यान्वयन (2008-09) 177

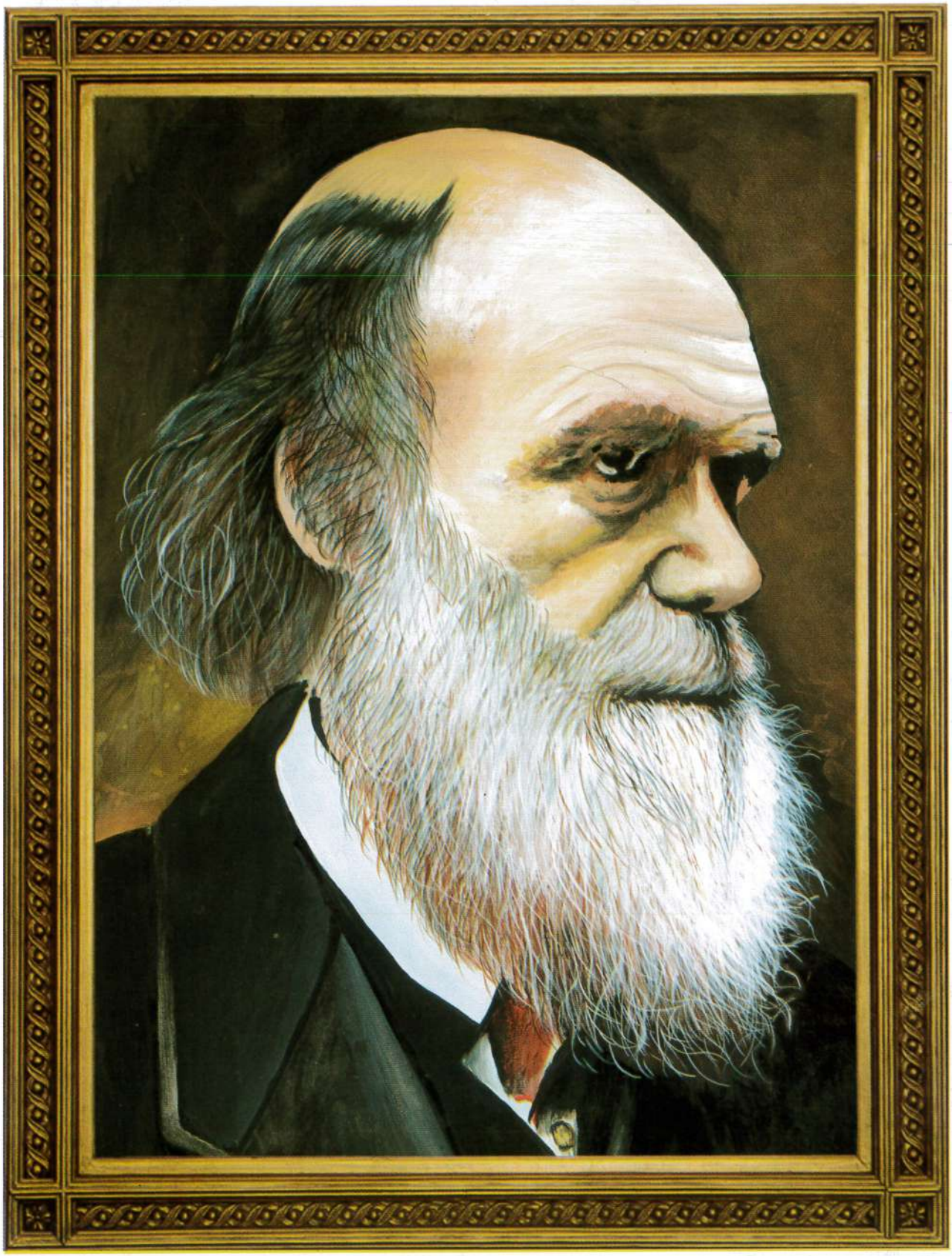

चार्ल्स राबर्ट डार्विन (1809-1882)

चार्ल्स डार्विन – महान प्रकृतिविद जिसने सृष्टि को ईश्वर द्वारा रचे जाने की धारणा को चुनौती दी

एच. जे. चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

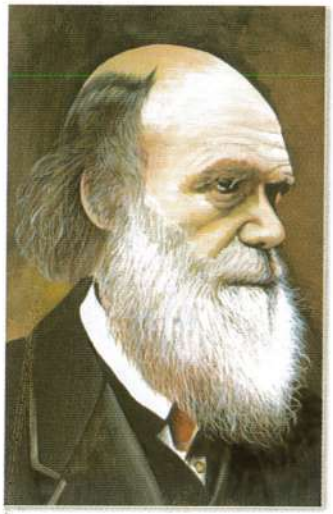

चार्ल्स राबर्ट डार्विन
(1809-1882)

''मानव की सृष्टि ईश्वर ने नहीं की है बल्कि उसका विकास एक रोंयेदार चौपाये प्राणी (बंदर) से हुआ है''। ''डार्विन के इस वक्तव्य ने उस समय सम्पूर्ण विश्व में सनसनी फैला दी और इसकी बेहद उग्र प्रतिक्रिया हुई क्योंकि उनका यह मत लगभग सभी धर्मों में उल्लेखित पृथ्वी और जीवों की उत्पत्ति के विरुद्ध था। डार्विन के सिद्धान्तों का सृष्टिवादी आज भी विरोध करते हैं जो अमेरिका से लेकर मध्य पूर्व तक मौजूद हैं। उन्होंने यह भी बताया कि सबसे शक्तिशाली व सबसे बुद्धिमान नहीं वरन् ऐसी जातियाँ जो अपने आप को बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप ढालने में सबसे अधिक सक्षम होंगी केवल वह ही इस पृथ्वी पर जीवित अथवा अस्तित्व में रहेगी। डार्विन से पहले ये माना जाता रहा था कि दुनिया अपने जन्म के समय से ही अपरिवर्तनीय रही। डार्विन ने यह सिद्ध कर कि जीव-जन्तु समय के साथ बदलते हैं, सृष्टिवाद की धज्जियाँ उड़ा दी।

गत 12 फरवरी, 2009 को महान प्रकृतिविद चार्ल्स राबर्ट डार्विन की 200 वी जयंती सम्पूर्ण विश्व में मनाई गई। प्राकृतिक चयन के उनके कालजयी सिद्धान्त से आधुनिक विकासवाद की नींव पड़ी। प्रकृति और उसमें मानव के स्थान को समझने के हमारे परंपरागत नजरिये में डार्विन ने ही पहली बार क्रांतिकारी परिवर्तन किये। उनकी अमर कृति ''ऑन द ओरिजिन ऑफ स्पीसीज बाई द मीन्स ऑफ नेचुरल सेलेक्शन'' के प्रकाशन की 150 वीं वर्षगांठ 24 नवम्बर, 2009 को मनाई जायेगी।

विगत 200 वर्षो के मानव इतिहास को तीन सिद्धांतो ने विशेष रूप से प्रभावित किया है। पहला – अलबर्ट आईन्सटाईन का सापेक्षिक सिद्धांत (Theory of Relativity), सिगमंड फ्रायड की स्वप्न व्याख्या (Interpretation of Dreams) और तीसरा –चार्ल्स डार्विन का जातियों की उत्पत्ति का सिद्धांत (Origin of Species) । इनमें से फ्रायड की व्याख्या का स्थान दूसरे अनेक सिद्धांत ले चुके हैं, जबकि आधुनिक भौतिक विज्ञान आईन्सटाईन के सापेक्षिक सिद्धान्त से क्ई प्रकाश मील दूर निकल चुका है, किन्तु डार्विन का सिद्धांत आज भी उतना ही प्रभावोत्पादक है।

चार्ल्स राबर्ट डार्विन का जन्म माउंट श्रूजबरी (Mount Shrewsbury) में 12 फरवरी, 1809 को हुआ था। उनके पिता एक डाक्टर थे। 1827 में ऐडिनबर्ग यूनिवर्सिटी से मेडिसन की शिक्षा ग्रहण करते समय एक शल्यक्रिया के दौरान (जो उस समय किसी बेहोशी की दवा दिये बिना ही की जाती थी) निकलते हुये रक्त को देख कर उन्होंने अपने चिकित्सक बनने का विचार त्याग दिया और वह क्राइस्ट चर्च कालेज, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने लगे। 1831 में डार्विन ने स्नातक की उपाधि प्राप्त की। केम्ब्रिज में अपने आवास के दौरान

डार्विन का जन्म स्थल ''द माउँट श्रूजबरी'', इंग्लैंड

''एच. एम. एस. बीगल'' नामक जहाज

डार्विन एक जीवविज्ञान के प्रोफेसर जॉन स्टीवेंस हेनस्लो (John Stevens Hanslow, 1796-1861) के सम्पर्क में आये और उनका ध्यान जंतुविज्ञान और भूगोल जैसे विषयों के प्रति आकर्षित हुआ। शीघ्र ही उन्हें एडम सेजविक (Adam Sedgewick, 1785-1873) नामक भूवैज्ञानी प्रोफेसर के साथ वेल्स (Wales) क्षेत्र में एक शिक्षण यात्रा के दौरान काफी कुछ सीखने का अवसर मिला। प्रो. हेनस्लो के प्रयासों के फलस्वरूप डार्विन को एच. एम. एस. बीगल (H.M.S. Beagle) नामक जहाज पर यात्रा करने का निमंत्रण मिला जो 26 वर्षीय कैप्टन राबर्ट फिट्जराय (Capt. Robert FitzRoy) के नेतृत्व में दो वर्षो के लिये दक्षिणी अमेरिका के तटीय क्षेत्रों के सर्वेक्षण के लिये समुद्र यात्रा पर जाने वाला था किन्तु बाद में बीगल की समुद्र यात्रा के कार्यक्रम को बढ़ाकर 5 वर्ष (1831-1836) और उसके सर्वेक्षण का क्षेत्र बढ़ाकर दक्षिणी द्वीप समूहों, दक्षिणी अमेरिकी तट व आस्ट्रेलिया कर दिया गया। ''बीगल'' एक नौसैनिक पोत होते हुये भी वैज्ञानिक शोधों लिये आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित था। डार्विन इस जहाज पर एक भूवैज्ञानिक, प्राणी एवं वनस्पति शास्त्री और सामान्य विज्ञान के जानकार के रूप में कार्य करने वाले थे। ''बीगल'' पर यात्रा करते हुये डार्विन ने विभिन्न प्रकार के आंकड़े एकत्रित कर उन पर शोधकार्य किया। इससे प्राप्त अनुभवों ने उनके द्वारा लिखी जाने वाली महान कृति की सुदृढ़ बुनियाद रखी। सन् 1840 में डार्विन ने अपनी खोजों पर आधारित ''द जूलाजी आफ द वॉयेज आफ द बीगल'' (The Zoology of the Voyages of Beagle) नामक पुस्तक प्रकाशित की।

जब जुलाई, 1837 में डार्विन ने अपनी नोटबुक में एक वृक्ष का रेखा चित्र बनाया और उसे ''विकास वृक्ष'' (Tree of Life) का नाम दिया तो उस समय उन्हें भी यह अनुमान नहीं था कि आने वाले समय में यह अध्ययन क्षेत्र की हजारों समस्याओं की व्याख्या करने में सहायक सिद्ध होगा।

डार्विन द्वारा चित्रित ''विकास वृक्ष''

''बीगल'' दक्षिणी अमेरिका के सर्वेक्षण कार्य को समाप्त कर लगभग एक वर्ष तक पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ अक्टूबर, 1836 में इंलैण्ड पहुंचा। डार्विन अब 27 वर्ष के एक अनुभवी प्रकृतिविद थे। उनके एकत्रित किये गये नमूनों को पहचान के लिये विभिन्न विशेषज्ञों जैसे पक्षियों के नमूनों को गोल्ड (Gould), जन्तुओं के जीवाश्मों (fossil Mammals) को ओवेन (Owen), सरीसृपों (Reptiles) को थामस बेल (Thomas Bell) नामक जीवविज्ञानी को भेजा गया। डार्विन स्वयं अपनी यात्रा के संस्मरणों एवं विचारों का मंथन करने एवं उन्हें सुलझाने में व्यस्त हो गये। उन्होंने अपनी व्यक्तिगत नोट बुक में अपनी यात्रा के दौरान देखे गये पशुपक्षियों के विषय में नोट लिखे और अनेको जुड़ी समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा करते रहे कि कैसे ''एक प्रजाति दूसरे में परिवर्तित हो जाती है और यदि ऐसा है तो इस प्रकार का परिवर्तन कैसे होता है?'' लगभग डेढ़ वर्षो पूर्व थामस मालथस (Thomas Malthus) के ''मानव जनसंख्या'' पर छपे लेख को पढ़कर उन्होंने अपनी जातियां की उत्पत्ति परिकल्पना में जातियों के अत्यधिक प्रजनन एवं जीवित रहने के लिये संघर्ष का एक और चरण जोड़ा और ''प्राकृतिक चयन द्वारा क्रमिक विकास'' के सिद्धांत को प्रतिपादित किया।

है। इस प्रजाति को कुछ वैज्ञानिकों ने विलुप्त होने वाले पौधों की श्रेणी में रख दिया था (जैन एवं मलहोत्रा, 1984) लेकिन अभी हाल के वर्षो में नागालैंड के मोकोक्चुंग एवं मणिपुर के जनपद सेनापति की पहाड़ियों पर जहां ये बहुतायत में उग रहे हैं से प्राप्ति से इनके विद्यमान होने की पुष्टि हो रही है। इनके पौधे अक्टूबर माह में मनमोहक पुष्प देते हैं तथा लगभग एक सप्ताह तक खिले रहते हैं। इसके पुष्प अति सुन्दर होते हैं जिसके कारण बागवानी के शौकीन तथा पुष्पोत्पादन करने वाले लोगों के बीच एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

सिलोगाइन हितेन्द्री

सिलोगाइन हितेन्द्री (Coelogyne hitendrae) : इस प्रजाति की खोज सर्वप्रथम नागालैंड से 1978 में हुई। यह भारतवर्ष की स्थानिक प्रजातियों में से एक है। इसके पुष्प के लेबेलम किनारों पर लहरदार तथा पृष्ठ पर नारंगी पीले रंग के घब्बे रखने के कारण देखने में शोभनीय तथा वंश की अन्य नजदीकी प्रजातियों जैसे सि० निटिडा, सि० पंक्टुलाटा आदि से भिन्न हैं। इस प्रजाति की पुनः खोज नागालैंड के सारामती पर्वत से हाल में ही हुई है। इनके पौधे अप्रैल से मई माह के बीच पुष्पन करते हैं।

डेन्ड्रोबियम पेरिसाइ

डेन्ड्रोबियम पारिशाई (Dendrobium parishii) : इस प्रजाति की खोज म्यान्मार से 1863 में हुई है। भारत में यह अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर तथा मिजोरम राज्य में पायी जाती है। यह प्रजाति भारत के अतिरिक्त अन्य देशों जैसे म्यान्मार, थाइलैंड एवं चीन में भी पायी जाती हैं। इसके पौधे सामान्यतः आकार मे छोटे तथा पुष्पन के समय पत्ती विहीन होते हैं। यह सितम्बर से अक्टूबर माह के बीच पुष्पन करते है। इसके पुष्प आकर्षक, बैगनी रंग के होते हैं जो कि खिलने के एक सप्ताह तक तरोताजा बने रहते हैं।

होलिकोग्लोसम अमेसिएनम

होलिकोग्लोसम अमेसिएनम (Holcoglossum amesianum) : भारत में इस प्रजाति की खोज मणिपुर के जनपद सेनापति की पहाड़ियों से हुई है। यह प्रजाति पूर्व में वंडा एमेसिएना (Vanda amesiana) के नाम से जानी जाती थी। यह प्रजाति भारत के अतिरिक्त अन्य देशों जैसे म्यान्मार, चीन, लाओस, थाइलैंड एवं वियतनाम में भी पायी जाती है। वैसे तो यह प्रजाति पुष्पोत्पादन के लिए पश्चिम बंगाल के कलिम्पांग में कुछ नर्सरियों में उगाई जा रही है लेकिन अपने प्राकृतिक वासों में विरल है। इसके पौधे वांडा एवं पेपेलिओनेन्थे के पौधों से समानता रखते हैं लेकिन कुछ विशिष्ट लक्षणों के आधार पर इन्हे आसानी से पहचाना जा सकता है। इनके पौधे अप्रैल माह में पुष्पन करते हैं। इनके मनमोहक एवं सुन्दर पुष्प विविध रंग के गुलाबी-बैंगनी, गुलाबी व कभी-कभी सफेदी लिए हुए होते हैं।

हाइग्रोचिलस पारिशाई (Hyfrochilus parishii) : इस सुन्दर एवं आकर्षक प्रजाति की खोज म्यान्मार से 1867 में हुई हैं। यह प्रजाति भारत के पूर्वोत्तर राज्यों (अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मिजोरम) में पायी जाती है। यह भारत के अतिरिक्त अन्य देशों जैसे लाओस, थाइलैंड एवं

में डॉरिटिस ब्रेसिएना (Doritis braceana) नाम से भूटान से की। भारत में यह पूर्वोत्तर राज्यों (अरूराचल प्रदेश, मणिपुर) में तथा पड़ोस के देश चीन में पायी जाती है। इसके पौधे पुष्पन कें समय पत्ती विहीन होते हैं। पत्तियां सामान्यतः पुष्प झड़ने के बाद आच्छादित होती है। इनकी जडें मोटी एवं चौडी मेजबान वृक्षों से लिपटी होती हैं। पुष्पक्रम 5-10 गुलाबी-बैंगनी रंग के सुन्दर पुष्प धारण करते हैं जो कि लम्बे समय (दिन) तक खिले रहते हैं। इनके पौधे मई से जून माह के बीच पुष्पन करते हैं।

वियतनाम में भी मिलती है। इनके पौधे मई-जून माह में सुगंधित एवं मनमोहक पुष्प देते हैं तथा लम्बे समय तक खिले रहते हैं। इनके पुष्पों के वाह्यदल एवं दलपुंज के पार्श्व मटमैले हरे रंग के जिस पर लाल भूरे रंग के धब्बे एवं अधर गुलाबी रंग के होने के कारण शोभनीय हैं जिसके कारण यह बागबानी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

किंगीडियम ब्रेसिएनम (Kingidium braceanum): इस सुन्दर प्रजाति की खोज जे० डी० हुकर ने सन् 1890

पेन्किमिया नागालैंडेंसिस फुकन एवं ओडिओ (Penkimia nagalandensis) : इस आकार में छोटे किन्तु रोचक वंश एवं प्रजाति की खोज अभी हाल ही में सन् 2007 में नागालैंड से हुई है। इसके अपुष्पी पौधे (vegetative plants) एसोसेट्रम सेमिटेरेटिफोलियम (Ascocereum semiteretifolium), एसोसेट्रम हिमेलेइकम (A. himalaicum) के पौधों से समानता रखते हैं लेकिन पुष्पीय लक्षणों में एकदम भिन्न हैं। इस रोचक वंश एवं प्रजाति की खोज पर 2007 में छपे लेख के बाद अट्रेच्ट (Utrecht) नीदरलैंड के एक आर्किड प्रेमी ने लेखकों को सूचित किया कि इसी तरह के पौधे वहां की नर्सरियों में भी उग रहे हैं। उन्होंने यह भी बताया कि ये पौधे कुछ वर्ष पहले जर्मनी की एक नर्सरी से कुछ पौधों के साथ जो कि म्यान्मार, थाइलैंड एवं वियतनाम से लाए गये थे के साथ आए थे। इस सूचना से हम यह अंदाजा लगा सकते हैं कि इनकी प्राप्ति पड़ौसी देशों मे भी सम्भव है। इनके पौधो मे पुष्पन फरवरी माह में होता है। नीदरलैंड वासी आर्किड प्रेमी के अनुसार इनके खिले पुष्पों से रात्रि 12 बजे के आसपास भीनी भीनी सुगंध बिखरती है। इनके पौधों का आकार अति छोटा होने से लोग इनको छोटे आवासीय स्थलों में भी आसानी से उगा सकते हैं।

डार्विन को 24 जनवरी, 1839 को ''फेलो ऑफ रॉयल सोसाइटी'' (Fellow of Royal Society) की उपाधि से सम्मानित किया गया। उनका विवाह 29 नवंम्बर, 1839 को एम्मा वेजवुड (Emma Wedgewood) के साथ सम्पन्न हुआ।

डार्विन ने 1846 में ''द जिओलॉजी ऑफ द वॉयेज ऑफ द बीगल'' का तीसरा एवं अंतिम खण्ड पूरा कर प्रकाशित किया जो काफी लोकप्रिय हुआ। जुलाई, 1858 में डार्विन और अल्फ्रेड रसेल वालेस द्वारा (Alfred Russell Wallace) ''प्राकृतिक चयन द्वारा क्रमिक विकास'' (Evolution through natural selection) पर लिखित शोधपत्र लिनिअन सोसाइटी, लंदन (Linnaean Society, London) में पढा गया जो बाद में प्रकाशित भी हुआ। इसी समय डार्विन ने ''प्रजातियों की उत्पत्ति'' (Origin of Species) का लेखन प्रारंभ किया जो 24 नवम्बर, 1852 को ''ऑन द औरिजिन ऑफ स्पीसीज बाइ द मीन्स ऑफ नेचुरल सेलेक्शन'' नामक शीर्षक की पुस्तक के रूप में लंदन से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक की 1,250 प्रतियाँ छापी गई जो पहले दिन बिक गई। 7 जनवरी, 1860 को इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण की 3000 प्रतियाँ छापी गई। आने वाले वर्षों में डार्विन ऐसे अनेक विषयों पर कार्य करते रहे, जिनका उस समय तक कोई हल नहीं निकाला जा सका था, जैसे ''परिवर्तन और वंशानुक्रमता'' (Variation & Heredity) उन्होंने 1868 में इसे प्रकाशित किया। बाद में भी वे पेड़ पौधों के संकरण (hybridization) और भिन्नता (Variation) पर कार्य करते रहे। सन् 1863 में डार्विन ने आरोही और कीटभक्षी पौधों (Climbing & insectivorous plants) पर प्रयोगात्मक कार्यो की शुरूआत की जो उनकी मृत्यु पर्यन्त जारी रही। उन्हें 30 नवम्बर, 1864 को, रॉयल सोसायटी द्वारा कोपले मेडल (Copley Medal of the Royal Society) से सम्मानित किया गया। 19 फरवरी, 1872 को ''ओरिजिन ऑफ स्पीसीज'' के छठवें संस्करण की 3000 प्रतियां छापी गई। डार्विन ने अपनी एक और ख्याति प्राप्त पुस्तक ''द एक्सप्रेशन ऑफ द इमोशन्स इन मैन एंड एनीमल्स'' 26 नवम्बर, 1872 को प्रकाशित किया।

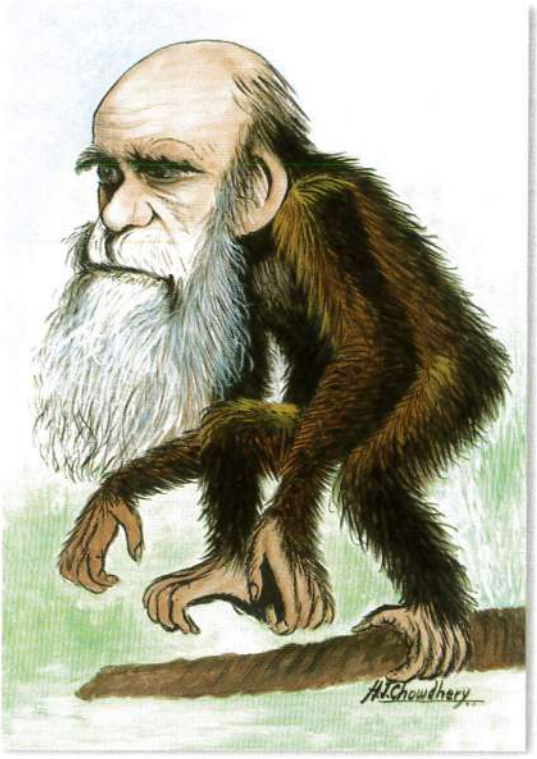

एक चित्रकार द्वारा बनाया गया उनका कार्टून

डार्विन के सम्मान में इंग्लैण्ड में जारी हुआ 2 पाउंड का सिक्का

19 अप्रैल, 1882 को 73 वर्ष की आयु में डार्विन की डाऊन हाउस, केन्ट, इंग्लैण्ड में मृत्यु हुई।

डार्विन ने जातियों के विकासक्रम के सिद्धांत द्वारा विश्व को बताया कि किस प्रकार लम्बे भूवैज्ञानिक समय (Geological time) में भौगोलिक, पारिस्थितिकी और पर्यावरण की निरंतर बदलती हुई परिस्थितियों के फलस्वरूप जीव–जन्तुओं की जातियों की शारीरिक संरचना, आकार, व्यवहार, आहार इत्यादि में आमूल परिवर्तन हुये। अपने इस सिद्धांत को सिद्ध करने के लिये उन्होंने जीवाश्मों (fossils), पशु-पक्षियों व तेजी से रूपान्तरित होते हुये सूक्ष्म जीवियों विशेषतया जीवाणुनाशक प्रतिरोधी जीवाणुओं (antibiotic resistant bacteria) के उदाहरण प्रस्तुत किये।

डार्विन की इस परिकल्पना का स्रोत और प्रेरणास्थल होने का श्रेय मुख्य रूप से गालापागोस द्वीप (Galapagos island) को जाता है। डार्विन ने अपने विकासक्रम को सिद्ध करने के लिये जिन अकाट्य प्रमाणों को विश्व के सामने रखा उनमें इन द्वीपों पर पाये जाने वाले प्राणियों का विशेष स्थान है, जिनका अध्ययन उन्होंने अपनी 5 वर्षो की "बीगल" यात्रा के समय किया था। गालापागोस द्वीप समूह बिषुवद रेखा (Equator) पर इक्वाडोर (Equador) के 1000 कि.मी. पश्चिम में स्थित है। इस द्वीप पर उन्होंने अनेकों जीवजन्तुओं को देखा जिनमें पक्षी, कछुये, लैण्ड ईगुआना, मैरीन ईगुआना, चूहे, मछलियां आदि प्रमुख थे जिन्होंने उन्हें विशेष प्रभावित किया जो बाद में उनकी विकास की परिकल्पना का आधार स्तम्भ बने।

गलापागोस कछुआ

उन्होंने पाया कि गालापागोस द्वीपों पर फिन्च (Finch) की 13 जातियां रहती हैं जिन्हें अब डार्विन फिंचेज (Darwin finches) नाम से जाना जाता है। ये सभी एक ब्लू-ब्लेक ग्रासक्विट फिंच नामक जाति (blue-black grass quit finch) –*वोलाटिना जाकारिना (Volatina jacarina)* से विकसित (evolved) हुई है जो दक्षिणी अमेरिका के प्रशान्त महासागर तट पर बहुतायत से मिलती हैं।

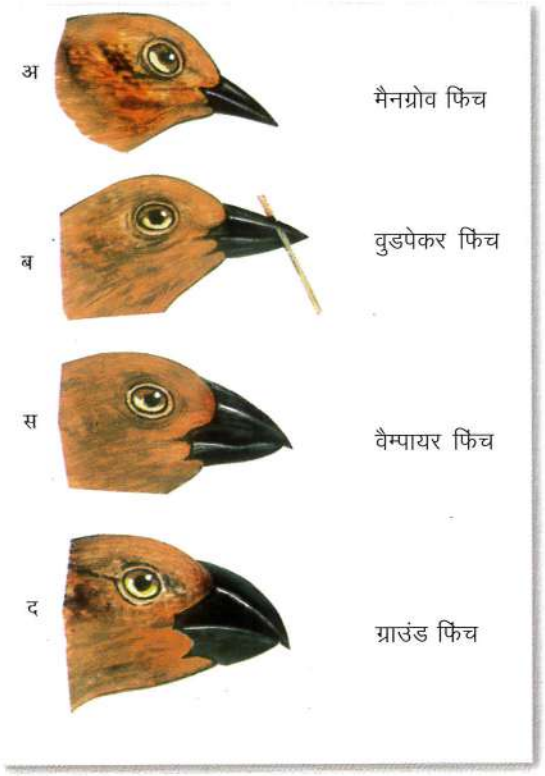

डार्विन के फिंच पक्षी :

गालापागोस द्वीपों पर आने के बाद इन फिंचों की चोंच (bill) के स्वरूप और आकार में हुये परिवर्तन, जो इस नये प्राकृतवास में आकर विभिन्न प्रकार के आहार ग्रहण करने के फलस्वरूप उत्पन्न हुये, उनके विशिष्टीकरण (Specialization) को दर्शाता है, जैसे ग्राउँड फिंच (Ground finch) जिनकी भारी चोंच कछुओं, थल एवं समुद्री ईगुआना (Tortoises, land and marine Iguanas) के शरीर से कीड़े निकाल कर खाने व अन्य जीवों के अंडों को चट्टान पर तोड़ कर अन्दर से निकले पदार्थ खाने के लिये; वैम्पायर फिंचेज (Vampire finches) जिनकी पैनी चोंच अन्य प्राणियों के मांस में प्रविष्ट होकर उनका रक्त पीने के लिये, वुडपेकर फिंच (Woodpecker finches) की चोंच पेड़ों की पतली टहनी अथवा नागफनी (Cactus) का कँाटा पकड़ कर उसे औजार (tools) की तरह प्रयोग कर सूखे वृक्षों की डालों व तनों से भोजन के लिये कीट पतंगों के लार्वा (Larva) खोदकर निकालने के लिये परिवर्तित हो गई, जबकि मैनग्रोव फिंच (Mangrove finch) की चोंच जमीन पर गिरे सड़े हुये पत्तों व जैव पदार्थ में रहने वाले कीड़े-मकोड़ों आदि को निकाल कर उनका आहार करती है।

डार्विन का क्रमिक विकासवाद
(Darwin's Theory of Evolution)

सैकड़ों जीव जन्तुओं, पेड़ पौधों पर लगभग 30 वर्षो तक शोध करने के उपरान्त सन् 1858 में डार्विन ने अपने ''प्राकृतिक चयन द्वारा क्रमिक विकास'' के सिद्धान्त (Theory of Evolution by Natural Selection) का प्रतिपादन किया।

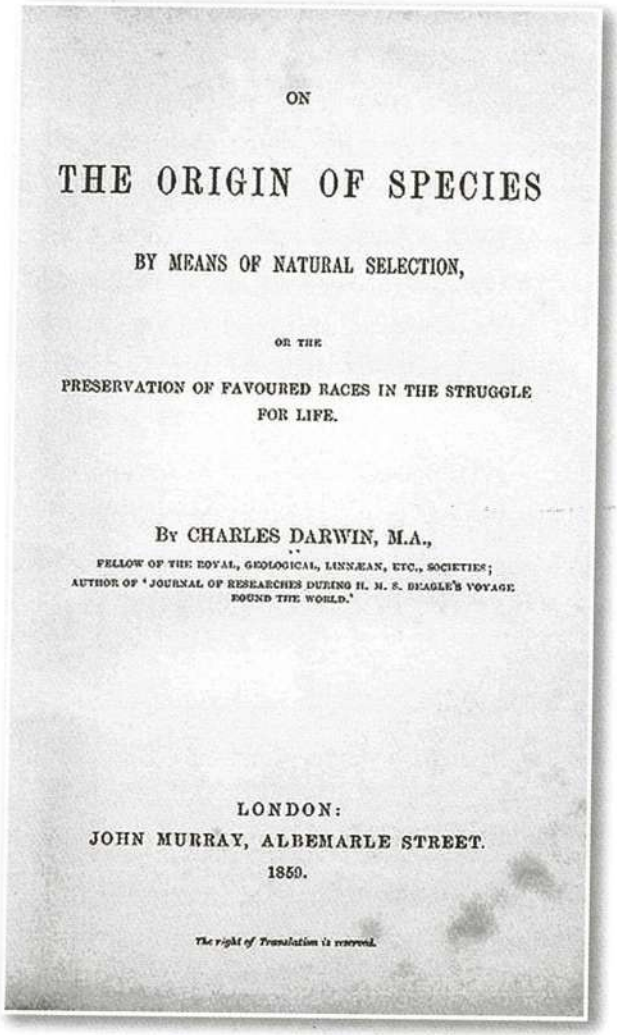
ON

THE ORIGIN OF SPECIES

BY MEANS OF NATURAL SELECTION,

OR THE

PRESERVATION OF FAVOURED RACES IN THE STRUGGLE FOR LIFE.

By CHARLES DARWIN, M.A.,

FELLOW OF THE ROYAL, GEOLOGICAL, LINNÆAN, ETC., SOCIETIES;
AUTHOR OF 'JOURNAL OF RESEARCHES DURING H. M. S. BEAGLE'S VOYAGE ROUND THE WORLD.'

LONDON:
JOHN MURRAY, ALBEMARLE STREET.
1859.

The right of Translation is reserved.

डार्विन की प्रसिद्ध कृति ''औरिजिन ऑफ स्पीसीज''

डार्विन के इस सिद्धान्त का मूलभूत आधार है कि जीव-जन्तुओं की विभिन्न जातियों की उत्पत्ति अति साधारण जीवों (Simple life forms) द्वारा हुई है। ये साधारण जीव लगभग 3 अरब वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर विकसित हुये थे जबकि इस पृथ्वी की आयु लगभग 4.5 अरब वर्ष है। इस सिद्धान्त के अनुसार जीवों का विकास प्राकृतिक चयन (Natural Selection) द्वारा हुआ है। इस सिद्धान्त के निम्नलिखित मुख्य बिंदु हैं :–

– किसी भी जाति में पाये जाने वाले सभी व्यष्टियों (individuals) में व्यापक भिन्नता दिखाई देती है।

– यह व्यष्टिगत विभिन्नता उनमें पायी जाने वाली जीनों (Genes) की भिन्नता के कारण उत्पन्न होती है।

– ऐसे जीव जिनके गुण अपने पर्यावरण के अनुरूप होते हैं वे ही जीवित रहने व प्रजनन में सफल होते हैं। (Survival of fittest)

– ऐसी जीन (gene) जो एक जीव को सफलतापूर्वक जीवित रहने में सहायक होती है वे अगली पीढ़ी की संतानों (offspring) में स्थानान्तरित होती है।

– ऐसे जीव जिनके गुण अपने पर्यावरण के अनुकूल नहीं होते हैं वे अधिक काल तक जीवित नहीं रहते और विलुप्त हो जाते हैं।

———

पूर्वोत्तर भारत में पाये जाने वाले कुछ विरल एवं मनमोहक आर्किड्स

संध्या ज्योति फुकन एवं सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

आर्किड्स पुष्पी पौधों के समूह में एक अति महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ये अपनी पुष्पीय सुंदरता, आकारकीय विविधता एवं दीर्घ पुष्पन काल के लिए सर्वविदित हैं। पुष्पों की सुंदरता एवं अति विशिष्ट संरचना के कारण इनके कई जाति समूह उपनामों से भी जाने जाते हैं जैसे ज्वेल आर्किड (एनैक्टोकाइलस प्रजातियां) मॉथ आर्किड (फैलेनॉप्सिस प्रजातियां) लेडीज स्लिपर आर्किड (पैफियोपेडिलम् प्रजातियां), बी आर्किड (ऑफिस प्रजातियां), स्पाइडर आर्किड (एस्मेराल्डा प्रजातियां), मिलीटरी आर्किड (आर्किस प्रजाति), फॉक्सटेल आर्किड (रिकोस्टाइलिस रिट्सूसा) आदि। आर्किड्स आर्किडेसी कुल से संबंधित हैं जो कि एकबीजपत्री पौधों का सबसे बड़ा कुल माना जाता है। वर्तमान में इनकी 25,000 से 30,000 प्रजातियां ज्ञात हैं जो कि विश्व के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों, विशेषकर दक्षिणपूर्वी एशिया, भारत, चीन, जापान, फिलिपींस, आस्ट्रेलिया, यूरोप, दक्षिण एवं केन्द्रिय अमेरिका तथा दक्षिण अफ्रिका में बहुतायत में मिलती हैं। वैसे तो इस समूह के पौधे प्रायः नम छायादार स्थानों में उगना पसंद करते हैं लेकिन अंटार्कटिक महाद्वीप, प्रमुख मरूस्थलों को छोड़कर लगभग सभी स्थानों एवं सभी तरह के आवासों में पाये जाते हैं।

वर्तमान में हमारे देश के विभिन्न पादप भौगोलिक क्षेत्रो में आर्किड्स की लगभग 1200 प्रजातियां पायी जाती हैं। सर्वाधिक लगभग 900 प्रजातियों के साथ पूर्वोत्तर भारत (असम, अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा एवं सिक्किम) देश का आर्किड बहुलता वाला क्षेत्र है। यहां पर पायी जाने वाली प्रजातियों में से अनेको यहां की स्थानिक तथा पुष्पोत्पादन, बागवानी एवं संस्करण में उपयोगी हैं। परन्तु पिछले कुछ वर्षो से बढ़े अवैध व्यापार एवं वनों के अंधाधुंध कटान के कारण इनकी संख्या एवं प्राकृतवासों में कमी हुई है तथा अनेको प्रजातियां संकटग्रस्त होकर विलुप्त होने को हैं। प्रस्तुत लेख में ऐसी ही कुछ विरल एवं मनमोहक प्रजातियों के बारे में जानकारी दी गयी हैं।

आर्मोडोरम सेनापतिएनम

आर्मोडोरम सेनापतिएनम (Armodorum senapatianum) : इस सुन्दर एवं विरल प्रजाति की खोज मणिपुर के जनपद सेनापति की पहाड़ियों से हाल में ही हुई है। यह प्रजाति भारत में आर्मोडोरम वंश की प्रथम प्रतिनिधि भी है। प्राप्ति स्थान पर केवल कुछ ही पौधों के मिलने के कारण ही इसे विरल पौधों की श्रेणी में रखना उचित है। जहां पर एक तरफ इसके अपुष्पित पौधे वांडा के पौधों से समानता रखते है वहीं दूसरी ओर इनके पुष्प आर्मोडोरम जैसे हैं। इनके पौधे जून माह में सुगंधित एवं मनमोहक पुष्प देते हैं तथा 10-14 दिनों तक खिले रहते हैं।

बल्बोफिलम रोट्सचिल्डिएनम

बल्बोफिलम रोट्सचिल्डिएनम (Bulbophyllum rotschildianum) : इस प्रजाति की खोज सर्वप्रथम दार्जिलिंग के आसपास की पहाड़ियों से 1885 में सिरोपेटेलम रोस्चिल्डिएनम (Cirrhopetalum rotschildianum) के नाम से हुई। यह भारतवर्ष की स्थानिक प्रजातियों में से एक

फोलियोडाटा वाटाई (Pholiodata watti) : इस प्रजाति की खोज असम से 1897 में हुई है। इस प्रजाति को पुनः अरूणाचल प्रदेश के सुभांसिरी जनपद से 1961 एवं 1982 में तथा असम की उत्तर कछार पहाड़ियों से 1982 मे की गयी। यह सुन्दर विरल प्रजाति भारत में पायी जाने वाली स्थानिक प्रजातियों में से एक है। इनके पौधे मई से जून माह के बीच में पुष्पित होते हैं तथा हफ्तों तक खिले रहते हैं।

प्लिओन सेक्सीपोला (Pleione saxicola) : इस सुन्दर प्रजाति की खोज चीन से 1987 में हुई है। भारत में इस प्रजाति की खोज अभी हाल में ही अरूणाचल प्रदेश की देबांग घाटी में स्थित मेहाओं वन्य जीव अभयारण्य से लगभग 1300 मी० की उंचाई से की गयी है। यह प्रजाति पूर्व में पायी जाने वाली पॉच प्रजातियों प्लिओन प्रेकॉक्स, प्लिओन मैकुलेट, प्लिओन हुकेरिएना, प्लिओन ह्युमिलिस, प्लिओन लेजेनेरिआ (P. praecox, P. maculate, P. hookeriana, P. humilis, P. lagenaria) के अतिरिक्त है। यह प्रजाति भारत के अतिरिक्त उत्तर पश्चिमी यूनान एवं दक्षिण पूर्वी तिब्बत में 2400-2500 मी० की उंचाई तथा पूर्वी भूटान में 2880 मी० की उंचाई पर पायी जाती है। इसके पुष्प सामान्य अवलोकन में प्लिओन प्रेकॉक्स (P. praecox) के पुष्पों से समानता दिखाते हैं लेकिन आभासी गांठों एवं लेबेलम आदि लक्षणों के पृथक होने के कारण इन्हे आसानी से पहचाना जा सकता है। इनके पौधे सितम्बर माह में पुष्पित होते है।

उपरोक्त वर्णित प्रजातियों के अतिरिक्त हमारे देश मे आर्किड्स की अनेको प्रजातियां हैं जो कि पुष्पोत्पादन, बागवानी एवं संस्करण में उपयोगी हैं तथा वाणिज्य के क्षेत्र में इनकी काफी मांग है। परंतु बढ़ती मानवीय आकांक्षा फलस्वरूप प्राकृतिक संपदा का अवैध दोहन, व्यापार एवं वनों के कारण इनकी प्रजातियां संकटग्रस्त हो चुकी हैं या संकटग्रस्त होकर विलुप्त होने के कगार कर पहुंच चुकी हैं। इन्ही तथ्यों को ध्यान मे रखते हुए अनेको देशों ने कई कठोर नियम बनाये हैं। समूचे आर्किडेसी कुल को ''साइटिस'' (Convention on International Trade of Endangered Species of Flora and Fauna) के परिशिष्ट-II सम्मिलित किया गया है जिसके अनुसार कोई व्यक्ति या देश बिना अनुमति के व्यापार नही कर सकता है। इसके परिशिष्ट-I में आर्किड्स के दो वंश एवं सात प्रजातियां रखी गयी हैं जिनका व्यापार पूर्ण प्रतिबंधित है। आज विश्व समुदाय के लिए यह अनिवार्यता बन गई है कि इन सुन्दर मनमोहक, संकटग्रस्त प्रजातियों का संरक्षण आधुनिक तरीकों जैसे उतक संवर्धन, जेनेटिक इंजीनियरिंग आदि को अपनाकर करे। तभी इन प्रजातियों पर मडराए संकट को टाला जा सकता है।

———

मेचुका (पश्चिम सियांग) : परिचय एवं वानस्पतिक सर्वेक्षण

कुमार अम्बरीष
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

भारतवर्ष के पूर्वी हिमालयी क्षेत्र में स्थित ''अरूणाचल प्रदेश'' अपनी अनूठी प्राकृतिक आभा एवं विलक्षण जैव विविधता के लिए विश्व विख्यात है। यहां के हरे-भरे वन, सुंदर नदियां, झरने एवं विविध जनजातियां वनस्पति प्रेमियों एवं शोधकर्ताओं को हमेशा से ही आकर्षित करते हैं। प्रदेश में 16 जिले हैं एवं उनमें 25 से अधिक जनजातियां निवास करती हैं। प्रत्येक जिले एवं जनजाति की कुछ न कुछ विशेषता है एवं अलग पहचान है। ऐसी ही विशेषताओं से सराबोर प्रदेश के पश्चिम सियांग जिले में एक अतिसुन्दर पर्वतीय घाटी ''मेचुका'' स्थित है जो अपने प्राकृतिक सौन्दर्य, सघन वनों एवं वनस्पतियों के लिये विशिष्टता बनाये हुये है।

''मेचुका'' 28°35" –29°42" उत्तरी अक्षांश एवं 94°17"– 95°07" पूर्वी देशान्तर के मध्य में स्थित है जिसका कुल क्षेत्रफल 1600 वर्ग किमी है। समुद्रतल से 2988 मी. की ऊंचाई पर स्थित ''मेचुका'' जिले का सुदूरवर्ती अंतिम सर्किल क्षेत्र है जो तिब्बत (चीन) से अन्तर्राष्ट्रीय सीमा का निर्धारण करता है। यह जिला मुख्यालय अैलोंग से लगभग 240 किमी की दूरी पर स्थित है एवं पूर्णतया पर्वतीय क्षेत्र है। चारों ओर से यह 3500–6000 मी.ऊंची बर्फीली पहाड़ियों से घिरा हुआ है, इसलिये यहां के वन एवं वनस्पतियों में भी प्रचुर विविधता पायी जाती है।

यहां की प्रमुख जातियों में बौद्ध धर्म का अनुसरण करने वाली मेंबा जनजाति एवं दोनी-पोलो धर्म का अनुसरण करने वाली गापो व बोकर जनजाति के लोगों की बहुलता है। अन्य लोगों में बोरी, गालोंग एवं उनकी उपजातियां जिसमें रीबा, मिनयोंग, बोकारी, तातर आदि मुख्य है, भी निवास करती हैं। कृषि एवं बागवानी इनका मुख्य व्यवसाय है जिसमें धान, मंडुआ, मक्का, आलू, सोयाबीन, टमाटर, बंद गोभी, नाशपाती, सेव, पुलम और आडू आदि प्रमुख हैं। अपने दैनिक जीवन की अन्य मूलभूत आवश्यकताओं के लिये ये यहां के वन एवं वनस्पतियों पर भी निर्भर करते हैं। इनमें जंगली सब्जियां, प्रकंद, औषधियां, पशुओं के लिये चारा एवं जलावन की लकड़ी आदि प्रमुख हैं।

वानस्पतिक सर्वेक्षण कार्य

''मेचुका'' सीमांत क्षेत्र होने के कारण एवं मूलभूत सुविधाओं एवं सड़कों के अभाव में पूर्व में यहां पर पहुंचना अत्यन्त कठिन था। इसलिये यहां का व्यापक वानस्पतिक सर्वेक्षण भी नही हो पाया। वर्तमान में केन्द्रीय व अरूणाचल राज्य सरकार एवं ग्रेफ के अथक प्रयासों से मेचुका को मुख्य सड़क मार्ग से जोड़ा जा चुका है। तत्पश्चात् सर्वेक्षण के साथ-२ पर्यटन एवं विकास में भी तीव्र गति से वृद्धि हो रही है।

यहां पर तापमान सामान्यतः 15–20 डिग्री से. के मध्य रहता है व सर्दियों में अक्टूबर माह से मार्च माह तक यह शून्य से भी नीचे चला जाता है, जिसके कारण यहां इस मौसम में भारी हिमपात (200-220 से.मी.) होता है। मार्च से सितम्बर माह के बीच वर्षा भी प्रचुर मात्रा में होती है।

मेचुका सर्वेक्षण के लिये मैनें अपने दल के साथ विभागीय कार्यक्रमानुसार दिनांक 11.03.2008 को इटानगर से प्रस्थान किया। ईटानगर से मेचुका की दूरी लगभग 620 कि.मी. है अतः प्रथम पड़ाव लीकाबाली (लोअर सुबनसिरी) में किया गया। यहां से हम अगले दिन शाम को पश्चिम सियांग जिले के मुख्यालय अैलोंग पहुंचे जो सियांग नदी के तट पर बसा एक घनी आबादी वाला क्षेत्र है। यहां पर नदी के किनारे - किनारे उष्ण कटिबंधीय, सदाबहार वन एवं बांस के वनों का मिश्रण देखने को मिला जिसमें सिड्रेला तूना, टर्मिनेलिया मायरोकार्पा, ट. बेल्लिरिका, दुआबंगा ग्रेंडीफ्लोरा, ऐल्टिजिया एक्सेल्सा, बॉम्बेक्स सीबा, स्टर्कुलिया विल्लोसा आदि के वृक्ष एवं बैम्बूसा, बियोहोजिया, साइजोस्टेकियम आदि बांसों की प्रजातियां दृष्टिगोचर हो रही थी।. नदी के किनारे एक जलीय पौधा *पिस्टिया स्ट्रेटियोटिस* भी दृष्टिगोचर

हो रहा था जिसे यहां के गांलोग जनजातीय लोग हड्डी टूटने पर जोड़ने हेतु प्रयुक्त करते हैं।

अगले दिन सभी तैयारियों के साथ प्रातः 6 बजे अैलोंग से मेचुका के लिये प्रस्थान किया। अैलोंग से काइंग तक का रास्ता सीधा एवं सरल था जिसमें चारों ओर पहाड़ियों पर उपोष्ण कटिबंधीय वनों की छटा मिल रही थी। हल्की बारिश के कारण मौसम सुहावना था। यहां पर नम एवं छायादार वनस्पतियों की बहुलता देखने को मिल रही थी जिसमें सिन्नामोमम, डाइसोजाइलम, सेपियम, इलियोकार्पस, विशकोफिया, मेसुआ आदि वृक्ष प्रजातियां प्रतीत हो रही थी। काईंग से रो तक का रास्ता बडा घुमावदार एवं कठिन था। जैसे ही थुम्बिन होते हुये रो पहुंचे, कठिन चढ़ाई एवं जगह-जगह पर टूटे हुये रास्ते के कारण घने जंगलों के बीच हमारे वाहन का इंजन बंद हो गया। दल के ड्राइवर श्री अब्दुल हुसैन की लाख कोशिशों के बाद भी वाहन स्टार्ट नही हुआ अतः ग्रेफ के वाहन की मदद से किसी तरह टाटो पहुंचे जहां से मेचुका लगभग 45 कि.मी. दूर था, लेकिन भारी वर्षा के कारण रास्ते में भूस्खलन (लैण्डसलाइड) हो गया था व आगे का मार्ग अवरूद्ध था, इसलिए हमने रात्रि विश्राम टाटो के ही ग्रेफ कैम्प में किया। इस क्षेत्र में समशीतोष्ण एवं शीतोष्ण वनों का मिश्रण पाया जाता है यहां पर *माईकेलिया ग्रिफीथी, पाइनस वालिचियाना, एलनस नेपालेन्सिस, ऐसर* जाति आदि वृक्षों की बहुलता है, अन्य वनस्पतियों में यहां पर वर्जीनिया, रोजा, आर्टिमिसीया, विगोनिया एवं कैलेमस की जातियां दिखायी दे रही थी। हमने यहां फोटोग्राफी के साथ-२ विभिन्न पादप नमूने भी एकत्र किये।

सुबह प्रातः 7 बजे पैदल मार्ग से ही मेचुका के लिये प्रस्थान किया गया एवं संकरे पर्वतीय मार्ग एवं घने शीतोष्ण वनों से होकर गुजरे। रास्ते में क्वेरकस, रोडोडेन्ड्रन की वृक्ष एवं क्षुप जातियां, बेटुला, पाइनस बालिचियाना आदि जातियों का मिश्रण देखने को मिला। रास्ते में विभिन्न प्रकार के नाले एवं सुन्दर झरने देखने को मिले जिनके आस-पास विभिन्न मनमोहक, रंग बिरंगे आर्किडों जिनमें *सिलोगाइन बारबाटा, सिम्बेडियम हुकेरियानम, डैंड्रोबियम एफाइलम,* इरिया स्ट्रिक्टा जैसी जातियां उग रही थी। अन्त में शाम 5:30 बजे घने जंगलों के बीच पहाड़ी मार्ग से होते हुए हम ''मेचुका'' पहुंचे। यह अतिसुन्दर प्राकृतिक घाटी अपने नैसर्गिक सौन्दर्य के चरम पर थी जो चारों ओर से ऊँची बर्फीली पहाड़ियों से घिरी हुयी थी। पर्यटन को बढ़ावा देने के लिये यहां पर प्रदेश सरकार ने सभी मूलभूत सुविधायें उपलब्ध करवायी हैं एवं अतिथि गृह भी बनवाये हैं। ''मेचुका'' सियुम नदी के किनारे बसा जिले का अन्तिम सर्किल क्षेत्र है। सर्किल का अंतिम गांव सिगोंग है जो यहां से लगभग 10 किमी की दूरी पर है। इस क्षेत्र में अत्यधिक वर्षा एवं हिमपात के कारण तापमान शून्य से भी नीचे चला जाता है जिससे यहां पर शीतोष्ण-उपहिमाद्रि वनों का मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। इन वनों में रोडोडेन्ड्रोन की विभिन्न वृक्ष व क्षुप जातियों की भरमार है। मार्च माह में यहां फूलों का मौसम होता है। वनों में विभिन्न प्रकार के रंग बिरंगे फूल खिले थे जिनमें *रोडोडेन्ड्रोन आरबेरियम, रो. कैम्पानुलाटम, रो. काईनीजेरम, रो. केनिड्रकी, रो. मैड्डेनी* व *रो. ग्रिफीथियानम* आदि प्रजातियां प्रमुख है। अन्य वनस्पतियों यहां पर *माइकेलिया* ग्लेब्रा जिसे स्थानिक भाषा में लासू–सांगसिंग के नाम से पुकारा जाता है एवं जिससे मेंबा जनजातीय लोग पूजा हेतु सुगंधित पदार्थ बनाते हैं, की भी व्यापकता है। इसके अतिरिक्त *क्वेरकस सेमीकार्पीफोलिया, पाइनस वालिचियाना, एबीज, सेलीक्स, पोपलस, बेटुला, एमीनोटैक्सस, सीड्रस, टैक्सस, पाइनस काल्था, पोटेंटिला, क्राइसोस्प्लेनियम, प्रिमुला, नारडोस्टाइकस, पिक्रोराइजा*। आदि बहुमूल्य जातियां पायी जाती हैं। दल ने 7 दिनों तक मेचुका, हनुमान कैम्प, सिंगोग, आदि क्षेत्रों का व्यापक सर्वेक्षण किया एवं 700 से अधिक चित्र एवं लगभग 500 पादप नमूने भी एकत्र किये। वस्तुतः ''मेचुका'' की हिमाच्छादित चोटियां दर्शनीय है इसलिये दूर-दूर से प्रकृति प्रेमी भी सैकड़ों की संख्या में यहां प्रतिवर्ष आते रहते हैं।

कहा जा सकता है कि ''मेचुका'' मात्र एक पर्यटन स्थल ही नहीं बल्कि वानस्पतिक विविधता के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। क्षेत्र की अमूल्य वानस्पतिक संपदा के बारे में और अधिक जानकारी के लिये अभी और सर्वेक्षण कार्य की आवश्यता है। बढ़ती हुई जनसंख्या, शहरीकरण एवं पर्यटनके कारण यहां की वानस्पतिक विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

मेचुका घाटी का विहंगम दृश्य

मेचुका की हिमाच्छादित चोटियां

शीतोष्ण वन

रोडोडेन्ड्रान आरबोरियम स्मिथ

सिंबीडियम हुकेरियानम

पिस्टिया स्ट्रेटियोटिस लिन.

पाइरस पैशिया

रोडोडेन्ड्रान कैम्पानुलेटम

रोडोडेन्ड्रान क्राइनीजेरम

क्राइसोस्प्लेनियम नेपालेंस

अैलोंग के बांस वन

मेचुका की मेंबा जनजाति

असम के रंजक प्रदान करने वाले, कीटनाशक एवं महत्वपूर्ण औषधीय पौधे : एक अवलोकन

बिपिन कुमार सिन्हा एवं रमेश कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में स्थित असम अपनी दुरूह एवं अनूठी भौगोलिक संरचना, जलवायु (अधिकतम वर्षा तथा उच्च आर्द्रता), प्राकृतिक सुंदरता एवं जैव विविधता के दृष्टिकोण से विश्वविख्यात है। इस क्षेत्रमें रहने वाली जनजातियों के लोग अपनी वेश-भूषा, संस्कृति व प्रकृति प्रेम द्वारा वानस्पतिक विविधता को संरक्षित रखने के लिए विख्यात हैं। 23°–28° उत्तरी अक्षांश और 89°–96° पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित यह राज्य उत्तर में अरूणाचल, उत्तर पूर्व में भूटान, दक्षिण में पश्चिम बंगाल एवं मेघालय एवं दक्षिण पूर्व में मणिपुर, नागालैण्ड एवं मिजोरम से घिरा है तथा इसका कुल क्षेत्रफल 78,438 वर्ग किमी० है।

यहां के लोग अपनी आवश्यकताओं के लिये पूर्णतया प्राकृतिक संपदाओं तथा आसपास के जंगलों पर निर्भर हैं। वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं (जैसे रंजक प्रदान करने वाले कीटनाशक, औषधीय पौधे, जलावन की लकड़ी, चारा, जंगली फल फूल व सब्जी एवं काष्ठ आदि) के लिये यहां के वनों पर ही निर्भर हैं। यह क्षेत्र पौधों की पैदावार के लिये अनुकूल होने के कारण यहां पर रंजक प्रदान करने वाले, कीटनाशक एवं औषधीय पौधे बहुतायत से पाये जाते हैं जिनका उपयोग करके यहाँ के निवासी अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत कर सकते हैं। प्रस्तुत लेख में यहां पाये जाने वाले विभिन्न तरह के रंजक प्रदान करने वाले, कीटनाशक एवं महत्वपूर्ण औषधीय पौधों का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया गया है।

1. रंजक प्रदान करने वाले पौधे :

*** लाल रंजक प्रदान करने वाले पौधे :**

क्रम संख्या	वनस्पतिक नाम	कुल	रंजक प्रदायी भाग
1	*एडनेन्थरा पवोनिया*	मेमोससी	जड़ के उबाल कर काढ़े से ।
2	*बीक्सा औरेलिना*	बीक्सेसी	बीजों के उबाल कर काढ़े से।
3	*केना इण्डिका*	केनेसी	फूलों के काढ़े से।
4	*मेलोट्स फिलिपिन्सिस*	यूफोर्बियेसी	फलों के काढ़े से।
5	*रूबिया मंजिष्ठ*	रूबियेसी	तना तथा जड़ के काढ़े से।
6	*रूबिया सिक्किमेन्सिस*	रूबियेसी	तना तथा जड़ के काढ़े से।
7	*टेक्टोना ग्रेन्डिस*	वरबिनेसी	पत्तियो के काढ़े से।

*** पीले रंजक प्रदान करने वाले पौधे :**

1	*एपोरोसा वालिची*	यूफोर्बियेसी	पत्तियों के काढ़े से।
2	*आर्टोकार्पस हिटरोफिलस*	मोरेसी	अन्तःकाष्ठ के काढ़े से।
3	*बिसकोफिया जवानिका*	यूफोर्बियेसी	पत्तियों के काढ़े से जिससे बाँस की टोकरियों को रंगते है।
4	*ब्रूइन्सिमिया पोलिस्पर्मा*	स्टाइरेसी	फलों के काढ़े से।

बीक्सा ओरेलिना

मेलोट्स फिलिपिन्सिस

5	*ब्युटिया मोनोस्पर्मा*	फेबेसी	फूल के काढ़े से।
6	*करकूमा जियोडेरिया*	जीन्जीबरेसी	राइजोम के काढ़े से।
7	*गारसेनिया जेन्थोकामस*	कलूसिएसी	फल के काढ़े से।
8	*मेकलूरा कोचिनचाइनेन्सिस*	मोरेसी	अन्तःकाष्ठ के काढ़े से।
9	*मोरिंडा अंगुस्टिफोलिया*	रूबियेसी	जड़ के काढ़े से।
10	*निक्टेन्थस अरबोर–ट्रिस्टिस*	ओलीएसी	छाल के काढ़े से।
11	*तूना सीलिएटा*	मेलिएसी	पत्तियों के काढ़े से।

आर्टोकार्पस हिटरोफिलस

बिसकोफिया जवानिका

तूना सीलिएटा

निक्टेनथस अरबोर-ट्रिस्टिस

* **काले रंजक प्रदान करने वाले पौधे :**

1	*अकेसिया कटेचू*	माईमोसेसी	फलों के काढ़े से।
2	*अल्बीजिया लेबेक*	माईमोसेसी	छाल को उबाल कर काढ़े से ।
3	*अल्बीजिया प्रोसेरा*	माईमोसेसी	छाल को उबाल कर काढ़े से।
4	*एपोरोसा ऑक्टान्ड्रा*	यूफोर्बियेसी	पत्तियों को काढ़े से ।
5	*गेरुगा पिन्नेटा*	बरसेरेसी	फलो के काढ़े से।
6	*जेट्रोफा करकस*	यूफोर्बियेसी	तने व छाल के काढ़े से।
7	*मूसा पेराडिसिका*	मूसेसी	पुष्पक्रम के काढ़े से।
8	*ओरोजाइलम इण्डिकम*	बिगनोनिएसी	छाल के काढ़े से।
9	फाइलेन्थस इम्बलिका	यूफोर्बियेसी	छाल के काढ़े से।
10	*सेमीकार्पस एनार्कार्डियम*	एनार्काडिएसी	दृढफल एवं फिटकरी के काढ़े से।

जेट्रोफा करकस

ओरोजाइलम इण्डिकम

11	*स्टीरिओस्पर्मम चीलोनोआइडिस*	बिगनोनिएसी	छाल के काढ़े से।
12	*टर्मिनेलिया टोमेंटोसा*	कॉम्ब्रीटेसी	छाल के काढ़े से
13	*टरपिनिया नेपालेन्सिस*	सेपिंडेसी	फलों के काढ़े से।
14	*वेन्डलेंडिया टिंकटोरिया*	रूबियेसी	पत्तियों के काढ़े से।

*** हरा रंजक प्रदान करने वाले पौधे :**

1	*क्लेरोडेन्ड्रम विसकोसम*	वरबेनेसी	पत्तियों के काढ़े से।
2	*क्लेरोडेन्ड्रम इनफार्चूनेटम*	वरबेनेसी	पत्तियों के काढ़े से।

*** नीला रंजक प्रदान करने वाले पौधे :**

1	*इलेयूराइटिस मोलूकाना*	यूफोर्बियेसी	जड़ के काढ़े से।
2	*स्ट्रोबिलेन्थस फलेसीडीफोलियस*	एकेन्थेसी	पत्तियों के काढ़े से।
3	*स्ट्रोबिलेन्थस कोलोरेटस*	एकेन्थेसी	पत्तियों के काढ़े से।

2. कीटनाशक के रूप में उपयोगी वनस्पतियाँ

यह क्षेत्र पादप विविधता के साथ-साथ कीटनाशक के रूप में उपयोगी वनस्पतियों के लिए भी समृद्ध है। यहां पर कीटनाशक पौधे बहुतायत से पाये जाते हैं जिनका उपयोग करके यहां के मूलनिवासी अपनी फसलों, बागवानी तथा उनसे प्राप्त होने वाली सामग्री को कीड़ों से बचाकर उचित प्रकार से रख रखाव करके अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत कर सकते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख हैं:

क्रम संख्या	वनस्पतिक नाम	कुल	कीटनाशक के रूप में उपयोगी भाग
1	*क्रोटान टीग्लियम*	युफोर्बियेसी	फल एवं बीज।
2	*लाइनोस्टोमा डिकेंड्रम*	थाइमेलिएसी	छाल, फल एवं बीज।
3	*डेरिस फेरूजीनियम*	फेबेसी	फल एवं बीज।
4	*डेरिस इलिप्टीका*	फेबेसी	फल एवं बीज।

एसकुलस असामिका

5	एसकुलस असामिका	हिप्पोकेस्टेनेसी	छाल, फल एवं बीज।
6	*लीट्सिया सेल्सीफोलिया*	लोरेसी	छाल, फल एवं बीज।
7	*सिट्रस मेक्सिमा*	रूटेसी	फल एवं बीज।
8	*एन्गलहारसिया पोलिस्टाइका*	जुग्लेनडेसी	छाल, फल एवं बीज।
9	*रेण्डियां डूमेटोरम*	रूबिएसी	फल एवं बीज।
10	*बिक्सा ओरेलिना*	बिक्सेसी	फल एवं बीज।

*** औषधीय पौधों के रूप में उपयोगी वनस्पतियाँ**

यहां पर औषधीय पौधे बहुतायत में पाये जाते हैं जिनका उपयोग करना यहां के मूल निवासी अच्छी प्रकार से जानते हैं क्योंकि यह ज्ञान यहां की जन जातियां तथा स्थानिक लोगों में पीढ़ी दर पीढ़ी से चला आ रहा है। इनमें से कुछ प्रमुख हैं :

स्टीविया एण्डीएना

क्रम संख्या	वनस्पतिक नाम	कुल	औषधीय पौधे का भाग एवं उपचार
1	*स्टीविया एण्डीएना*	एस्ट्रेसी	पत्तियां रक्त शर्करा, रक्तपात एवं कोलेस्टराल स्तर कम करने में।
2	*कोलियस फोस्कोली*	लेमिएसी	यह पौधा ब्लडप्रेशर, दमा एवं कोलेस्ट्राल स्तर कम करने में।
3	*क्लोरोफाइटम ट्यूबरोसम*	लिलीएसी	राइजोम मधुमेह के उपचार तथा उत्तेजक के रूप में।

सीम्बोपोगान मारटीनी

सेन्टेला एशियाटिका

4	*कुरकुलेगो ओरकीओइडिस*	हाइपोक्सीडेसी	राइजोम मधुमेह के उपचार तथा उत्तेजक के रूप में।
5	*बकोपा मोनेरी*	स्क्रोफुलेरिएसी	यह पौधा ब्रेन टानिक के रूप में।
6	*कोमीफोरा व्हाइटी*	बरसेरेसी	गोंद रक्तचाप एवं कोलेस्टराल स्तर को कम करने में।
7	*सीम्बोपोगान मारटीनी*	पोएसी	पौधे का तेल औषधीय रूप में।

राउल्फिया सरपेन्टिना

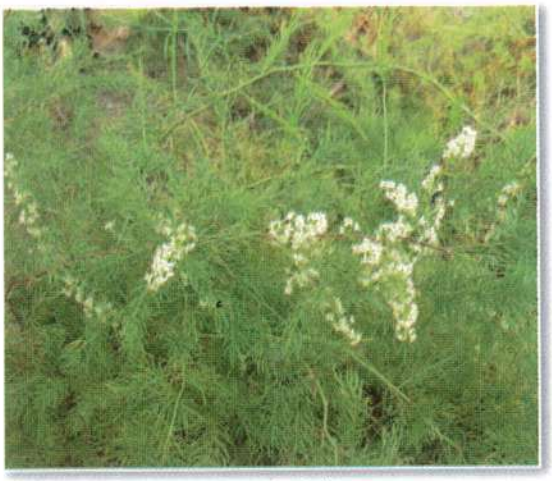

एस्परगस रेसीमोसस

8	सेन्टेला एशियाटिका	एपीएसी	पौधा ब्रेन टानिक के रूप में उपयोगी है। साथ ही यह रक्तचाप एवं तन्त्रिका तन्त्र में आये विकार को दूर करता है।
9	*राऊल्फिया सरपेन्टिना*	एपोसाइनेसी	जड़ ब्रेन टानिक, दिमागी विकार एवं तन्त्रिका तन्त्र में आये विकार को दूर करता है।
10	*वीथानिया सोमनीफेरा*	सोलेनेसी	जड़ टानिक एवं उत्तेजक के रूप में।
11	*एस्पेरेगस रेसीमोसस*	लीलिएसी	कन्द टानिक एवं अधिक दुग्ध के उत्सर्जन में सहायक।

ग्लोरिओसा सुपरबा

करकुमा डोमेस्टिका

12	फाइलेन्थस प्रुटिसेन्स	यूफोर्बियेसी	पौधा टानिक एवं पीलिया रोग के निदान में सहायक।
13	*पोगोस्टीमान हेएनस*	लेमिएसी	पत्तियाँ मलेरिया रोग के निदान में सहायक।
14	*जेट्रोफा करकस*	यूफोर्बियेसी	बीज लैकसेटिव के रूप में खासकर पेट सम्बन्धी विकार में उपयोगी।
15	*केसिया अँगुस्टीफोलिया*	सीसलपीनेसी	पत्तियॉ एवं गोंद औषधि के रूप मे।
16	मुकुना परूरिटा	फेबेसी	बीज कृमिनाशक के रूप में उपयोगी।
17	*ग्लोरिओसा सुपरबा*	लिलीएसी	राइजोम गठिया रोग के निदान में।
18	*एकाइरेंथस एसपेरा*	एमरेन्थेसी	पौधे का रस पीलिया रोग के निदान में।
19	एवरोहा केरमबोला	आक्जेलिडेसी	फल पीलिया रोग के निदान में।
20	*केरिया अरबोरिया*	लेसीथीडेसी	छाल का रस पीलिया रोग के निदान में।
21	साइसस रेपेन्उडा	वाइटेसी	जड़ का रस पीलिया रोग के निदान में।
22	*क्लेरोडेन्ड्रम इण्डिकम*	वरबीनेसी	जड़ का रस पीलिया रोग के निदान में।
23	कोमेलिना बेंगालेन्सिस	कोमेलिनेसी	पौधे का रस पीलिया रोग के निदान में।
24	करकुमा डोमेस्टिका	जिन्जीबेरेसी	राइजोम का रस पीलिया रोग के निदान में।
25	*कॉस्टस स्पीसियोसस*	जिन्जीबेरेसी	राइजोम का रस पीलिया रोग के निदान में।
26	*कसकुटा रिफलेक्सा*	कसकुटेसी	पौधे का रस पीलिया रोग के निदान में।
27	*यूफोर्बिया लिगूलेरिस*	यूफोर्बियेसी	नई टहनियों का रस पीलिया रोग के निदान में।
28	*ल्युकस एसपेरा*	लेमीएसी	पौधे का रस पीलिया रोग के निदान में।
29	*मोरिन्डा अंगूस्टिफोलिया*	रूबीएसी	जड़ का रस पीलिया रोग के निदान मे।
30	ओरोजाइलम इण्डिकम	बिगनोनिएसी	छाल का काढ़ा पीलिया रोग के निदान में।
31	*प्लम्बेगो जिलेनिका*	प्लम्बेजीनेसी	जड़ का रस पीलिया रोग के निदान में।
32	*साइडा रोम्बीफोलिया*	मालवेसी	पत्ती का रस पीलिया रोग के निनदान में।
33	टेबरनिमॉन्टाना कोरोनेरिया	एपोसाइनेसी	जड़ का रस पीलिया रोग के निदान में।

इसमें कोई संशय नहीं है कि असम पादप विविधता, विशेषकर रंजक प्रदान करने वाले पौधे, कीटनाशक एवं औषधीय पौधों, से समृद्ध है। इसके सुव्यवस्थित, गहन एवं व्यापक सर्वेक्षण एवं गवेषणा से अनेकों मानव कल्याणकारी वनस्पतियों के रहस्योद्घाटन की सम्भावनाएं है जो कि न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए वरन हमारी भावी पीढ़ी के लिए भी लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं।

———

मानस राष्ट्रीय उद्यान में पाये जाने वाले भारतीय हाथियों का आहार-विहार

सान्तनू दे, विपिन कुमार सिन्हा एवं रमेश कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

मानस राष्ट्रीय उद्यान पूर्वोत्तर भारत के असम राज्य के 26°35'–26°50' उत्तरी अक्षांश और 90°45'–91°15' पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है जो अपनी दुरूह एवं अनूठी भौगोलिक संरचना, जलवायु (अधिकतम वर्षा तथा उच्च आर्द्रता), प्राकृतिक सुंदरता एवं जैव-विविधता के दृष्टिकोण से विश्वविख्यात है। मानस राष्ट्रीय उद्यान नदियों, झरनों, झीलों, दुरूह पहाड़ी एवं विविध प्रकार के घने वनों से ढका है। यह उद्यान असम राज्य के बकसा एवं चिरांग जिलों के मध्य तथा उत्तर में भूटान से घिरा हुआ है। उद्यान का कुल क्षेत्रफल लगभग 500 वर्ग कि.मी. है। मानस राष्ट्रीय उद्यान क्षेत्रफल में ज्यादातर भाग असम राज्य का तथा कुछ भाग भूटान के राजकीय मानस राष्ट्रीय उद्यान का आता है। मानस राष्ट्रीय उद्यान के वन एवं वनस्पतियों का संक्षेप में ब्यौरा निम्नवत है:

1. **उष्णकटिबन्धीय अर्धसदाबहार एवं शुष्क पर्णपाती वन :** इस प्रकार के वन उद्यान के निम्न ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहां पर वर्षा कम होती है। इनमें वृक्षों की प्रमुख प्रजातियों में *हल्डिना कार्डिफोलिया, अल्बीजिया लेबक, आर्टोकार्पस चामा, शोरिया रोबस्टा, मेलाइना अर्बोरिया,* एवं *लेजरस्ट्रोमिया स्पीसिओसा* प्रमुख है। वर्षा काल में इस क्षेत्र में झाड़ियों की भरमार हो जाती है। जिनमें *मुसैन्डा, बुडलेजिया, कोम्ब्रटम, हाइप्टेज* प्रमुख हैं।

2. **उष्णकटिबन्धीय अर्धसदाबहार वन :** इस प्रकार के वन उद्यान के 800 से 1000 मी. की ऊंचाई वाले क्षत्रों में पाये जाते हैं। अधिक वर्षा के कारण इन वनों में नम एवं छायादार वनस्पतियों की बहुलता है। इन वनों में वृक्षों की प्रमुख प्रजातियों में *डिप्टेरोकार्पस टरबिनेटस, शोरिया रोबस्टा, मेलाइना अर्बोरिया, शिमा वालिचीआई, टर्मिनेलिया बेलेरिका, आर्टोकार्पस लकूचा, टेरिगोटा अलाटा* आदि हैं। लताओं में *स्टीफेनिया गलैन्डूलिफेरा, स्माइलेकस, डायसकोरिया प्रजातियां* एवं *कैरेसिया रीपैन्डा* प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त पहाड़ी ढलानों पर जंगली केले, जिन्जीबरेसी कुल के पौधे एवं अन्य वनस्पतियां भी प्रमुखता से पायी जाती है। नमी के कारण इस क्षेत्र में शाकीय पौधों की भी बहुलता है।

3. **घास के मैदान :** घास के मैदान मानव रचित कारणों से अस्तित्व में आये हैं। इनमें झूम खेती एवं अन्य कारणों से जंगलों का जलाना शामिल है। घास के मैदान में प्रमुख प्रजातियां निम्न हैं :

थेमेडा विलोसा, अरूंडिनेला, इकिनोक्लोआ क्रस गेली, इकिनोक्लोआ कोलोना, पेस्पेलम ऑर्बिकुलेयर, पेस्पेलम कोंजुगेटम, डिजिटेरिआ सिलिएरिस, डिजिटेरिआ लोंजिफ्लोरा, नेरॉडिआ नेनॉडिएना, सेकेरम, पेनिसेटम ग्लॉकम, इरेग्रोस्टिस टेनेला, इरेग्रोस्टिस यूनिल्वाइडिस, थाइसेनोलेमा मैक्सिमा, क्वाइक्स लेक्रिमेजोबी।

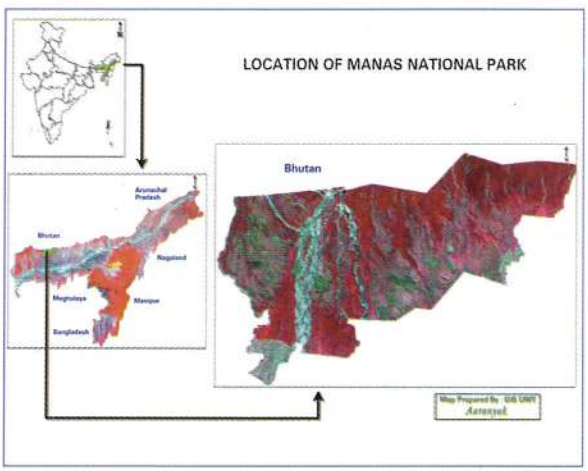

मानस राष्ट्रीय उद्यान का मानचित्र

परिणाम एवं निष्कर्ष :

भारत के वनों में विचरण करने वाले भारतीय हाथियों का रहन सहन उनके पारिस्थितिकी तथा खान पान की जानकारी हमारे वैज्ञानिकों को बहुत कम है। हाथियों का भोजन मुख्यतः घास, फल, टहनियां एवं पत्तियां आदि होती हैं। हाथियों का रहन-सहन उनके द्वारा खाये जाने वाले पौधों

के क्षेत्र, उनकी वहां के वनों में उपलब्धता के अनुसार बदलता रहता है। इसी को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत लेख में मानस राष्ट्रीय उद्यान में पाए जाने वाले भारतीय हाथियों के द्वारा खाये जाने वाले पौधों की विविधता का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया गया है।

क्रम संख्या	वनस्पतिक नाम	कुल	किस्म	पौधे का भाग
1.	माइमोसा पुडिका	माइमोसेसी	जंगली पौधा	पूरा पौधा
2.	फाइकस स्पीसीस	मोरेसी	जंगली पेड़	फल एवं पूरा पेड़
3.	मूसा ओरनेटा	मूसेसी	जंगली पौधा	फल, पत्ती एवं पूरा तना
4.	अकेसिया पिन्नेटा	मइमोसेसी	जंगली लता	तना
5.	अकेसिया कोनसिना	मइमोसेसी	जंगली लता	तना
6.	अकेसिया कटैचु	मइमोसेसी	जंगली पेड़	तना
7.	एलपिनिया एलूगेन्स	जिनजिबरेसी	जंगली पौधा	पूरा पौधा
8.	फ्रेग्माइटिस कारका	पोएसी	जंगली घास	पूरा पौधा
9.	नारेन्गा पोरफाइरोकोमा	पोएसी	जंगली घास	पूरा पौधा
10	टिनोस्पोरा कार्डिफोलिया	मेनिस्परमेसी	जंगली लता	फल, पत्ती एवं पूरा तना
11.	डीलेनिया इण्डिका	डीलेनियेसी	जंगली पेड़	फल, पत्ती एवं पूरा तना
12.	थाइसेनोलीमा मैक्सिमा	पोएसी	जंगली घास	पूरा पौधा
13.	सैक्रम प्रोसेरा	पोएसी	जंगली घास	पूरा पौधा
14.	सैक्रम स्पौन्टेनियम	पोएसी	जंगली घास	पूरा पौधा
15.	कैलेम्स फलोरिबन्डस	एरिकेसी	केन (नरकट)	छाल
16.	अल्बिजिया ओडोरेटिसिमा	मइमोसेसी	जंगली पेड़	छाल
17.	अल्बिजिया प्रोसेरा	मइमोसेसी	जंगली पेड़	छाल
18.	स्टरकुलिया वाइलोसा	स्टरकुलियेसी	जंगली पेड़	छाल
19.	बोम्बेक्स सिब्बा	बोम्बेकेसी	जंगली पेड़	छाल

सर्वेक्षण में यह देखा गया कि मानस राष्ट्रीय उद्यान में पाए जाने वाले हाथियों के द्वारा खाये जाने वाले पौधों की कुल संख्या 19 थी जिसे 17 कुलों में बाँटा गया। इन्हें ये अपने भोजन में मुख्यतः खाते हैं।

1

2

3

4

5

6

7

8

1. अकेसिया पिन्नेटा;
2. अकेसिया कोनसिना;
3. एलपिनिया एलूगेन्स;
4. डीलेनिया इण्डिका;
5. माइमोसा पुडिका ;
6. फाइकस आरिकुलेटा;
7. फाइकस रेसिमोसा;
8. मूसा ओरनेटा

9

10

11

12

9. अल्बिजिया प्रोसेरा ; 10. बोम्बेक्स सिब्बा; 11. स्टरकुलिया वाइलोसा; 12. सैक्रम प्रोसेरा

मेघालय की वानस्पतिक विविधता

बिकारमा सिंह, विपिन कुमार सिन्हा एवं विवेक नारायण सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में स्थित आठ राज्यों में से एक, मेघालय 25°47' - 26°10' उत्तरी अक्षांश तथा 89°45'-92°47' पूर्वी देशान्तर के मध्य 22,490 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैला हुआ भारत का एक पर्वतीय प्रदेश है जो पूर्णतया वनों से आच्छादित है। 19 जनवरी 1972 ई. को असम से पृथक हो कर बने इस राज्य का वर्तमान में कुल वनक्षेत्र 73% है जो अन्य राज्यों की तुलना में सर्वाधिक है। मेघालय अपनी जनजातीय विविधता, सांस्कृतिक विरासत व वानस्पतिक भण्डार के कारण विश्व प्रसिद्ध है। इस प्रदेश में तीन मुख्य जनजातियॉं : गारो, खासी व जैन्तिया निवास करती हैं, जो अपनी आवश्यकताओं के लिये पूरी तरह से इस राज्य के वनों पर निर्भर हैं। ये अपनी दैनिक जीवन की वस्तुओं जैसे जलावन की लकड़ी, चारा, औषधि, फल व सब्जियों एवं घर बनाने के लिये लकड़ी आदि इन वनों से प्राप्त करते हैं।

जंगलों को सुशोभित करता डेन्ड्रोबियम ओकरेटम्

अनेक ऊँची-नीची पर्वत श्रृंखलाओं वाला यह प्रदेश अधिक वर्षा एवं आर्द्रता के कारण ऊष्ण-आर्द्र कटिबंधीय वनों से ढका है। अनेक पादप प्रजातियाँ ऐसी है जो इस प्रदेश मात्र में ही सीमित हैं। हरिदासन के अनुसार इनकी संख्या लगभग 65 है, जिसमें *बैलियोस्पर्मम माइकरैन्थम, कैमेलिया काडुका, सिट्रस लेटीपस, सिट्रस इण्डिका, इरिया फेरुजीनिया, डाफ्नी शिलांग, हेबेनेरिया खासियाना, इम्पेशेन्स खासियाना, रुबस खासियाना* आदि हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ अनेकों संकटग्रस्त प्रजातियाँ जैसे *ब्रुसिया मौलिस, आइलैक्स खासियाना, हेमिआर्किस रोडोरेकिस, निपेन्थीस खासियाना, निम्फिया पिग्मिया, रोडोडेन्ड्रान फारमोसम, सैपिन्डस ररक, वैन्डा सेरुलिया* आदि यहां के वनों में अभय प्राप्त कर रही हैं। इस राज्य की वानस्पतिक विविधता की प्रचुरता का आकलन हम इसी से कर सकते है कि, यहां लगभग 1,500 पुष्पी पौधों की प्रजातियाँ हैं। इनमें से लगभग 400 प्रजातियाँ तो रंग बिरंगे मन भावन आर्किड (Orchid) की ही हैं, तथा विभिन्न प्रकार के अनावृत्तबीजी व अनेकों फर्न (Fern) प्रजातियाँ भी पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त अपुष्पी कुल में शैवाल (Algae), फफूंद (Fungi), शैवाक (Lichens), व हरितोदभिद् (Liverworts) की भी अनेकों प्रजातियाँ पायी जाती है।

वैज्ञानिक अध्ययनों से यह ज्ञात है कि, मेघालय के जंगलों में बड़ी संख्या में पेड़-पौधों की संकटग्रस्त, दुर्लभ एवं स्थानीय जातियाँ संरक्षित हैं। खान एवं अन्य के अनुसार इस राज्य में वनस्पतियों की कुल 1,236 स्थानीय प्रजातियॉं हैं। यहाँ की वनस्पतिक विविधता के कारण ही इस छोटे से राज्य में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने इन पौधों को संरक्षित करने हेतु अनेक सुरक्षित क्षेत्र घोषित किये हैं, जिसमें से नाकरेक जीवमंडल सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जो मेघालय के पूर्वी गारो हिल्स, पश्चिमी गारो हिल्स एवं दक्षिणी गारो हिल्स के जिलों में फैला हुआ है। इस जीवमंडल का कुल क्षेत्रफल 820 वर्ग कि.मी. हैं। यह जीवमंडल अपनी जैव-विविधता के कारण विश्व महत्ता के जीवमंडलो में चयनित किया जाने वाला है। इस राज्य में 2 राष्ट्रीय उद्यान : बालपक्रम राष्ट्रीय उद्यान (22,000 वर्ग हेक्टेयर) व नाकरेक राष्ट्रीय उद्यान (4,748 वर्ग हेक्टेयर) तथा तीन अभयारण्य (Santuary) : नंगखाईलैम वन्य जीव अभयारण्य (2,900 वर्ग हेक्टेयर), सिजु वन्य जीव अभयारण्य (518 वर्ग हेक्टेयर) व बाघमारा पिचर प्लान्ट अभयारण्य (2.7 वर्ग हेक्टेयर) है, जो अपने अनमोल वानस्पतिक खजाने के लिये विश्वविख्यात है। इस प्रकार मेघालय का लगभग 267.48 वर्ग कि.मी. भू-भाग राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्य से ढका हुआ है। केन्द्र व राज्य सरकारों के अतिरिक्त इस प्रदेश के निवासियों ने भी अनेक भू क्षेत्रों को अपनी मान्यताओं के कारण सुरक्षित रखा है। ये लोग इन वन क्षेत्रों की पूजा करते हैं, पवित्र मानते हैं तथा पावन वन

के नाम से पुकारते हैं। बिकारमा एवं अन्य (2007) के अनुसार इस राज्य में कुल 111 पावन वन (Sacred Forests) हैं जो अपनी मान्यताओं व विश्वासों के कारण यहाँ के लोगों के हृदय में स्थान रखते हैं, और यहाँ की वानस्पतिक विविधता को संरक्षित करने में अपना बहुमूल्य योगदान प्रदान करते हैं।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने यहाँ की वानस्पतिक विविधता के अध्ययन हेतु 1956 में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के क्षेत्रीय कार्यालय की स्थापना शिलांग में की है। इस विभाग ने न सिर्फ मेघालय वरन् नागालैण्ड, मणिपुर, त्रिपुरा, मिजोरम आदि राज्यों का वानस्पतिक सर्वेक्षण एवं वैज्ञानिक अध्ययन किया है। साथ ही साथ संरक्षण के उद्देश्य से एक प्रायोगिक वनस्पतिक उद्यान (Experimental Botanical Garden) बारापानी में तथा एक राष्ट्रीय आर्किडशाला (National Orchidarium) की स्थापना शिलांग में कर के सीमित व दुर्लभ प्रजातियों को संरक्षित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लगभग तीन लाख से अधिक नमूने जिसमे निम्नकुल व उच्चकुल के पौधे सम्मिलित हैं, यहाँ के हर्बेरियम (Herbarium) में संरक्षित है। इस हारबेरियम नमूनों का संग्रहण करने में श्री यू. एन. कान्जिलाल, श्री पी. सी. कान्जिलाल, श्री जी. मन्ना, श्री ए. दास, श्री एन. एल. बोर, श्री आर. एन. डे, श्री एम. एल. सैकिया आदि लोगों ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। श्री आर. एस. राव, श्री जी. पानिग्रही, श्री डी. बी. देब; श्री जे. जोसफ, श्री एन पी. बालाकृष्णन, श्री ए. आर. के. शास्त्री, श्री डी. एम. वर्मा, श्री एम. के. वी. राव, व अन्य अनकों वनस्पतिवेत्ताओं ने यहां की वानस्पतिक जैव-विविधता का सर्वेक्षण एवं वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया है।

यहाँ के केन्द्रीय विश्वविद्यालय नार्थ ईस्टर्न हिल यूनीवर्सिटी (N.E.H.U.) में कार्यरत प्राध्यापकों व शोधछात्रों ने भी इसकी वनस्पतिक विविधता को उजागर करने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। एक अन्य संस्थान नेशनल ब्यूरो ऑफ प्लान्ट जेनेटिक रिसोर्स (NBPGR) व कुछ अन्य गैर सरकारी संस्थान जैसे फेडरेशन ऑफ डेवलपमेन्ट इन्ट्रीगेशन (FDI) आदि भी इस दिशा में अपना सहयोग प्रदान कर रहें है। अब तक मेघालय के लगभग 60-70% भागों के पुष्पी पौधों,

मेघालय राज्य के वन क्षेत्र का दृश्य

पूर्वी गारो हिल्स में सिमसंग नदी का दृश्य

फर्न एवं आर्किड का ही सर्वेक्षण एवं अध्ययन किया जा सका है, शेष भागों का सर्वेक्षण जारी है।

मेघालय वर्तमान में अपनी प्राकृतिक संपदा के क्षेत्र में काफी धनी है परन्तु बढ़ती जनसंख्या और इसकी बढ़ती आवश्यकता, औद्योगीकरण, कृषि हेतु झूम पद्धति आदि अनेकों कारणों ने इसके सुन्दर स्वरूप पर अपना दुष्प्रभाव डालना प्रारम्भ कर दिया है। इस संदर्भ में लोगों के बीच जागरुकता व चेतना फैलाने की आवश्यकता है जिससे पर्यावरण को क्षति पहुँचाये बिना प्राकृतिक संसाधनों का संदोहन किया जा सके तथा पर्यावरण व इसके समस्त घटकों के बीच संतुलन बना रहे।

1

2

3

4

5

6

1. निर्झर बहते जल प्रपात
2. पर्णांग (फर्न) प्रजाति
3. बिगोनिया राक्सबर्गाई
4. मेघालय की बॉस प्रजाति
5. डेन्ड्रोबियम फार्मेरी – मनमोहक आर्किड प्रजाति
6. पैफियोपेडिलम इन्सिगनी : एक संकटग्रस्त प्रजाति

7 & 8. ऊँचाइयों को छूते अनावृत्तबीजी व एकबीजपत्री पौधे 9. निपेन्थिस खासियाना : सीमित व संकटग्रस्त प्रजाति 10. एलपिनिया प्रजाति

नोकरेक जीवमंडल के वन एवं वनस्पतियां : एक अवलोकन

बिकारमा सिंह, बिपिन कुमार सिन्हा, एस० फुकन एवं विवेक नारायण सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

नोकरेक जीवमण्डल भारत के पूर्वोत्तर राज्य मेघालय की गारो पहाड़ियों में 25° 15' से 25°29' उत्तरी अक्षांश और 90°13' से 90° 30' पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल 820 वर्ग किमी० है। यह जीवमण्डल भारत के 15 जीवमंडलो में से एक है जिसकी स्थापना 1 सितम्बर 1988 में की गई थी। इस जीवमंडल में गारो जनजातियों के लोग निवास करते हैं। ये जनजातियां अपनी आवश्यकताओं के लिये पूरी तरह से इस जीवमंडल एवं आस-पास के जंगलों पर निर्भर करती हैं। वे अपनी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं जैसे जलावन की लकड़ी, चारा, औषधीय पौधे, जंगली सब्जियों एवं काष्ठ आदि हेतु यहां पायी जाने वाली वनस्पतियों पर निर्भर करते हैं। वनों में रहने के कारण इन लोगें को आधुनिक औषधियों के बारे में अधिक जानकारी नहीं है, अतः वे छोटी-मोटी बीमारियों या महामारी के समय में औषधीय पेड़-पौधों का ही प्रयोग करते हैं। इसलिये इन जनजातियों के लोगों व वनस्पतियों के बीच परस्पर एक संबंध स्थापित है इसलिये यह जीवमंडल लोक वनस्पति के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण स्थान है साथ ही यह अपनी विशिष्ट वनस्पतियों, जीवजन्तुओं व भूआकृतियों के कारण वनस्पतिवेत्ताओं, जीवविज्ञानियों और भूगर्भशास्त्रियों के लिये अध्ययन का प्रमुख स्थल है।

नोकरेक जीवमंडल में वनस्पति सर्वेक्षण :

नोकरेक जीवमंडल के वनस्पति सर्वेक्षण का कार्य प्रगति पर है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग, नार्थ ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी (NEHU) एवं मेघालय वन विभाग ने कुछ सर्वेक्षण कार्य किये हैं लेकिन इस पर प्रकाशित सामग्री उपलब्ध नहीं है। इनमें यू० एन० कान्जिलाल, पी० सी० कान्जिलाल, हरिदासन, आर० आर० राव, कुमार, आदि प्रमुख हैं। अभी हाल में लेखकों ने सन 2007 से 2009 तक नोकरेक जीवमंडल में पादप सर्वेक्षण हेतु छः वनस्पतिक यात्रायें की हैं और 1,480 पादप नमूने व एक सौ से अधिक सजीव पौधों के नमूने एकत्रित किये हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के वृक्ष, आरोही लतायें, शाक एवं विभिन्न प्रकार के रंग बिरंगे आर्किड की अनेक प्रजातियाँ शामिल हैं। अब तक इस जीवमंडल से कुल 616 वनस्पतियों की पहचान की जा चुकी हैं जिसमें विभिन्न प्रकार के औषधीय, सजावटी एवं दुर्लभ प्रजातियाँ के पौधे भी सम्मिलित हैं।

सर्वेक्षण के दौरान जिस प्रकार के वन एवं वनस्पतियां दृष्टिगोचर हुयी है उनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत है। नोकरेक जीवमंडल को उनके वन व वनस्पतियों के आधार पर निम्नलिखित वन प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है।

1. **उष्णकटिबन्धीय वन** (Tropical forests) : जीवमंडल का अधिकतर भाग उष्णकटिबन्धीय है। ये वन समुद्र तल से 200 मीटर से 900 मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं जिसमें खालाग्री, चोकपोट, मंडालग्री, आदि क्षेत्र प्रमुख हैं। इस वन में सदाबहार, अर्धसदाबहार एवं पतझड़ वाली वनस्पतियों का बाहुल्य है। इस वन में पाये जाने वाले वृक्षों को तीन स्तरों में बांटा जा सकता है–पहले स्तर में अधिक ऊँचाई वाले वृक्ष, जिसमें *टरमिनेलिया बेलिरिका, स्टरकूलिया विलोसा, माइकेलिया चंपाका, सीमा वॉलिचि, आर्टोकार्पस हेटेरोफाइला, केस्टोनोप्सिस इण्डिका, कैरिया आर्बोरिया,* आदि की जातियां प्रमुख हैं। दूसरे स्तर में पाये जाने वाले वृक्षों में *डिलेनिया पेन्टागाइना, ब्रीडेलिया इस्टिपुलेरिस, एरिथ्रिना स्ट्रिकटा, गारसीनिया केडिया, मेकारंगा डेन्टिकुलाटा, रस चाइनेन्सिस, एलबिजिया लेबेक,* आदि की जातियां प्रमुख हैं। तीसरे स्तर में पाये जाने वाले वृक्षों में *मेलोटस फिलिपेन्सिस, डाइसोजाइलम बाइनेक्टेरिफेरम, ग्लाइकोस्मिस पेन्टाफाइला, सेपियम बाकेटम, इलियोकार्पस टेक्टेरियस,फाईकस हिसपिडा,* आदि की जातियां प्रमुख हैं।

2. **उपोष्ण वन** (Subtropical forests) : जीवमंडल का लगभग 47 वर्ग कि.मी. भाग उपोष्ण वन है। यह वन समुद्र तल से 900 मीटर से 1417 मीटर की ऊंचाई तक पाये जाते हैं जिसमें दारिबोग्री गांव के कुछ भाग, नोकरेक राष्ट्रीय

उद्यान, तुरा पाहाड़ियों आदि के कुछ क्षेत्र प्रमुख हैं। इस वन में पाये जाने वाले वृक्षों को भी तीन स्तरों में बाँटा जा सकता है–पहले स्तर में अधिक ऊँचाई वाले वृक्ष, जिसमें *मैग्नोलिया हाग्सोनाई, डाइसोजाइलम बाइनेक्टेरिफेरम, टर्मिनेलिया बेलेरिका, फाईकस बेंगालेन्सिस, सिनामोमम, बेजोलघोटा, सोरिया रोबस्टा, सोउरेरिया नेपालेन्सिस, स्टरकूलिया विलोसा, माइकेलिया चंपाका, आर्टोकार्पस हेटेरोफईला, केस्टोनाप्सिस ईन्डिका,* आदि जातियां प्रमुख हैं। दूसरे स्तर में पाये जाने वाले वृक्षों में *लिट्सिया सेलिसिफोलिया, लिट्सिया लेईटा, औस्टोइडिस पेनिकुलेटा, सीमा वॉलिची,* आदि की जातियां प्रमुख हैं। तीसरे स्तर में पाये जाने वाले वृक्षों में *रस चाईनेन्सिस, क्रोटन काउडेटम, लिया एसपेरा, यूरिया एकुमिनेटा, ग्लाइकोस्मिस पेन्टाफाइला, फाईकस हिरटा* आदि की जातियां प्रमुख हैं।

3. **नदी तट के वन** (Riverine forests) : जीवमंडल से अनेको जल की धारायें निकलती हैं जो आपस में मिलकर बड़ी नदियों का रूप ले लेती हैं। इनमें से सिमसंग, दिदारी छिबिमा, दारेंग, आदि कुछ प्रमुख नदियां है। इन नदियों के तट पर अनेको प्रकार की वनस्पतियां मिलती हैं। इसमें *ऐसकुलस असामिका, कैरियोटा यूरेंस, दुआबंगा ग्रेन्डिफ्लोरा, लिकुआला पेल्टेटा, सैपियम बाकेटम, वरनोनिया वाल्कामेरीफोलिया,* आदि कुछ प्रमुख वनस्पतियां हैं।

4. **बाँस के वन** (Bamboo forests) : उपरोक्त वनों के अलावा नोकरेक जीवमंडल में बाँस के वन भी पाये जाते हैं। इस वन में अनेको प्रकार की बाँस प्रजातियां मिलती हैं जो उष्णकटिबन्धीय वनों में विशुद्ध एवं मिश्रित अवस्था में पायी जाती हैं। *इनमें डेंड्रोकैलेमस हैमिल्टोनिया, बैम्बूसा वलकोआ, मेलोकैना बेसिफेरा,* आदि कुछ जातियां प्रमुख हैं। स्थानीय गारो जनजातियों के लोग बाँस को विभिन्न प्रयोग में लाते हैं जिसमें घर, टोकरी, पुल निर्माण से लेकर खाने पीने के सामान जैसे स्वादिष्ट आचार और सब्जियाँ का रख-रखाव शामिल है।

वनस्पतिक विविधता :

नोकरेक जीवमंडल की वनस्पतिक विविधता के अध्ययन पर कार्य चल रहा है और अबतक कुल 616 जातियों को लिपिबद्ध किया जा चुका है। यहाँ पर पाये जाने वाले पौधों के कुल, वंश व जातियों को नीचे तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका 1: नोकरेक जीवमंडल में कुल, वंश एवं जातियों की संख्या।

समूह	कुल की संख्या	वंश की संख्या	जातियों की संख्या
आवृतबीजी			
द्विबीजपत्री (Dicotyledons)	103	294	424
एकबीजपत्री (Monocotyledons)	19	75	113
अनावृत बीजी (Gymnosperms)	4	6	6
पर्णांग (Ferns)	23	39	73
कुल	149	414	616

तालिका 2 : नोकरेक जीवमंडल में कुल जातियों की संख्या एवं प्रतिशत।

पौधे के आकार	संख्या	प्रतिशत %
वृक्ष	209	33.93%
क्षुप / झाड़ी	88	14.28%
शाकीय	148	24.03%
पर्णांग	73	11.85%
आरोही लतायें	98	15.91%
कुल	616	100%

तालिका 3 : नोकरेक जीवमंडल में दस प्रमुख कुल, वंश एवं जातियां।

कुल	वंश	जातियां
एसटेरेसी	23	25
पोएसी	20	25
युफोर्बिएसी	18	26
आर्किडेसी	17	30
रूबिएसी	15	23
फेबेसी	12	13
वर्बिनेसी	9	14
लेमियेसी	9	12
सिसेलपिनेसी	7	9
एरेसी	6	10

नोकरेक जीवमंडल में पाये जाने वाले पौधों को उनकी उपयोगिता के आधार पर निम्न वर्गो में बाँटा जा सकता है। जैसे :

क : **औषधीय पौधे :** इनमें प्रमुख पौधों में *सर्पगन्धा, एकोरस कैलेमस, ब्राह्मी, कैलोट्रोपिस प्रोसेरा, पैसिफलोरा नीलेन्सिस, एसर लेविगेटम, सोलेनम टोर्वम, अवरोहा करमबोला, अडहटोडा जिलेनिका, अमोमम डेलबेटम, एडिएन्टम फिलीपेन्स, मेसुआ फेरिया, स्माईलेक्स परफोलिआटा* एवं *कोस्टस स्पेसिओसा* आदि प्रमुख हैं।

ख : **खाद्योपयोगी पौधे :** जीवमंडल में पाये जाने वाले पौधों को उनकी उपयोगिता के आधार पर निम्न वर्गो में बाँट सकते हैं।

1. **राइजोम या तना :** बांस प्रजाति के मुलायम तने, *अमोमम डेलबेटम, कोलोकेसिया, अरिसिमा* एवं *डायसकोरिया* की प्रजातियों के राइजोम खाद्य हेतु प्रयोग में लाये जाते हैं।

2. **फलों में :** *आर्टोकार्पस चामा, आर्टोकार्पस लकूचा, टर्मिनेलिया बेलेरिका, डिलेनिया इंडिका, अम्बेलिया सबकोरियेसिया, एम्बलिका आफिसीनेलिस, मैन्गीफेरा इंडिका,* केला, जामुन आदि प्रमुखता से मिलते हैं।

3. **काष्ठोत्पादक पौधे :** यह जीवमंडल कई प्रकार के मूल्यवान काष्ठोत्पादक पौधों से भरा है। इसके अलावा बाँस की कई प्रजातियां भी यहां प्रमुखता से मिलती हैं, जैसे : *मेलोकाना बेसिफेरा, बम्बूसा बलकुआ, बम्बूसा नूटेन्स, बम्बूसा पैलिडा, डेन्ड्रोकैलेमस हेमिलटोनी एवं साइजोस्टेकियम पालिर्माफम* प्रमुख हैं। काष्ठोत्पादक पौधों में *एसर लेविगेटा, आर्टोकार्पस चामा, आर्टोकार्पस लकूचा, टर्मिनेलिया बेलेरिका, डिलेनिया इंडिका, दुआबन्गा ग्रैन्डिफलोरा, हल्डिना कार्डिफोलिया, अल्बीजिया लेबक, शोरिया रोबस्टा, मेलाइना अर्बोरिया, लेजरस्ट्रोमिया स्पीसिओसा, डिप्टेरोकार्पस टर्बीनेटस एवं मेसुआ फेरिया* प्रमुख हैं।

4. **उपयोगी पौधों की जंगली प्रजातियां :** जीवमंडल में उपयोगी पौधों की कई जंगली प्रजातियां प्रचुरता से उपलब्ध हैं। जैसे : *आर्टोकार्पस, साइट्रस, कमेलिया, मूसा, कोलोकेसिया, अमोमम, सिन्नामोमम, करक्यूमा, गासिनिया, पाइपर* एवं *जिन्जीबर* आदि की जंगली प्रजातियाँ।

नोकरेक जीवमंडल में पाये जाने वाले कुछ जीवजन्तु :

नोकरेक जीवमंडल में पाये जाने वाले प्रमुख जंगली जीवजन्तुओं जैसे स्तनधारियों में हुलक, बाघ, भालू, अजगर, बंदर, सुनहरा लंगूर, हाथी, हिरण, गिलहरी, आदि हैं। स्थानीय व देशी तथा विदेशी पर्यटकों के लिये हुलक बंदर एक आकर्षण का केंद्र हैं। पक्षियों में बुलबुल, तोता, मैना आदि प्रमुख हैं। सर्पो में पाइथन एवं कोबरा बहुलता से मिलते हैं। पक्षियों में हार्नबिल, मोर, ऊल्लू व हिलमैना प्रमुख हैं।

निष्कर्ष : इस जीवमंडल में पायी जाने वाली वनस्पतियां मेघालय की प्राकृतिक सम्पदा हैं और इसका संरक्षण

करना हमारे पर्यावरण के लिये आवश्यक है। पेड़ पौधे न केवल मनुष्यों के लिये उपयोगी होते हैं, वरन पूरी पृथ्वी के जीव-जंतुओं को जीवन का आधार भी प्रदान करते हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि यह जीवमंडल बहुमूल्य वनों एवं वनस्पतियों से परिपूर्ण है। प्रकृति की इस अमूल्य धरोहर को बचाये रखना हमारा एवं यहाँ के निवासियों का प्रथम कर्तव्य होना चाहिये, तथा झूम खेती और वृक्षों की कटान को तत्काल बन्द कर देना चाहिये। सरकार को भी इस दिशा में कड़े कदम उठाने की आवश्यकता है जिससे जैव-विविधता के इस क्षेत्र को संरक्षित किया जा सके।

1 : उष्णकटिबन्धीय वन; 2 : उपोष्ण वन; 3 : नदी तट के वन; 4 : बाँस के वन; 5 : झूम के खेत; 6 : वृक्ष पर बना घर

1

2

3

4

5

1 : गारो जनजाति; 2 : *गाइनोकार्डीया ओडोराटा* का फल; 3 : *क्लेरोडेन्ड्रम वालिची;*
4 : *डीलेनिया पेन्टागाइना;* 5 : *माइमोसा पुडिका*

1 : *रिंकोस्टालिस रेटुसा;* 2 : *डेन्ड्रोबियम डेन्सिफ्लोरम;* 3 : *एलसोफिला गाइगेन्सिया;* 4 : *लिकुआला पेल्टेटा*

बलपक्रम राष्ट्रीय उद्यान

अशोक बसु

पर्यावरण संरक्षण में राष्ट्रीय उद्यानों एवं अभयारण्यों की महत्वपूर्ण भूमिका है। सभी राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्य बहुमूल्य जैव विविधता को सँभाल कर रखने में राष्ट्र की मदद कर रहे हैं।

यही कर रहा है मेघालय का बलपक्रम राष्ट्रीय उद्यान जिसका क्षेत्रफल 220 वर्ग किलो मीटर है। प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न इस वन की अपनी विशेषताएँ हैं। इस अंचल में रहने वाली गारो जनजाति और हिन्दू समुदाय इसे पावन मानती है। गारो जन जाति की मान्यता है कि किसी की मृत्यु के बाद उसकी आत्मा कुछ दिनों तक बलपक्रम भूमि में ठहरने के पश्चात महा यात्रा में जाती है। हिन्दू समुदाय की मान्यता है कि राम-रावण युद्ध के बीच हनुमान यहाँ आए थे। मेघनाद से युद्ध करते समय लक्ष्मण मूर्छित हो गए। वैद्य सुषेण ने उनके उपचार के लिए संजीवनी बूटी आवश्यक बताया। संजीवनी बूटी के लिए आए हनुमान वहाँ से पर्वत उठा कर ले गए। पर्वत उठा लेने से वहाँ की भूमि समतल हो गई। यहाँ के एक पर्वत शिखर को गारो जन जाति कहती है 'चुटमैंग'–दक्षिणी गारी पहाडियों का सबसे उँचा शिखर।

भूतल के अद्‌भुत उतार-चढ़ाव के कारण बलपक्रम का परितंत्र जैव-विविधता का खजाना है। उल्लेखनीय है घटपर्णी (नेपेंथिस खासिएना) तथा आर्किड की जाति-प्रजाति, भेद-प्रभेद। औषधीय पौधों की प्रचुरता के कारण इस जनपद में परम्परागत चिकित्सा केंद्रों की भरमार है।

मेघालय के पावन वनों को सुरक्षित रखने में स्थानीय जन समुदाय सतर्क एवं सक्रिय रहा है। आज के युग में अंधविश्वास के लिए कोई स्थान नहीं है। किन्तु पावन वनों को सुरक्षित रखने वाले जन समुदाय किसी न किसी अंधविश्वास से प्रेरित होते हैं। वहाँ ये मान्यता है कि पावन वन से कोई एक टहनी भी तोड़ेगा तो अशुभ तत्व उसे परेशान करेगा।

मेघालय का सबसे बड़ा पावन वन मावफ्लैंग ग्राम में है। वहाँ भी पावन वन की रक्षा अंधविश्वास के कारण होती है। पावन वन की जो क्षति करेगा उसका कल्याण नहीं होगा। मावफ्लैंग से ही मेघालय की राजधानी शिलांग के लोगों को पीने के लिए पानी मिलता है।

पावन वनों के आस-पास रहने वाले लोगों को पेड-पौधे, क्षुप, झाड़ी, गुल्म, लतादि के गुणावगुण और उपयोग की जानकारी होती है। उस जानकारी को लिपि बद्ध करना अति आवश्यक है। पढ़े लिखे लोग चाहते हैं कि उसकी सारी जानकारी मुफ्त् में लेकर लाभ उठाएँ। अति विकसित देशों के लोग ऐसे अवसर खोजते रहते हैं।

समस्या का एक समाधान सामने आया है ''पहुँच एवं लाभ की साझेदारी (Access and Benefit Sharing) –प्राकृतिक संसाधन और उनके बारे में आवश्यक जानकारी मुफ्त् में नही मिलेगी। मुआवजा दीजिए, अपने काम की वस्तु और जानकारी लीजिए। ईमानदार लोग ऐसा ही करेंगे। जैसे हर क्षेत्र में गलत लोग आकर गलत काम करने लगते हैं, यहाँ भी होने लगी है जैव तस्करी (Biopiracy) ।

संभवतः पर्यावरण संरक्षण के लिए अन्ध विश्वास और धार्मिक मान्यताएँ जानबूझ कर जोड़ दी गई। मानव कल्याण के लिए समर्पित चिन्तक कुछ वस्तुओं का शाश्वत संरक्षण चाहते थे। इसके लिये उन्होंने उनमें देवत्व (Divinity) जोड़ दिए : जैसे-देवभाषा (संस्कृत), देवनदी (गंगा), देवनागरी (लिपि विशेष), देवदार (वृक्ष विशेष) आदि। महाकवि कालिदास ने हिमालय के लिए 'देवतात्मा' विशेषण का प्रयोग किया।

पाश्चात्य संस्कृति में भी अनेक पेड़-पौधों के नाम देवी-देवताओं से जुड़े हैं। वनस्पति जगत में सर्वाधिक प्रचलित शब्द 'फ्लोरा' (flora) का मूल लैटिन शब्द फूलों की देवी का नाम है। लगभग हर राष्ट्र का अपना राष्ट्रीय वृक्ष और राष्ट्रीय फूल होता है। उस वृक्ष या उस फूल का उस राष्ट्र की सभ्यता-संस्कृति, भाषा-साहित्य और रीति-रिवाज से गहरा संबंध होता है। ये गहराई अधिक होने पर कभी-कभी अंध विश्वास की सीमा में चली जाती है। यहाँ अंध विश्वास पर्यावरण संरक्षण का अमोघ रक्षा कवच बन जाता है, सामने आता है 'अभयारण्य'।

———

भारत में नम भूमि के रामसार स्थल

सुनील कुमार श्रीवास्तव
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

जहां एक ओर स्थलीय जैव-विविधता एवं उनके परितंत्र के विभिन्न पहलुओं पर निरन्तर शोध हो रहा है, वहीं पिछले दो दशकों में जलीय परितंत्र व नमभूमि के महत्व के अध्ययन में हमारे वैज्ञानिकों ने विशेष रूचि दिखाई है। नमभूमि वे जलीय क्षेत्र हैं, जिनकी गहराई छः मीटर से अधिक न हो, प्राकृतिक हों या कृत्रिम, स्थाई या अस्थाई सभी प्रकार के जल स्रोत, ताल, नदी, दल-दल, जलाशय, कीचड़ व समुद्री जल के तटीय क्षेत्र, कच्छ एवं धान की खेती वाले सभी क्षेत्रों को नम भूमि कहते हैं। इनके अतिरिक्त समुद्री किनारों पर पाये वाले कोरल रीफ, बाढ़ के पानी द्वारा भरे पोखर एवं खारे पानी की झील तथा स्थलीय व जलीय क्षेत्रों के बीच वाले स्थानों को भी नम भूमि के अन्तर्गत किया गया है। इन नमभूमि क्षेत्रों की रक्षा व संरक्षण एवं मानव कल्याण में इनकी महत्व को देखते हुए ईरान के रामसार नगर में वर्ष 1971 में एक अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ जिसमें 92 देशों ने भाग लिया। भारत ने इसकी सदस्यता 1981 में ली। वर्तमान में इनकी सदस्यता 159 देशों की है। वर्ष 2008 तक विश्व में लगभग 1846 नमभूमि क्षेत्रों को रामसार स्थल घोषित किया गया जिनका क्षेत्रफल 181 लाख हेक्टेयर है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के नम भूमि क्षेत्रों को चिन्हित कर उन्हें रामसार स्थल घोषित करने हेतु निम्न मापदण्ड स्थापित किये हैं।

1. दुर्लभ, प्राकृतिक व लगभग प्राकृतिक नमभूमि क्षेत्र जो किसी जैव भौगोलिक क्षेत्र में स्थित हों।

2. इनमें दुर्लभ व संकटग्रस्त जैव विविधता का पाया जाना।

3. किसी जैव भैगोलिक क्षेत्र की जैव विविधता में मिलने वाली महत्वपूर्ण वनस्पति व जन्तु प्रजातियों का होना।

4. विषम परिस्थितियों में उन वनस्पति व जन्तु प्रजातियों का पाया जाना जो अपने जीवन चक्र के कठिन पड़ाव में हों।

5. इन नमभूमि में निरन्तर लगभग 20,000 से अधिक प्रवासी पक्षियों का आवागमन हो।

6. पक्षियों की कुल तादाद का कम से कम एक प्रतिशत की संख्या की आश्रित करें।

7. मछलियों के लियों प्रचुर आहार तथा अन्य जलीय जन्तुओं के लिए संकरण स्थल का होना।

8. मछलियों की प्रजातियों तथा उनके वंश के जीवन चक्र एवं प्रजातियों के पारस्परिक समन्वय के मेलमिलाप का महत्वपूर्ण अनुपात हो, जो नमभूमि को दर्शाते हुए विश्व जैव विविधता में अपना योगदान भी दें।

भारत में वर्ष 1980 के दशक में छः रामसार स्थल घोषित किये गये थे। देश में हो रहे निरन्तर पर्यावरण असन्तुलन के चलते यहाँ के प्राकृतिक जन स्रोत व नमभूमि एवं उनमें पायी वाली जैव विविधता नष्ट हो रही है तथा प्राकृतिक एवं जैविक असन्तुलन भी बिगड़ रहा है। इन बिन्दुओ पर विचारार्थ हमारे पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अधीन नमभूमि बोर्ड ने इस क्षेत्र में कार्यरत वैज्ञानिकों एवं डब्लू डब्लू एफ तथा विभिन्न प्रदेशों में कार्यरत गैर सरकारी संस्थाओं से परामर्श कर वर्ष 2002 से 2005 तक उन्नीस अन्य नमभूमि क्षत्रों को रामसार स्थल घोषित किया। इस प्रकार भारत में कुल नमभूमि रामसार स्थल क्षेत्रों की संख्या पच्चीस (25) हो गयी है (मान-चित्र-1), जिनका कुल क्षेत्र 67,131 हेक्टेयर है। इस रामसार स्थलों के स्थान, स्थापना वर्ष, क्षेत्रफल एवं मिलने वाली जैव-विविधता के महत्व को संलग्न तालिका में उल्लेख किया गया है।

रामसार स्थल

क्र.स.	नमभूमि का नाम	राज्य	स्थापना का वर्ष	क्षेत्रफल (वर्ग किमी)	जैविक महत्व
1.	लोकटक झील	मणिपुर	1990	266	यहाँ पर 233 जलीय पौधे; 425 जन्तु प्रजातियां पायी जाती हैं।
2.	चिल्का झील	उड़ीसा	1981	1165	उड़ीसा में पायी जाने वाली कुल 2700 पुष्पी प्रजातियों में से 706 प्रजातियाँ यहाँ मिलती हैं।
3.	सांभर झील	राजस्थान	1990	240	यहाँ पर खारे पानी में पाया जाने वाला प्रसिद्ध हरित शैवाल *डुनेलिएना सेलाइना* पाया जाता है।
4.	क्योलादेव	राजस्थान	1981	28.73	यहाँ पर जलीय व उच्च स्थलीय प्राकृतवास में विविधता पायी जाती है। यहां पर पक्षियों की 230 प्रजातियों में साइबेरियन क्रेन प्रमुख हैं।
5.	हरिके नमभूमि	पंजाब	1990	41	यहाँ पर *फ्रेगमाइटिस, टाइफा* व *सैकेरम* प्रजातियों व सूक्ष्मजीवी जलीय पौधों की प्रजातियां मिलती हैं।
6.	वुलर झील	जम्मू एवं क़श्मीर	1990	189	सूक्ष्मजीवी जलीय पौधों की 82 प्रजातियों के साथ प्रचुर मात्रा में जलीय वनस्पतियां मिलती हैं।
7.	पोंग डेम	हिमाचल प्रदेश	2002	300	इसके कैचमेंट में चीड़ वन एवं जलाशय में महाशीर मछली का संकरण क्षेत्र पाया जाता है।
8..	भीतरकनिका	उड़ीसा	2002	650	यहाँ पर कुल 62 कच्छ वनस्पति प्रजातियों में 58 प्रजातियाँ पायी जाती हैं।
9.	सोमोरारी	जम्मू एवं कश्मीर	2002	120	इस शुष्क मरूस्थलीय झील के छिछले दलदलीय भागों में *पोटामोजिटॉन, कैरेक्स, कैरागाना* व *एसट्रेगलस* प्रजातियाँ पायी जाती हैं।
10.	पूर्वी कलकाता नमभूमि	पश्चिम बंगाल	2002	125	यहाँ वनस्पतियों की लगभग 100 प्रजातियाँ मिलती है, जिनमें *सेजिटेरिया, क्रिप्टोकॉरनी, एक्रोस्टिकम* (मैंगूव फर्न) आदि प्रमुख हैं।
11.	प्वाइंट कैलिमर जीव अभयारण्य एवं पक्षी विहार	तमिलनाडु	2002	385	यहाँ पाकृतवास में विविधता जैसे शुष्क सदाबहार वन से कच्छ वनस्पति तथा घास के मैदान देखने को मिलते हैं।
12.	दिपोर बील	असम	2002	40	यहाँ मुख्यतः जलीय सूक्ष्मजीवी वनस्पतियों में *ऑसिलेटोरिया, माइक्रोसिस्टिस* एवं अन्य जलीय वनस्पतिया भी पायी जाती हैं।

13.	कंजिल झील	पंजाब	2002	1.83	यहाँ पर प्रदूषण सूचक वनस्पतियां जैसे *प्रेग्माइटिस, टाइफा* व कीटभक्षी पौधा *यूट्रिकुलेरिया* पाया जाता है।
14.	भोज नमभूमि	मध्य प्रदेश	2002	32	इस झील में 208 सूक्ष्मजीवी व 106 जलीय वनस्पतियां मिलती है।
15.	रोपड़ झील	पंजाब	2002	13.65	यहाँ वृक्षों की 26 प्रजातियाँ, झाड़ी की 15 एवं घास की 20 प्रजातियों के साथ कीटभक्षी पौधे भी मिलते है।
16.	कोलरू झील	आंध्र प्रदेश	2002	901	यहाँ मिलने वाली मुख्य वनस्पतियों में ताड़ *(बोरेसस फ्लेब्लिफर)*, बबूल *(अकेशिया निलोटिका)* व नीम *(अजाडिरेक्टा इण्डिका)* मिलती हैं।
17.	वेम्बानाद-कोल नमभूमि	केरल	2002	1512.5	यहाँ मुख्यतः झींगों व दुर्लभ पेलिकन प्रजातियों के उत्पादन हेतु नर्सरी का प्रयोजन है।
18.	सष्टमकोटा झील	केरल	2002	3.73	इस नमभूमि क्षेत्र में मुख्यतः कीटभक्षी पौधों की *ड्रोसेरा* प्रजाति व काजू, धान, टेपियोका व केला पाया जाता है।
19.	अष्टमुडी झील	केरल	2002	614	इस झील में *एवीसीनिया, ब्रुगेरिया* व *सोनेरेशिया* जैसी कच्छ वनस्पतियाँ के अतिरिक्त *साइजीजियम ट्रेवेंकोरिकम* व *कैलेमस रोतांग* की संकटग्रस्त प्रजातियां पायी जाती हैं।
20.	चंद्रलाल नमभूमि	हिमाचल प्रदेश	2005	1.5	यह झील 4420 मी. की उचाँई पर स्थित है तथा इसके कैचमेंट क्षेत्र में मिलने वाली साइटिस जन्तु प्रजातियों में स्नों लियोपार्ड, हिमालयन आइबेक्स व ब्लू शीप के अतिरिक्त 62 पुष्पी शाक प्रजातियाँ पायी जाती है।
21.	होकरा नमभूमि	जम्मू एवं कश्मीर	2005	13.75	यह झेलम बेसिन के समीप प्राकृतिक बहुवार्षिक नमभूमि हैं, यहाँ लगभग 68 जलीय पक्षी प्रजातियों का संकरण का स्थल हैं। यहाँ की वनस्पतियों में *टाइफा, प्रेग्माइटिस, इल्योकेरिस, ट्रापा* एवं अनेकों जलीय वनस्पतियां भी मिलती हैं।
22.	रेणुका नमभूमि	हिमाचल प्रदेश	2005	0.3	यह एक पेय जल की प्रचुरता वाला प्राकृतिक नमभूमि है। इसके कैचमेंट में पायी जानी वाली मुख्य प्रजातियाँ में *शाल, टर्मिनेलिया टोमेन्टेसा, स्टरकुलिया यूरेन्स, बेल* एवं झील में अनेकों जलीय पौधे भी मिलते हैं।
23.	रूद्रसागर नमभूमि	त्रिपुरा	2005	2.4	झील में व्यापारिक महत्व की मछलियों के अतिरिक्त आइ यु सी एन (IUCN) की रेड लिस्ट की तीन धारी वाले रूफ टर्टिल का प्राकृतवास भी है। झील में कुछ दुर्लभ जलीय वनस्पतियां एवं खरपतवार पाये जाते हैं।

24.	सूरिन्सार-मन्सार झील	जम्मू कश्मीर	2005	3.5	हिन्दुओं की पवित्र भूमि जो पंजाब के मैदानी अर्ध-शुष्क क्षेत्र में है तथा झेलम बेसिन को जोड़ती है। यह एक प्रवासी एवं जलीय पक्षियों का आदर्श संकरण स्थल भी हैं।
25.	अपर गंगा नदी (ब्रिजघाट से नरोरा)	ऊत्तर प्रदेश	2005	265.9	यह गंगानदी का छिछला विस्तार है जिसमें जगह-जगह पर बीच में रिजर्वायर मिलतें हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ आई यू सी एन (IUCN) रेड लिस्ट में नामित डॉलफिन, मगरमच्छ, टर्टिल एवं मछलियों के प्राकृतवास भी हैं। यहा पर अनेकों औषधीय पुष्पी पौधे एवं आर्थिक महत्व की वनस्पतियां भी पायी जाती है जिसमें शीशम, सीता अशोक, सागौन एवं नीम प्रमुख हैं।

———

हिमाचल प्रदेश के नमभूमि–रामसार स्थल की वनस्पति विविधता

सुनील कुमार श्रीवास्तव
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

नमभूमि क्षेत्र जहाँ विश्व के सर्वाधिक उत्पादक क्षेत्रों में से एक हैं, वहीं ये जैव विविधता के पोषक भी हैं। इनमें वनस्पतियों व जीव-जन्तुओं का संरक्षण तो होता ही हैं साथ ही खाद्य श्रृखलाओं को स्थायित्व प्रदान करने के अतिरिक्त बाढ़ नियंत्रण, पोषक तत्व संघनन, भू-जल शुद्धिकरण एवं निर्गमन, व्यर्थ जल एवं मलमूत्र का प्राकृतिक शोधन, कृषि उद्योग एवं पीने के जल के स्रोत आदि जैसे परितंत्रों द्वारा ये हमें लाभान्वित करते हैं। इसके अतिरिक्त ये हमारे पर्यटन के विकास के अभिन्न अंग तथा हमें जलीय परिवहन भी प्रदान करते हैं। भारत के अनेकों नम भूमि क्षेत्रों में हर वर्ष पर्याप्त संख्या में प्रवासी पक्षी भी आते हैं जो पर्यटन के माध्यम से अच्छी विदेशी मुद्रा अर्जित कराने में सहायक हैं।

हिमाचल प्रदेश में नमभूमि लगभग 19,870 हेक्टेयर क्षेत्र में है, जिसमें प्राकृतिक एवं कृत्रिम दोनों ही हैं। यहां पर कुल नमभूमि की संख्या 22 है जिनमें महाराणा प्रताप सागर, गोविन्द सागर, पन्डोह, कमेरा, कुमारबाह, रिवाल्सर, नाको, प्राशर, करैरी, करमाली, सूरज, चंद्रताल, महाकाली, चन्दरनौन, दशीर, लेमेदल, मणिमहेश, सेरूवल्सर, खज्जियर, भृगु, घगासरू तथा रेणुका झील हैं। इनमें तीन नमभूमि क्षेत्रों को रामसार स्थल चिह्नित किया गया हैं, ये है रेणुका झील, पौंग डेम (महाराणा प्रताप सागर) व चंद्रताल झील (मानचित्र)।

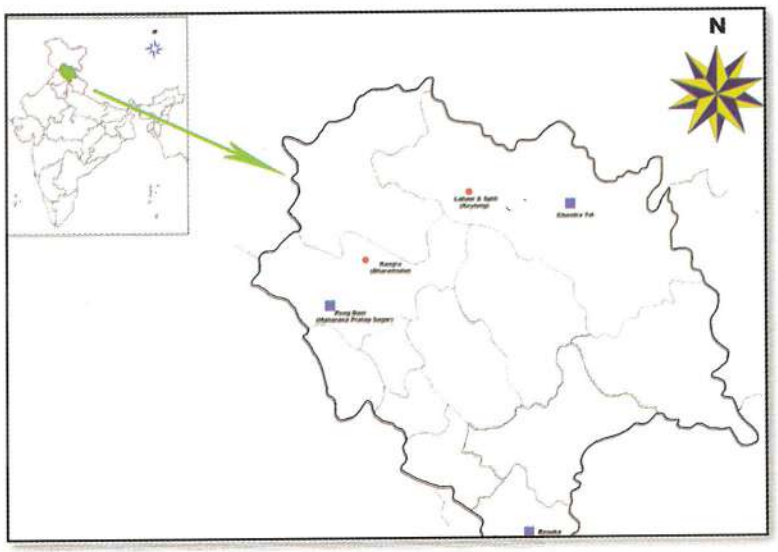

मानचित्र : हिमाचल प्रदेश के रामसार स्थल

रेणुका झील

सिरमौर जिले में स्थित रेणुका झील धार्मिक पर्यटन एवं सांस्कृतिक स्थान के रूप में जानी जाती है। यह रेणुका अभयारण्य क्षेत्र का एक भाग है, जिसका कुल क्षेत्रफल 403 हेक्टेयर, इसमे रेणुका झील 30 हेक्टेयर क्षेत्र में हैं, तथा समुद्र तल से इसकी ऊँचाई 650 से 950 मी० तक की है। रेणुका झील के कैचमेंट क्षेत्र व झील में पायी जाने वाली मुख्य वनस्पतियां निम्न हैं :

रेणुका झील

स्थलीय वनस्पतियां इनमें मुख्यतः *शाल, एनोजिसस लेटिफोलिया, टर्मिनेलिया अलाटा, कत्था, आँवला, अमलतास,*

झील के किनारे उगता कमल (निलम्बो नयूसिफेरा)

बाउहुनिया बाहलाई

मुराया कोएनिंगी

एगल मार्मेलास

मैलोटस फिलीपीनेन्सिस तथा *डेन्ड्रोकैलेमस स्ट्रिक्टस* प्रमुख हैं। *मुराया, एढाटोडा जीलेनिका, वुडफोर्डिया, निकटेन्थस, आर्बोर-ट्रिस्टिस* आदि के वृक्ष एवं झाड़ियां सामान्यतः मिलती हैं। घासों में *क्राइसोपोगॉन* व *हेटेरोपोगॉन* की जातियां प्रमुख हैं। मिश्रित पर्णपाती वनों में *शशिम, ग्रीविया आपटिवा, तून, टर्मिनेलिया अलाटा, हरड़, बहेड़ा, सेमल, कयनार, हल्दीना कार्डिफोलिया* एवं *करौंवा* के अतिरिक्त झरनों के इर्द गिर्द *होलोपटीलिया इन्टोग्रीफोलिया* पाये जाते हैं। ढलानों पर मालू, *बेल व युफोर्बिया रॉयलियाना* भी देखे जाते हैं। वनों में *लैन्टाना कमारा* व *एढेटोडा जीलेनिका* एक खरपतवार के रूप में पूरी तरह फैली हुई हैं।

जलीय वनस्पतियाँ : ये वनस्पतियाँ खुले रूप से तैरती हैं एवं कुछ किनारे पर मिलने वाली वनस्पतियाँ अपनी जड़ द्वारा दलदल में लगी रहती हैं। खुली तैरती वनस्पतियाँ में *हाइड्रिला वर्टिसिलेटा, पोटामोजिटान पेक्टिनेटस, नाजस माइनर, निम्फैइडिस इन्डिकस* आदि पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त *पोटामोजिटान इन्डिकस पो० क्रिस्पा, निलम्बो न्यूसिफेरा* आदि जल में जड़ द्वारा भूमि से लगी रहती हैं।

जलस्थलीय-दलदलीय वनस्पतियाँ : इनमें *लेम्ना माइनर, पॉलीगोनम ग्लैब्रम, एकोरस कैलेमस, टाइफा एंगुस्टेटा, साइपेरस कोरिम्बोसस, सा. डिस्टैन्स, कोलोकेशिया एन्टीकोरम* आदि प्रमुख हैं। झील के उत्तरी छोर पर ढलानों से मिट्टी आकर भर जाने से वहाँ शाकीय व झाड़ी वनस्पतियाँ मिलती हैं। इनमें *सोलेनम इन्डिकम, वाइटेक्स निगण्डो, सेन्टेला*

एशियाटिका, धतुरा सुआवियोलेन्स, बोरहाविया डिफ्यूजा, आल्टरनैन्थिरा, सेसाइलिस, एमरैन्थस विरिडिफोलिया, आइपोमिया एक्वेटिका, डाइकैन्थियम एनुलेटम, क्राइसोपोगॉन जाति एवं *थाइसैनोलिना मैक्सिमा*, आदि हैं। झील के चारों किनारों पर ढलान वाले क्षेत्रों में काष्ठीय वनस्पतियाँ मिलती हैं। इनमें *फाइकस हिसपिडा, गूलर, फिनिक्स ह्यूमिलिस, जाभुन, कॉर्डिया डाइकोटोमा, टर्मिनेलिया, डेन्ड्रोकैलेमस स्ट्रिक्टस, अमलतास* आदि प्रमुख हैं। झील के दक्षिणी छोर पर अधिक मिट्टी के जमाव से कमल बहुत अधिक मात्रा से देखा गया हैं। इसके चलते यहां सैकड़ो खरपतवार भी मिलते हैं तथा जलीय वनस्पति को नुकसान पहुँचाते हैं। इसका निदान कमल की बढ़ती पैदावार को खुदवा कर सतह से निकालने पर किया जा सकता हैं।

पोंग डैम (महाराणा प्रताप सागर)

पोंग डैम राज्य के कांगड़ा जिले में स्थित है। व्यास नदी पर बना यह जलाशय हिमालय की तलहटी में बसी धौलाधर श्रृंखलाओं में स्थित हैं। इसकी भौगोलिक स्थिति 31° 80° से 32° 07" 26' उत्तरी अक्षांश तथा 75° 80" से 76° 25" पूर्वी दशांश है। सन् 1975-76 में ब्यास नदी पर जल विद्युत परियोजना के बनने से पोंग जलाशय अस्तित्व में आया था। यह जलाशय भारत के मैदानी भाग के एक छोर पर होने के कारण यहाँ पर निरन्तर सैकड़ो प्रवासी पक्षी मध्य क्षेत्रों से आते हैं। इस नम भूमि में अनगिनत जैव विविधता मिलने तथा उनके संरक्षण हेतु वर्ष 1983 में हिमाचल राज्य सरकार ने उसे जीव अभयारण्य भी घोषित कर दिया।

पोंग डैम की सहायक नदी

इस जलाशय की लम्बाई लगभग 42 किमी है जो उत्तर पूर्वी दिशा से दक्षिण पश्चिम की ओर फैला हुआ है। इसका कैचमेंट क्षेत्र लगभग 45 हजार हेक्टेयर (अधिकतम) है जो मौसम के अनुरूप बढ़ता घटता रहता है और औसतन 30 हजार हेक्टेयर आंका गया है। इसके जलग्रहण के क्षेत्रों की ऊँचाई समुद्रतल से 450 से 700 मी० आंकी गई है।

पादप भौगोलिकीय दृष्टि से कांगड़ा घाटी पश्चिम हिमालय की धौलाधर श्रृखालाओं में बसी हुई है तथा यहाँ समतल भूमि के साथ-साथ निचली धारें एवं गहरी पतली घाटी पायी जाती है। कुल मिलाकर यहाँ की ऊँचाई (समुद्र तल से) में अधिक परिवर्तन नहीं है जिसके कारण यहाँ की वनस्पतियों में भी बहुत अधिक विविधता देखने को नहीं मिलती है। अभयारण्य की भौगोलिक स्थिति एवं मौसम के अनुरूप यहां उष्णकटिबंधीय वन पाये जाते हैं। यहाँ की वनस्पतियों को मुख्यतः तीन भागों में वर्गीकृत किया गया हैं।

स्थलीय वनस्पतियाँ

इन वनों की वनस्पतियों में प्रायः चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष देखे जाते हैं जो आमतौर पर कैचमेंट क्षेत्रो के निचली ऊँचाई पर मिलते हैं। इनमें मुख्य रूप से *सेग ल, एनोजिसस लैटीफोलिया, लानिया कोरोम्डेलिका, आँवला, होलेरिना प्यूबिसेन्स, कीडिया कैलिसिना* एवं *मैलोटस फिलिपिनेन्सिस* आदि हैं। पहाड़ी ढलानों पर *कत्था* तथा *चीड़* का रोपण देखा गया है जिनके बीच-बीच में *फाइकस पामेटा, ग्रीविया आँप्टिवा* तथा *बेल* के भी वृक्ष मिलते है। जलाशय के दोनों ओर स्थित गॉव में जो वृक्ष प्रजातियाँ मिलती हैं उनमें *अमलतास, अरण्य, बट, आम, साइट्रस* प्रजाति तथा *जेटरोफा कुरकास* जो झाड़ी के रूप में लगाया जाता है। समस्त झाड़ी के रूप में *एढटोडा जिलेनिका, करपित्ता, एकनोकार्पस फूट्रिसेन्स* आदि मिलते हैं। लताओं में *वायस, भालू, सिसमपिलास पेरिरा* तथा *वाइटिस* प्रजाति आदि मुख्य है।

कटीली झाड़ी

यहाँ पर कंटीले झाड़ वाले वनों की वनस्पतियों में मुख्यतः *आइपोमिया कारनिया, केसिया टोरा, वाइटेक्स निगण्डो, बोरहाविया डिफ्यूजा, ट्राइडेक्स प्रोकम्बेन्स, ब्यूटिया मोनोस्पर्मा, सोलेनम, नाइग्रम, अरण्य* पाये जाते है। रेतीले नालों के दोनों ओर *कत्थ जिजीफस नुमुलेरिया* तथा सैकरम स्पॉन्टेनियम दिखाई देते हैं। जलाशय दोनों ओर के स्थान समय-समय पर डुबान में रहते हैं। यहाँ पाये जाने वाली सामान्य खरपतवारों में *लेन्टाना कमारा, पार्थीनियम हिस्टिरोफोरस, केसिया ऑक्सीडेन्टेलिस एजिरेटम कॉनिजाइडिस, आक्सेलिस कार्नीकुलेटा, माइमोसा हिमालियाना एक्लिप्टा अल्बा* एवं *एमेरेन्थस स्पाइनोसस* भी मिलती है।

माइमोसा हिमालियाना

होलेरिना प्यूबिसेन्स

जलीय व जल स्थलीय वनस्पतियाँ

जलाशय के जल स्तर बढ़ने व घटने से यहाँ वनस्पतियों की प्रजातियाँ में काफी परिवर्तन देखा गया हैं। इनमें कुछ तो खुले रूप में तैरती हैं व अन्य अपनी जड़ द्वारा दलदल में लगी रहती हैं। खुली तैरती वनस्पतियों में *हाड्रिला वर्टिसिलेटा, सिरेटोफिल्लम डिमर्सम, पोटामोजिटॉन इन्डिकस, पो० क्रिसपस, नाजस माइनर* आदि पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त *वैलिसनेरिया स्पाइरेलिस, मार्सीलिया क्वाड्रिफोलिया* आदि जल में जड़ द्वारा भूमि से लगी रहती है। जल स्थलीय व दलदल वनस्पतियों में *पालीगोनम ग्लैब्रम, टाइफा एंगुस्टेटा, सैजिटेरिया साइनेन्स, साइपरस कोरिम्बोसस, कोलोकेशिया एन्टीकोरम* आदि शामिल हैं। शाहपुर बैराज के नीचे जलाशय के किनारों पर वेलिसनेरिया के टूटे पौधे लहरों द्वारा किनारों पर बहुत मात्रा में पाया गये। जल मे तैरते हुए इनकी पत्तियों को बीच से प्रवासी पक्षियों के द्वारा खा लेने से ये पौधे बह कर किनारे इकट्ठा हो जाते हैं। निकटवर्ती शुष्क स्थानों पर *सोलेनम इन्डिकम, सेन्टेला एथियाटिका, धतूरा सुआवियोलेन्स, बोरहाविया डिफ्यूजा, आल्टरनैन्थिरा सेसाइलिस, आइपोमिया एक्वेटिका, डाइकैन्थियम एनुलेटम, एवं थाइसैनोलिना मैक्सिमा* आदि हैं।

शैवालीय वनस्पतियाँ

शैवाल जलीय परितंत्र के अभिन्न अंग हैं जो परितंत्र की खाद्य श्रृंखला को नियमित बनाये रखकर वहां की जैव विविधता का संरक्षण करते हैं। सर्वेक्षण के दौरान पोंग जलाशय के विभिन्न स्थानों से शैवाल के लगभग 22 नमूने एकत्र किये गये जिनकी पहचान करके बहुत ही महत्वपूर्ण आँकड़े मिले हैं। इन नमूनों में शैवाल की लगभग 41 जातियाँ मिली हैं जिनका प्रारूप एक कोशिका से लेकर फीतेनुमा तक पाया गया।

चंद्रताल झील

चंद्रलाल झील उत्तर पश्चिमी हिमालय मे राज्य के लाहौल-स्पिति जिले में स्थित हैं। यह एक प्राकृतिक झील है

चंद्रताल झील

जिसकी उत्पत्ति बर्फीली नदी से हुई है तथा इसकी ऊँचाई समुद्र तल से 4420 मी० है। भौगोलिक स्थिति 32°28"30 उत्तर तथा 77° 37" पूर्व में हैं। ग्रेटर हिमालय व पीर पंजाल श्रृखंलाओं के बीच की तलहटी में अर्धचंद्राकार नीले पानी की झील से ही चंद्रा नदी निकलती है। चंद्रताल शुष्क मरूस्थल परितंत्र की झील है, गर्मी में दिन का तापमान 26-30 डिग्री तक चला जाता है। इतनी ऊँचाई पर होने के कारण सूर्य की गर्मी व उच्च विकिरण यहाँ की शाकीय वनस्पतियाँ को उगने में सहायक होती है। सर्दी के मौसम में यह झील पूरी तरह जम जाती है। वर्ष के अधिकांश समय में (लगभग आठ से नौ महीनों तक) झील का कैचमेन्ट क्षेत्र बर्फ से ढका रहता है। चंद्रताल जाने के लिए बादल से 12 किमी. कुन्जम दर्रा से 14 किमी. तथा ब्रारलाचा दर्रा से उपरी चंद्रा हो कर लगभग 40 किमी. का पैदल रास्ता हैं।

चंद्रताल झील के उत्तरी दक्षिणी ओर चंद्रा नदी पूर्व में कुन्जम-बाल्महो श्रृखंलाएं तथा पश्चिम सीमा पर स्थित विशाल समुन्द्री टापू ग्लैशियर जो कि लाहौल पर्वत की मुश्किल श्रृंखला पर स्थित है। इस झील का कुल क्षेत्रफल लगभग 1.53 वर्ग किमी. तथा लम्बाई लगभग एक किमी. एवं परिधि 2.5 किमी. है। ग्रीष्मकाल में खूबसूरत झील को देखने यहां निरन्तर देश व विदेशों से पर्यटक आते रहते है। झील में किसी भी प्रकार का मानवीय दखल नहीं है, जिसके चलते यह प्रदूषण मुक्त है। चन्द्रताल झील के आस पास के कैचमेन्ट क्षेत्र में आक्सीजन की कमी, कम वायु दबाब, उच्च विकिरण, अत्यधिक शीत, शुष्क वातावरण एवं तेज हवाएं चलने से यहाँ का मौसम साधारण जन-जीवन के लिए उपयुक्त नहीं हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून के कार्य योजना के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश के उन सभी नम भूमि रामसार स्थल का सर्वेक्षण किया गया तथा यहाँ की वनस्पतियों के नमूनों को एकत्र एवं पहचान कर सूची तैयार की गयी है साथ ही इस नमभूमि की पारिस्थिकीय का भी अध्ययन किया गया।

वनस्पतिक विविधता

गर्मी के मौसम में निरन्तर बर्फ के पिघलने से जल का कुछ ही भाग इन वनस्पतियों को मिल पाता है जिससे अति शुष्क अवस्था के चलते इनमें विशेष लक्षण जैसे पत्तियों का नुकीला एवं रोम युक्त हो जाना, एक ही स्थान पर इकट्ठा होना, पोटी कठोर एवं गहरी जड़ो का पथरीली दरारों तक पहुचंना, तनो, एवं पत्तियों का लाल रंग होने से सूर्य के तीव्र विकिरण से अपने को बचाना एवं कीटों को आकर्षित कर निषेचन क्रिया में सहायक होना जैसे परिवर्तन का मिलना यहाँ की वनस्पतियों की विशेषता है।

सर्वेक्षण के दौरान चंद्रताल झील के कैचमेंट से लगभग 62 वनस्पति प्रजातियां एकत्र की गयी जो मुख्यतः विशिष्ट शीत मरूस्थल वनस्पतियों के अन्तर्गत आंकी गयी है। इस क्षेत्र में वृक्ष एवं झाड़ी वनस्पति नहीं पायी जाती है। जलीय व दलदलीय वनस्पतियों में *जन्कस, हेलरपेस्टिस* व *पोटामोजिटान* प्रजातियां ही मिलती हैं। झील के निकटतम क्षेत्र में मिलने वाली वनस्पतियों में मुख्यतः *रेननकुलस ट्राइपोफिल्लस, जेनशियाना मारजिनेटा, प्रिगलोचिन पेलिस्ट्री, जिरैनियम कोलाइनम, पोटेन्टिला मल्टीफिडा, पेडिकुलेरिस पेक्टिनेटा, लिम्नोसिला एक्वेटिका, जन्कस हिमालेन्सिस, ज० मेम्बेनेसियम, पॉलीगोनम एलपाइनम, ट्यूबलासम, पॉलीगोनम एफिने, लियोन्टोपोडियम एलपाइनम, वेरोनिका बेकाबंगा, सेक्सीफ्रेगा फ्लेजिलेरिस, रोडियोला क्रेनुलेटा, ट्राइफोलियम रिपेन्स, जेन्थिएनिला मूरक्रॉफ्टियाना लोमेटोगोनियम कोरिन्थियेकम, एनाफेलिस नेपालेन्सिस,* केरम कार्वी आदि हैं।

कैचमेंट क्षेत्र के पथरीले ढलानों पर पायी जाने वाली वनस्पतियां प्रायः कठोर होती हैं, जिनकी जड़ें भूमि के भीतर तक गहरी जाती हैं। ये पौधे कांटेदार एवं रोमयुक्त होते हैं। यहाँ मिलने वाली वनस्पति प्रजातियों में मुख्यतः *एस्ट्रेगलसः इमोडी, टैरेक्सेकम आफिशिनेल, ड्रबा लेन्सियोलेटा, प्लांटागो डिप्रेसा इरीमोपोआ परिसका, एफिड्रा इंटरमीडिया, आरनीबिया यूक्रेमा, एस्टर फ्लेसिडस, लिन्डलोफिया लाँगीफ्लोरा, एस्ट्रगलस साइजैन्थस, एस्टर एल्टाइकस, साइसर माइक्रोफिल्लम, थाइमस लीनियेरिस, सिस्टोपटेरिस फ्रेजाइल, साँसूरिया जैकिया, वालढेमिया ग्लेब्रा* आदि हैं।

प्लांटागो डिप्रसा

पेडिकुलेरिस पेक्टिनेटा

थाइमस लीनियेरिस

रोडियोला क्रेनुलेटा

साइसर माइक्रोफिल्लम

एस्ट्रेगलस राइजैन्थस

एफिड्रा इंटरमीडिया

सेक्सीफ्रेगा फ्लेजिलेरिस

जेन्थिएनिला मूरक्रॉफ्टियाना

झील के संकट

झील की भौगलिक स्थिति को देखते हुए इस क्षेत्र में किसी भी प्रकार का मानवीय अतिक्रमण नहीं है। परन्तु स्थानीय चरवाहों द्वारा अपनी भेड़ों को झील के चारों ओर चरवाने से यहाँ की शाकीय वनस्पतियों का अस्तित्व खतरे में पड़ रहा है। इसके अतिरिक्त झील का कैचमेंट क्षेत्र सर्दी में पुरी तरह से बर्फ से ढका रहता है, और कई माह में बर्फ पिघलने से ढलानों की मृदा जल बहाव के साथ झील में आती हैं जिससे झील में पानी का स्तर तो बढ़ता ही है तथा उसकी सतह पर मिट्टी का जमाव बढ़ जाता है। जिससे किनारे की वनस्पतियां डूब कर नष्ट हो जाती है।

संरक्षण

झीले के संरक्षण के लिए विशेष रूप से इसके चारों ओर की ढलानों से मिट्टी के बहाव को झील में आने से रोकना है। इसके लिए वहां पर उग रही शाकीय वनस्पतियों का अस्तित्व बना रहना आवश्यक है। इस क्षेत्र में चरवाई पूर्ण रूप से बन्द करनी होगी, तभी हम इस प्राकृतिक हिमाद्रि झील को सुरक्षित एवं संरक्षित कर सकते हैं।

———

भोज नमभूमि : शैवालों के दृष्टिकोण से एक परिचय

एस. एल. गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

प्राकृतिक अथवा मानव निर्मित सभी प्रकार के खारे एवं स्वच्छ झीलें, जलाशय, वर्षा से भरे पोखर तथा ताल-तलैया इत्यादि जिनकी गहराई 6 मीटर से अधिक नहीं होती, नम भूमि की परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं। न केवल आर्थिक रूप से वरन् पारिस्थितकीय तथा जैव विविधता की दृष्टि से भी ये नमभूमि काफी महत्वपूर्ण हैं। ताल-तलैयों का जिक्र आते ही भोपाल का नाम जेहन में आ जाता है जहाँ ''भोज नमभूमि'' स्थित है। वास्तव में यह एक नमभूमि न होकर दो झीलों का एक संयुक्त नाम है। अपर लेक (बड़ा तालाब) एवं लोअर लेक (छोटा तालाब) को ही भोज नम भूमि के नाम से जाना जाता है जिसका इतिहास उतना ही पुराना और रोचक है जितना भोपाल शहर का।

''झीलों का शहर'' भोपाल 23° 16' उत्तरी अक्षांश एवं 77° 26' पूर्वी देशान्तर पर अवस्थित है। कहा जाता है कि भोपाल शब्द की उत्पत्ति भोजपाल अथवा भोज के बाँध से हुई है जिसका निर्माण राजा भोज के शासनकाल में हुआ था। बड़ा तालाब यानि लेक का निर्माण राजा भोज द्वारा रेतघाट के निकट कोलन नदी के ऊपर मिट्टी का बाँध (कमला पार्क) बनाकर किया गया था जबकि छोटा तालाब यानि लोअर लेक का निर्माण सन् 1794 में नवाब छोटे खान द्वारा किया गया था। इन दोनों तालों के बारे में भोपाल में एक कहावत प्रसिद्ध है जो इनकी महत्ता को इंगित करता है–

ताल तो भोपाल ताल और सब तलैया,
रानी तो कमलापति और सब रनैया।

आजादी के पहले भोपाल वासियों के लिए अपर लेक बिना किसी शोधन के पीने के पानी का एक मात्र स्रोत था जो यह दर्शाता है कि उस समय इसका पानी कितना स्वच्छ था। वर्तमान में भी यह भोपाल की लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या को शोधन के पश्चात पीने का पानी उपलब्ध कराता है जो इसकी निरन्तर घटती हुई गुणवन्ता और बढ़ती हुई जल प्रदूषण की ओर इशारा करता है। जल प्रदूषण का मुख्य कारण अनेकों नालों के जरिये शहरी अपशिष्टों, त्योहारों के समय मूर्तियों के विसर्जन, पोषक पदार्थ जैसे–नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की बड़ती मात्रा के कारण शैवालों तथा अन्य खर-पतवारों की वृद्धि है। अपर लेक के प्रदूषित जल में पाये जाने वाले शैवालों का विस्तृत विवरण ही प्रस्तुत लेख का उद्देश्य है परन्तु उसके पहले दोनो तालों की क्षमता का उल्लेख आवश्यक है।

अपर लेक का वर्षा जल संग्रहण क्षेत्र 361 वर्ग कि.मी. एवं जल फैलाव क्षेत्र लगभग 31 वर्ग कि.मी. है जबकि उसके मुकाबले लोअर लेक का जल संग्रहण क्षेत्र लगभग 10 वर्ग कि.मी. और जल फैलाव क्षेत्र लगभग 1.3 वर्ग कि. मी. है। अत्यधिक जल प्रदूषण के कारण लोअर लेक के पानी का उपयोग पीने के लिए नहीं वरन् कपड़ा धोने एवं अन्य कार्यो के लिए किया जाता है। विभिन्न मौसमों में अपर लेक में पाये जाने वाले शैवाल हरे (ग्रीन एल्गी), नील-हरित (ब्लूग्रीन एल्गी जिन्हे साइनोबैक्टेरिया नाम से भी जाना जाता है) एवं युक्ताप्य (डाएटम) सभी समूह के हैं जिनकी संख्या में परिवर्तन ताल में उपलब्ध पानी की मात्रा, तापमान, जल में घुलनशील आक्सीजन की मात्रा इत्यादि के ऊपर निर्भर करती है। प्रस्तुत तालिका में उन सभी महत्वपूर्ण शैवालों का विवरण दिया गया है जिनकी उपलब्धता 50 प्रतिशत से ऊपर है। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा अपर लेक को उन सभी झीलों के साथ विशेष दर्जा दिया गया है जिनका संरक्षण अति आवश्यक है।

तालिका – जलवायु के आधार पर शैवालों की प्रतिशत उपलब्धता

समूह	शैवाल के नाम	प्रतिशत	ग्रीष्म ऋतु	शीत ऋतु	वर्षा ऋतु
युक्ताप्य	*सिम्बेला*	74-79	+	+	+
	नेवीकुला	76-80	+	+	+
	निश्चिया	82-85	+	+	+
	मिलोसिया	80-84	+	+	+
	साइनेड्रा	70-76	+	+	+
नील-हरित शैवाल	*एनाबिना*	70-77	+	+	+
	एफैनोथिस	80-90	+	+	+
	मेरिस्मोपीडिया	70-76	+	+	+
	माइकोसिस्टिस	85-92	+	+	+
	फारमिडियम	85-90	+	+	+
	आसिलेटोरिया	80-85	+	–	–
हरित शैवाल	*यूएस्ट्रम*	75-80	+	+	+
	पेडिएस्ट्रम	50-55	–	+	+
	सेनेडेस्मस	48-51	+	+	+
	स्पाइरोगाइरा	49-52	+	–	–
यूग्लीना	*यूग्लीना*	60-65	+	+	+
	फेकस	60-72	+	–	–

संरक्षण :

अपर लेक के जल की गुणवत्ता को सुधारने एवं प्रदूषण की मात्रा कम करने के लिए सन 1995 में मध्य प्रदेश सरकार के अन्तर्गत पर्यावरण मंत्रालय ने सन 1995 में भोज नम भूमि परियोजना शुरु की जिसके लिए जापान सरकार से 247 करोड़ की सहायता भी प्राप्त हुयी। इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य निम्न था–

1. अपर लेक में गाद प्रवेश (सिल्टिंग) को रोकना एवं गाद को हटाकर झील की संग्रहण क्षमता को बढ़ाना।
2. जल/भूमि कटाव को रोकना और अपर लेक के मध्यस्थित ''तकिया द्वीप'' को सुरक्षित रखना एवं टूरिस्ट स्पॉट के रूप में विकसित करना।
3. जल में उपस्थित हानिकारक जलीय पौधों एवं शैवालों को हटाकर जल की गुणवत्ता को सुधारना।
4. झील के किनारे-किनारे वृक्षारोपण के जरिये बफर जोन स्थापित करना।
5. मूर्तियों के विसर्जन को पूरी तरह बन्द करना।

6. जल में अपशिष्ट पदार्थो के प्रवेश को रोकना एवं शहरी प्रदूषित जल के शोधन के लिए शोधन यंत्र की स्थापना करना।
7. अपर लेक के चारों ओर जल संग्रहण क्षेत्र को बढ़ाना।

उपरोक्त कदमों के कारण वर्तमान में अपर लेक की जल गुणवत्ता में काफी सुधार आया है। शैवालों का संग्रहण एवं परिचय इस उद्देश्य के साथ किया गया जिससे जल प्रदूषण संकेतक शैवालों की जानकारी आसानी से हो सके।

1 : अपर लेक, भोपाल का एक विहंगम दृश्य 2 : अपर लेक, भोपाल से शैवालों का संग्रहण

शैवाल जनित जैव ईंधन ऊर्जा का एक सशक्त विकल्प

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

ऊर्जा के पारम्परिक स्त्रोतों के बढ़ते उपयोग ने इनके अत्यधिक खनन को बढ़ाया परिणाम स्वरूप जहाँ एक ओर ये स्त्रोत सीमित होने के कारण तेजी से घटने लगे वहीं दूसरी ओर इनके मूल्यों में अपार वृद्धि होती जा रही है। इसके अतिरिक्त पेट्रोल, डीजल, मिट्टी का तेल और कोयले के जारण से वातावरण के कार्बन डाइआक्साइड CO_2 स्तर में भी अत्यधिक वृद्धि हुयी जिसके परिणाम स्वरूप हरित गृह प्रभाव के कारण पृथ्वी का उष्मायन प्रारम्भ हो गया है जिसके कारण हमारे वातावरण में बहुत सारे हानिकारक परिवर्तन हो रहे हैं जैसे ऋतुयें असंतुलित हो रही हैं, हिमनद (ग्लेशियर), आर्कटिक व अंटार्कटिक क्षेत्र पिघल रहे हैं। समुद्र तटीय क्षेत्रों के डूबनें की संभावना बढ़ती जा रही है। इन सबके पीछे एक मात्र कारण है पारंपरिक ऊर्जा संसाधनों के प्रयोग से उत्सर्जित कार्बनडाइआक्साइड। इन सभी समस्याओं को देख कर गैर-पारम्परिक संसाधनों के उपयोग को बढ़ावा दिया जाने लगा मगर इसकी लागत और उपयोग क्षमता को देखते हुए इसका बहुत सीमित उपयोग ही हो पा रहा है। वैज्ञानिक सतत् प्रयास में लगे हैं कि किस प्रकार कम लागत और ज्यादा उपयोग वाले ऊर्जा संसाधनों का विकास किया जाये इस दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि जैव इंधन के रूप में हुई जिसमें तिलहनी फसलों, सोयाबीन, सूरजमुखी, रेपसीड, जैट्रोफा एवं नारियल तेल का प्रयोग किया गया। समस्त वनस्पति तेल ग्लिसराल एवं वसीय अम्लों के ट्राई ग्लिसराइड्स या एकल हाइड्राक्सिल समूह वाले एल्कोहल व वसीय अम्ल के बने मोनो ग्लिसराइड ईस्टर होते हैं। इन वनस्पति तेलों की एल्कोहल के साथ प्रक्रिया कराके, प्राप्त रसायन का विखण्डन एवं स्तरित प्रभाजी आसवन (फ्रेक्शनल डिस्टीलेशन) कराके जैव डीजल, ब्यूटेनाल, इथेनाल, मिथेनाल एवं जैव गैस अलग-अलग प्राप्त की जा सकती है जिनका प्रयोग ''जारण से ऊर्जा''प्राप्त करने के लिए किया जा रहा है। इन वनस्पति तेलों का सीधा यथावत् प्रयोग किया जा सकता है। इन्हें खाना पकाने, जलाने, प्रसाधन सामग्री बनाने, पेन्ट बनाने तथा अन्य घरेलू एवं व्यवसायिक उपयोगों में किया जाता है।

ईंधन की बढ़ती आवश्यकता से अधिकाधिक जैव ईंधन उत्पन्न करने हैतु जैव ईंधन देने वाली फसलों को बढ़ावा दिया जाने लगा जिसके परिणाम स्वरूप खाद्यान्न उत्पन्न करने वाली खेती के उत्पादन क्षेत्र में भारी कमी आयी एवं विश्व में खाद्यान्न संकट बढ़ने लगा। कुछ लोगों नें भारतीयों को भुख्खड़ तक कह डाला परन्तु यह नहीं देखा कि उनके खाद्यान्न संकट का कारण भारत नहीं अपितु उनके गेहूँ - धान के खेतों में खड़ी जैव ईंधन देने वाली जैट्रोफा एवं अन्य तिलहनी फसले हैं। इस जैव ईंधन उत्पन्न करने की प्रतिस्पर्धा में खेतिहर भूमि एवं वन क्षेत्रों का प्रयोग होने से खाद्य एवं वन संपदा का सामंजस्य विकृत होने लगा। तभी वैज्ञानिकों की दृष्टि पड़ी न्यूनतम सुविधाओं से अधिकतम परिणाम देने वाले शैवालों पर, बस संभावनाओं को एक नया विस्तार मिल गया, एक सशक्त हानिरहित, लागत रहित तथा जिसके प्रत्येक अवयव का उपयोग किया जा सकता है जो संपूर्ण पृथ्वी पर सर्वव्यापी है एवं न केवल जैव ईंधन देगा वरन पृथ्वी को हरित गृह प्रभाव से व उष्मायन से भी निपटने में सहायक होगा अर्थात् हर दृष्टिकोण से संपूर्ण पृथ्वीके समस्त जीव-जन्तुओं को ही नहीं वरन् पृथ्वी के वातावरण की सुरक्षा सुनिश्चित होगी। ईंधन पदार्थो की कीमतें नहीं बढ़ेगी तो मंहगाई पर अंकुश लगेगा, आर्थिक एवं व्यवसायिक विकास बढ़ेगा, विकसित, विकासशील एवं अविकसित देशों के बीच होड़ व दूरिया घटेंगी। तेल उत्पादक देशों की एक छत्रता और संपन्न राष्ट्रों की दादागीरी पर भी अंकुश लगेगा और यह सब कुछ होगा शैवाल जनित ईंधन के कारण।

जैव ईंधन एवं शैवाल :

जैव ईंधन वनस्पति स्त्रोतों से मिलने वाले तेल एवं अन्य समकक्ष अवयव हैं जिनको ईंधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। सामान्यतः प्राकृतिक वनस्पति तेल ग्लिसराल अथवा एकल हाइड्राक्सिल एल्कोहल के ट्राई या मोनो ग्लिसराइड् होते हैं जिनको कार्बनिक विलायक जैसे ब्यूटेनाल, इथेनाल या मिथेनाल, ईथर इत्यादि के साथ, प्रक्रिया

कराके उनका प्रभाजी आसवन कराने पर हमें जैव डीजल, ब्यूटेनाल, इथेनाल मिथेनाल एवं जैव गैस प्राप्त होती है। इन घटकों का जारण करके इनसे ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। इनके जारण से ऊर्जा तो पेट्रोलियम पदार्थो के समान ही प्राप्त होती है परन्तु कार्बन डाइआक्साइड कम मात्रा में बनती है दूसरी ओर क्योंकि यह शैवाल प्रकाश-संश्लेषण करते समय अत्यधिक मात्रा में कार्बन डाइआक्साइड वातावरण से अवशोषित कर लेते है अतः शैवाल से प्राप्त जैव ईंधन के जारण से मुक्त हुई कुल कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा शून्य होती है। इस प्रकार शैवाल एवं अन्य पौधों के वृद्धि के समय उपयोग की गयी कार्बन डाइआक्साइड और इनसे प्राप्त ईंधन के जारण से प्राप्त कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा का अनुपात सदैव बराबर रहता है। जिससे वातावरण की कार्बन डाइआक्साइड की कुल मात्रा में गिरावट होती है।

जैव ईंधन के लिए शैवाल का प्रयोग क्यों :

* शैवाल संपूर्ण पृथ्वी पर लगभग सभी स्थानों में पाये जाते हैं।

* शैवाल सुगमता से संवर्धित किये जा सकते हैं।

* शैवाल की लगभग 300 प्रजातियों पर शोध हो रहा हैं। इनमें अधिकतर सूक्ष्म शैवाल है डायटम तथा सायनोजीवाणु पर विशेष रूप से अध्ययन हो रहा है क्योंकि ये न्यूनतम आवश्यकताओं के साथ बहुत तीव्र गति से वृद्धि करते हैं।

* शैवाल में 40 से 60 प्रतिशत तक वसा पायी जाती हैं अर्थात् 5.0 किलो शैवाल से 2.0 से 3.0 किलो वसा प्राप्त हो सकती है।

* शैवालों में अन्य वनस्पतियों की तुलना में प्रति एकड़/प्रति वर्ष तेल की अत्यधिक मात्रा प्राप्त होती हैं जैसे मक्ई से लगभग 90.0 ली०, सोयाबीन से 240.0 ली०, सूरजमुखी से 520.0 ली०, रेपसीड से 635.0 ली०, नारियल तेल से 3,175.0 ली. एवं सूक्ष्म शैवाल से 25,000-75,000 ली० जैव ईंधन प्रतिएकड़/प्रतिवर्ष मिलेगा।

* शैवाल विशेष रूप से सूक्ष्म अन्य स्थलीय पौधों की तुलना में अधिक तीव्रता से सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा का उपयोग करते हैं तथा स्थलीय पौधों की तुलना में 15-30 गुना अधिक जैव ईंधन का उत्पादन होता है।

* शैवाल से 40 से 60 प्रतिशत तेल (जैव ईंधन) मिलेगा तथा शेष बचे अवशेष में उपस्थित प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेट के किण्वन से इथेनाल, मिथेनाल, ब्युटेनाल एवं जैव गैस मिलेगी इसके पश्चात् बचे अवशेष का प्रयोग जानवरों के चारे के रूप में या हरी खाद बनाने में हो सकता है अर्थात् शत प्रतिशत संपूर्ण उपयोग किया जा सकता है एवं कोई भी अनुपयोगी अवशेष नही बचेगा।

* शैवाल उन स्थानों पर भी उगाये जा सकेंगे जिनका वर्तमान में कोई उपयोग नहीं हो पा रहा है जैसे रेगिस्तान ऊसर भूमि, अनउपजाऊ मैदान एवं पठारी क्षेत्र यहाँ तक कि मकानों की छतों का भी प्रयोग किया जा सकेगा पारदर्शी पाइपों में पानी भरकर इन क्षेत्रों में फैला कर, उनमें शैवाल संवर्धन कराया जा सकेगा इन टयूबों को प्रकाश जैव रियेक्टर (फोटो बायो रियेक्टर) कहा जा रहा है जिनमें अत्यधिक मात्रा में शैवाल उगायी जा सकेगी।

* पृथ्वी का अधिकांश भाग (लगभग 70 प्रतिशत) जल से ढका है समुद्र के अतिरिक्त नदी, तालाब, पोखरे, झील, जल से भरे गड्डों, यहाँ तक कि वाहित मल शोधन संयंत्रों में भी शैवाल उगा सकते हैं। जिसमें अत्यधिक मात्रा में शैवाल उत्पन्न होगी एवं हमें असीमित मात्रा में ईंधन प्राप्त हो सकेगा।

* वैज्ञानिकों का अनुमान है कि 1,500 वर्ग मील क्षेत्र में शैवाल जलाशय से इतना ईंधन मिल सकता है कि संपूर्ण अमेरिका की स्थल परिवहन सेवा को ईंधन आपूर्ति की जा सकती है।

* पारम्परिक पेट्रोलियम ईंधन से अत्यधिक मात्रा में कार्बन डाइआक्साइड मुक्त होती है। अमेरिका केवल हवाई जहाज संचालन से 11 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड निस्तारित करता है। एक बोईग जहाज पृथ्वी की एक परिक्रमा में जितनी कार्बन डाइआक्साइड मुक्त करता है उतनी कार्बन डाइआक्साइड दश हजार लोग एक वर्ष तक श्वसन करें तो

निकलेगी परन्तु जैव ईंधन का प्रयोग करने पर कुल कार्बन डाइआक्साइड निस्तारण शून्य होगा अतः यदि हवाई, स्थलीय एवं जलीय यातायात संचालन में जैव ईंधन प्रयोग किया जाये तो कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में गुणात्मक सुधार आयेगा और ग्रीन हाउस गैसों की कमी होगी परिणाम स्वरूप पृथ्वी को उष्मायन से मुक्ति मिलेगी, प्रयोगात्मक स्तर पर अनेक हवाई कम्पनियाँ जैव ईंधन से हवाई जहाज का संचालन कर चुकी हैं। ग्रीन फ्लाइट इन्टरनेशनल ने शत प्रतिशत जैव ईंधन से उड़ने वाला जेट जहाज नवादा कोरेनोस्टेड हवाई अड्डे से उड़ाया।

* जहाँ एक ओर शैवाल से प्राप्त जैव ईंधन की उत्पादकता अन्य वनस्पति फसलों की तुलना में अत्यधिक है वहीं दूसरी ओर शैवाल उन स्थानों पर उगाये जा सकते हैं जिनका खेती के लिए उपयोग नहीं है अतः खाद्यान्न उत्पादन, खेती फसलों एवं वनों पर उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा अतः पारिस्थितिकी तंत्र एवं खाद्य शृंखला किसी भी प्रतिकूल प्रभाव से मुक्त रहेगी।

* शैवाल स्वच्छ जल स्रोतों में प्रदूषण कम करने में सहायता करेंगे वहीं वातावरण को भी शुद्ध करेंगे अर्थात् वायु एवं जल दोनों के प्रदूषण स्तर में कमी आयेगी। महत्वपूर्ण बात यह है कि पेट्रोल के घटते स्रोतों और बढ़ती आवश्यकता ने पेट्रोल की कीमत को अत्यधिक बढ़ाया हैं। जिससे पूरे विश्व के सामने आर्थिक संकट मंडरा रहा है। शैवाल जनित जैव ईंधन इस समस्या से मुक्ति दिलाने में सक्षम है।

* जैव ईंधन का उत्पादन बढ़ाने के प्रयास में खेतिहर भूमि में जैट्रोफा, सोयाबीन तथा अन्य जैव ईंधन देने वाली फसलों की खेती करने से खाद्यान्न उत्पादन तेजी से घटा है जिसके कारण खाद्यान्न संकट बढ़ता जा रहा है एवं वन क्षेत्र प्रभावित हुआ है। शैवाल जनित ईंधन बनाने पर खेतिहर भूमि एवं वनों का संरक्षण और सद्उपयोग हो सकेगा।

* जहां एक ओर शैवाल जनित ईंधन प्राप्त होगा वहीं दूसरी ओर स्पाइरूलिना क्लोरेला, लेमिनेरिया आदि शैवाल का भोज्य, औषधीय एवं औद्योगिक उपयोग हो सकेगा।

* शैवाल संवर्धन कोई भी सुगमता से कर सकेगा। इससे ईंधन पर कुछ देशों या व्यक्तियों का एकाधिकार समाप्त होगा और ईंधन की प्रतिद्वन्दिता के कारण राष्ट्रों के प्रति बढ़ने वाला वैमनस्य घटेगा।

* शैवाल जल में वृद्धि करते हैं अतः सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती जबकि अन्य जैव ईंधन वाली फसलों को उगाने के लिए सिंचाई करनी पड़ती है जिसमें ऊर्जा खर्च होती है यह ऊर्जा बचेगी।

* शैवाल जनित ईंधन को जलाने पर प्रदूषक रसायन जैसे शीशा (लेड़), गंधक (सल्फर) मुक्त नहीं होंगे यह रसायन पारम्परिक ईंधन पेट्रोल में आक्टेन संख्या बढ़ाने के लिए प्रयोग किये जाते हैं।

* आज के पेट्रोलियम ईंधन स्रोत शैवाल से बने हैं तो क्यों न फिर शैवाल से ईंधन बनायें।

जैव ईंधन में प्रयुक्त शैवाल :

शैवाल से जैव ईंधन बनाने में लगभग 300 प्रजातियाँ महत्वपूर्ण हैं विशेष रूप से सूक्ष्म शैवाल जैसे सायनोजीवाणु एवं डायटम तथा कुछ हरित शैवाल जो अत्यधिक तीव्रता से वृद्धि करते हैं इनका उपयोग जैव ईंधन उत्पन्न करने के लिये किये जा रहे शोधों में विशेष स्थान हैं। अधिक वसीय घटक वाले कुछ शैवाल जैसे स्पाइरूलिना, सिनेडेसमस डाइमोरफस, यूग्लीना ग्रेसिलिस, नियोक्लोरिस ओलियोएबनन्डेन्स, प्लयूरोक्रइसिस कारटिरेइ, टेट्रासेलमिस च्यूई, आइसोक्रइसिस गलबाना, नानोक्लोरोपसिस सलीना, नानोक्लोरिस अटोमस, बोट्रिओकोकस ब्राउनाई, डयूनालीएला टेरिटियोलेक्टा, क्लोरेला, ग्रेसीलेरिया, सारगासम, इत्यादि हैं। शैवाल खेती (संवर्धन) में जो पोषक तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, सिलिकान, एवं आयरन इत्यादि जिनकी भरपाई एजोमाइट (सिलिका क्ले) रासायनिक रूप से जलीय सोडियम, कैलशियम, एलमिनों सिलीकेट से हो सकती हैं क्योंकि ये बहुत तीव्रता से वृद्धि करते हैं एवं इनकी सघनता इन्हीं के लिये सूर्य के प्रकाश में बाधक होती हैं अतः गहरे जलाशयों के स्थान पर इनका संवर्धन छिछले जल के जलाशयों में करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जिन स्थानों में खेती नहीं हो सकती उन स्थानों पर पारदर्शी नलिकाओं

में जल भर कर उनमें शैवाल सवर्धन कर सकेंगे इन संवर्धन नलिकाओं को प्रकाश जैव प्रक्रिया संयंत्र (फोटो बायो रियेक्टर) कहा जाता है। इन संयंत्रों की प्रारम्भिक लागत थोड़ी अधिक होगी परन्तु कुछ सप्ताह में ही इनसे परिणाम आने लगेंगे। इन संयंत्रों की स्थापना के लिए हजारो कि. मी. में फैले रेगिस्तान में, ऊसर खेतों एवं अनउपजाऊ भूमि मकानों की छतों का प्रयोग किया जा सकेगा। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि हमारी खेती योग्य भूमि एवं वन सुरक्षित रहेंगे, खाद्यान्न उगाने के स्थान पर खेतों में तेल पैदा करनें का प्रयास नहीं करेंगे परिणाम स्वरूप आर्थिक संतुलन बना रहेगा अन्यथा हो सकता है कि ईंधन का मूल्य बढ़ना बन्द हो जाये लेकिन रोटी के दाम बढ़ने से कोई नहीं रोक सकेगा। एक बार तेल के बिना तो लोग जी लेंगे अपितु रोटी के बिना तो तेल प्रयोग करने वाले ही नहीं बचेंगे।

शैवाल संवर्धन जलाशयों, प्रकाश जैव प्रक्रिया संयत्रों के समीप ही जैव ईंधन परिशोधन संयंत्रों की स्थापना किये जाने से इनसे निकली उष्मीय ऊर्जा ठंण्डे क्षेत्रों में शैवाल संवर्धन के लिये आवश्यक ऊष्मा प्रदान करेंगी। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि शैवाल संवर्धन किसी की व्यक्तिगत् सम्पत्ति न होकर, सामान्य कृषक की तरह जन सामान्य को उपलब्ध होगी।

सूक्ष्म शैवाल जनित जैव ईंधन पारम्परिक ईंधन की भांति प्रयोग होगा एवं वायुमंडल की कार्बन डाइ आक्साइड को अवशोषित कर हरित गृह प्रभाव को घटायेगा, पृथ्वी के उष्मायन को नियंत्रित करेगा तथा पृथ्वी के पारिस्थितिकी तंत्र एवं पर्यावरण की सुरक्षा होगी। शैवाल जनित जैव ईंधन के निर्माण प्रक्रिया में, प्रसार, विस्तार और परिष्करण करना ही होगा क्योंकि यह एक ऐसी संभावना है जो समस्त पृथ्वी वासियों के लिए महत्वपूर्ण है तो आइये हम सब मिल कर इस महान अभियान को सार्थक बनाने का प्रयास करें।

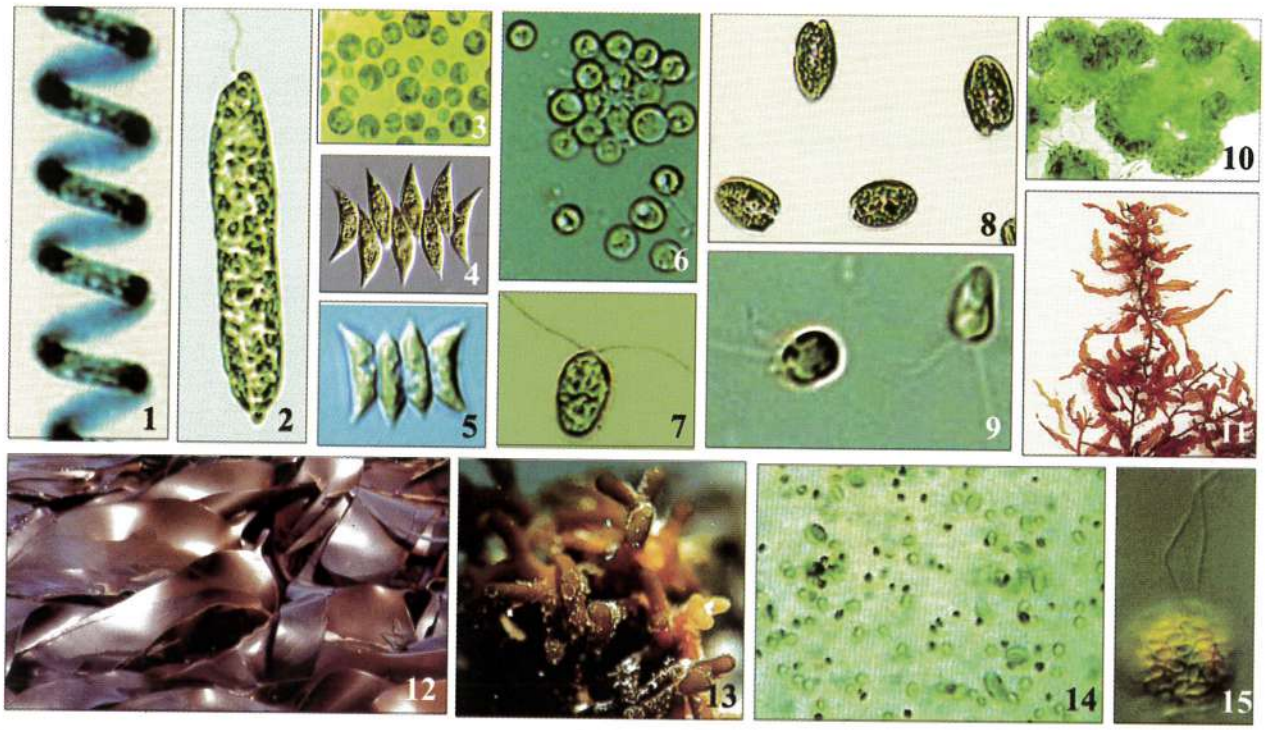

जैव ईंधन बनाने में प्रयुक्त कुछ शैवाल

1. स्पाइरूलिना, 2. यूग्लीना, 3. क्लोरेला, 4. एवं 5. सिनेडेसमस, 6. नियोक्लोरिस, 7. डयूनालीएला, 8. टेट्रासेलमिस, 9. आइसोक्राइसिस, 10. बोट्रिओकोकस, 11. सारगासम, 12. लेमिनेरिया, 13. ग्रेसीलेरिया, 14. नानोक्लोरोपसिस, 15. प्लयूरोक्राइसिस

प्रतिप्रदाह औषधि के रूप में शैवाल का उपयोग

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

चोट लगने, जलने, संक्रमण होने, प्रत्युर्जता (एलर्जी) होने, बढ़ती आयु के साथ सांधियों के ऊतक क्षय इत्यादि के कारण शोथ अथवा प्रदाह (इनफ्लेमेशन) उत्पन्न होता है। सभी जीवों में प्राकृतिक प्रतिरक्षा तंत्र सदैव सक्रिय रहता है। मानव शरीर की त्वचा, मुख गुहा, आहार नाल, मूत्र, एवं जनन तंत्र में कुछ सहजीवी जीवाणु सामंजस्य पूर्ण रूप से रहते हैं एवं प्राकृतिक प्रतिरक्षा बाधा (नेचुरल इम्यून बैरियर) बनाये रखते हैं जिसके कारण कोई संक्रमण, प्रतिजन (एन्टीजन), प्रत्युर्जताजनक (एलरजेन) शरीर में प्रवेश नहीं कर पाता। जब कभी कोई गंभीर एवं अति प्रभावी संक्रमण इस प्राकृतिक बाधा को तोड़ कर शरीर में प्रवेश करने का प्रयास करता है एवं अन्ततः रोग का कारण बनता है, साथ ही साथ प्रभावित ऊतक में शोथ अथवा प्रदाह भी उत्पन्न हो जाता है। जलने, कटने अथवा चोट लगने पर भी प्राकृतिक बाधायें काम नहीं कर पातीं और क्षति ग्रस्त ऊतक कोशिकाओं से होकर विभिन्न जीवाणु, विषाणु, प्रत्युर्जताजनक अथवा प्रतिजन शरीर में सीधे प्रवेश करने लगते हैं परिणाम स्वरूप प्रतिरक्षा की दूसरी पंक्ति (सेकेण्ड लाइन आफ डिफेन्स) सक्रिय होकर संयोजी ऊतक (कनेक्टिव टिशु) में उपस्थित मास्ट कोशिका को सक्रिय कर देते हैं परिणाम स्वरूप प्रदाह की स्थिति उत्पन्न होती है। प्रत्युर्जताजनक का सर्वाधिक प्रभाव आँख में नेत्र श्लेष्मा, श्वसन तंत्र में नासावेश्मों, ग्रसनी, स्वरयंत्र एवं श्वसन नालिकाओं में प्रदाह के रूप में दृष्टिगोचर होता है जिससे रोगी में कभी-कभी गंभीर अवरोध की स्थिति उत्पन्न होने लगती है।

प्रदाह/शोथ प्रतिक्रिया (इनफ्लेमेटरी रियेक्शन)

जले, कटे एवं चोट लगे ऊतकों/कोशिकाओं से विषाणु, जीवाणु एवं बीजाणु को शरीर में प्रवेश करने का मार्ग मिल जाता है। ऐसी स्थिति में क्षतिग्रस्त कोशिकाओं में अनेक क्रियाओं की शृंखला प्रारम्भ हो जाती है जिसके कारण प्रदाह उत्पन्न होता है।

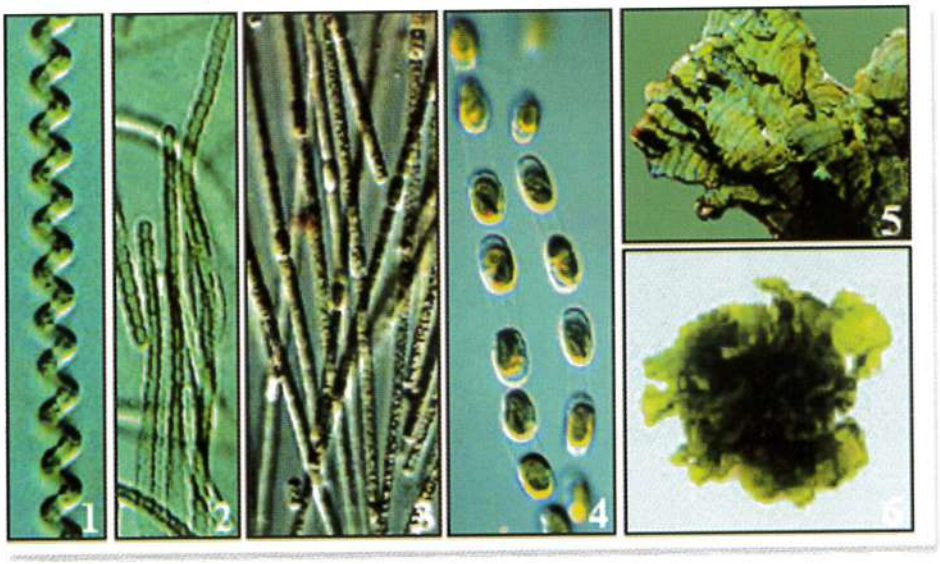

प्रतिप्रदाह औषधि के रूप में प्रयोग किये जाने वाले कुछ शैवाल
1 स्पाइरूलिना 2 फोरमीडियम, 3 एफेनोजोमेनान, 4 स्कैलिटोनीमा, 5 पेडीना, 6 अल्वा

क्षतिग्रस्त कोशिकाओं/प्रतिजन/प्रत्युर्जताजनक प्रभावित कोशिकाओं के चारो ओर मास्ट कोशिका, बेसोफिल एवं प्लेटलेट्स एकत्र होने लगती जिनसे हिस्टामीन, सिरेटोनिन, ल्यूकोट्राइन्स, प्रोस्टाग्लैनडिन व ब्रैडीकाइनिन नामक वाहिका विस्तारक (वेसोडाइलेटर) का स्रावण होता है। जिसके कारण क्षतिग्रस्त ऊतक में रक्त वाहिनियाँ फैल जाती हैं और उनकी दीवारों की पारगम्यता बढ़ जाती है जिससे ऊतक में रक्त प्रवाह बढ़ जाता हैं परिणाम स्वरूप रक्त वाहिनियों से श्वेत रक्त कोशिकायें अभिगमित होकर प्रभावित ऊतक में एकत्र होने लगती है साथ ही साथ रक्त की प्लाज्मा में उपस्थित अनेक प्रोटीन विशेष रूप से फाइब्रोनोजेन एवं रक्त आंतचन (ब्लड कोआगुलेशन) से संबंधित अन्य रसायन / निकर /प्रोटीन भी विसरित होकर एकत्रित होने लगती है। इस एकत्रीकरण के परिणाम स्वरूप उस स्थान पर सूजन आ जाती है एवं लाल होने लगता है और वह स्थान आस-पास के अन्य ऊतकों की तुलना में अपेक्षाकृत गर्म प्रतीत होता है। इस अवस्था को शोथ अथवा प्रदाह भी कहा जाता है। प्रदाह के स्थान पर मास्ट कोशिकाओं से हिपेरिन भी स्रावित होता है जो आंतरिक चोटों से हुए रक्तस्राव को जमनें नहीं देता तथा रूधिर परिसंचरण बनाये रखनें में सहायता करता है। प्रत्युर्जता की स्थिति में भी प्रदाह उत्पन्न होता है। कोई भी प्रत्युर्जताजनक आइ जी इ प्रति एन्टीबोडी के निर्माण को उत्तेजित करता है यह आइ जी इ एन्टीबोडीस संयोजी ऊतक की मास्ट कोशिकाओं से जुड़ जाती हैं। अब प्रत्युर्जताजनक इनसे जुड़ कर हिस्टामीन स्रावण को उत्तेजित करता है जो प्रदाह उत्पन्न करने वाला रसायन है। इन कोशिकाओं से निकलने वाला एक अन्य रसायन ल्यूकोट्राइन अधिक प्रभावशाली वाहिका विस्तारित है जो हिस्टामीन से एक हजार गुना अधिक प्रभावशाली है इन्ही रसायनों के कारण श्वसन तंत्र में संक्रमण अथवा प्रत्युर्जता होने पर वायु मार्ग प्रदाह के कारण संकुचित हो जाता है जिसके कारण फेकड़ो में सुचारु रूप से वायु प्रवाह नहीं हो पाता और रोगी को सांस लेने में कठिनाई होने लगती हैं एवं दम घुटने की स्थिति उत्पन्न होती है अतः प्रदाह की स्थिति बहुत पीड़ादायी होती है जिसका तत्काल उपचार किया जाना आवश्यक है। वृद्धावस्था की अधिकांश समस्यायें प्रदाह के कारण ही होती हैं। प्रदाह में दी जाने वाली अधिकतर औषधियों के कुप्रभाव बहुत ज्यादा होते हैं अतः सुरक्षित बिना कुप्रभाव वाले चिकित्सीय विकल्पों में शैवाल का बहुत अच्छा प्रभाव देखा गया है।

बहुत से शैवाल में अनेक ऐसे रसायन पाये गये हैं जो प्रतिप्रदाह (एन्टीइक्लेमेटरी) के रूप में कार्य करते हैं।

शैवाल का प्रतिप्रदाह औषधि के रूप में प्रयोग :

शैवाल का प्रयोग भोज्य पदार्थ तथा भोजन के घटक के रूप में आदि काल से होता रहा है साथ ही साथ इसके ओषधीय गुणों के कारण इसका उपयोग विभिन्न रोगों जैसे अति तनाव (हाइपर टेन्शन), वृहद आन्त्र शोथ (कोलाइटिस), प्रति अर्बुद (एन्टी ट्युमर), रक्त अल्पता (एनीमिया), प्रतिरोधी क्षमता प्रेरक (इम्यूनोमाडुलेटर) प्रतिप्रदाह (एन्टी इनफ्लेमेटरी) तथा मास्ट कोशिका दमन कारक (मास्ट सेल इन्हीबिटर) में किया जाता है। जैसा कि पूर्व विवरण से स्पष्ट है कि मास्ट कोशिकाओं के एकत्रित होने एवं उनसे स्रावित होने वाले रसायनों से ही प्रदाह उत्पन्न होता है अतः यदि मास्ट कोशिकाओं का दमन किया जा सके या इन्हें एकत्रित होने से रोका जा सके अथवा इनके स्रावण को कम किया जा सके तो प्रदाह को रोका या कम किया जा सकता है। अधिकांश प्रतिप्रदाह औषधियाँ आहार नाल की श्लेष्मा को गंभीर क्षति पहुँचाती हैं और आमाशय शोथ (गेस्ट्राइटिस) व्रण (अल्सर) तथा श्लेष्मा प्रदाह (गेस्ट्रोइनटाइटिस) उत्पन्न करती हैं अतः चिकित्सकों को निरन्तर ऐसी प्रतिप्रदाह औषधि की आवश्यकता रहती है जो आहार नाल की श्लेष्मा को हानि पहुँचाये बिना प्रदाह में लाभकारी हो। शैवाल का प्रयोग इसमें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो रहा है। अनेक शैवाल से मिथाइल एल्कोहल में निकाले सत् हिस्टामीन स्रावण एवं मास्ट कोशिकाओं के दमन में महत्वपूर्ण प्रभाव दर्शाते है। सामान्यतः नीलहरित शैवाल, लाल एवं भूरी शैवाल, कुछ हरी शैवाल में इसके अतिरिक्त हरी चाय अंगूर, प्याज, रसदार फल, हरी सब्जियों एवं पत्तियों में अनेक ऐसे रसायन पाये जाते हैं जिनमें महत्वपूर्ण रूप से प्रतिप्रदाह गुण पाये जाते हैं और इनका उपयोग सफलता पूर्वक प्रतिप्रदाह औषधि के रूप में प्राचीन भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा, चीनी प्राकृतिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धतियों तथा आदिवासियों द्वारा प्रयोग की गयी जड़ी बूटियो में भी किया जाता रहा है।

शैवाल में अनेक औषधीय गुण वाले रसायन पाये जाते हैं जैसे – क्यूएरस्टिन, फाइकोसायनिन, 6-एन-ट्राईडी साइलसेलिसिलिक अम्ल, एसिटिलीन युक्त वसीय अम्ल, सल्फेट युक्त बहुशर्करा

क्युएरस्टिन :–यह रसायन विटामिन सी०, विटामिन पी० (रूटीन व हेस्परीडीन) के समकक्ष एक बायोफ्लेवनायड है जो नील-हरित शैवाल, लाल, भूरी एवं हरी शैवाल, हरी चाय, अंगूर, रसदार फलों, हरी सब्जियों मे प्रचुरता से पाया जाता है अन्य बाये फ्लेवनायड की तुलना में बहुत अधिक क्रियाशील होने के कारण इस रसायन पर संपूर्ण विश्व में बहुत से शोध कार्य चल रहे हैं। यह एक शक्तिशाली प्रतिशोथ/प्रतिप्रदाह रसायन है जो मास्ट कोशिका से ल्युकोट्रिन के निर्माण एवं स्रावण को रोकता है। ल्युकोट्रिन, हिस्टामीन की अपेक्षा एक हजार गुना अधिक शक्तिशाली प्रदाह कारक है अतः क्यूरेस्टिन ल्युकोट्रिन का दमन करने की क्षमता के कारण अत्यन्त प्रभावशाली प्रतिप्रदाह रसायन है।

फाइकोसायनिन : इसमें प्रतिप्रदाह गुण पाया जाता है। प्रयोगशाला में चूहों में लेड की सहायता से अण्डाशय में प्रदाह उत्पन्न किया गया और प्रचुर मात्रा में फाइकोसायनिन युक्त शैवाल देने पर अण्डाशय के शोथ को तीव्र गति से कम करता है। नील-हरित शैवाल में फाइकोसायानिन प्रचुर मात्रा में होता है।

एन–ट्राईडी साइलसेलिसिलिक अम्ल :– यह अधिकांश शैवौलों में पाया जाता है। यह रसायन साइलसेलिक अम्ल (एस्पेरिन, माइक्रोपाइरीन, डिस्प्रिन में पाया जाने वाला रसायन) के समान प्रतिप्रदाह गुण दर्शाता है परन्तु इनकी तुलना में आमाशय की श्लेष्मा को बहुत कम हानि पहुँचाता है। अतः इसमें अल्सर, उत्पन्न करने की क्षमता नगण्य है।

एसिटिलीन युक्त वसीय अम्ल :– यह शैवाल में पाया जाने वाला प्रभावी प्रतिशोथ रसायन है।

सल्फेट युक्त बहुशर्करा :– यह अधिकांश नील-हरित, लाल एवं भूरी शैवाल में पाया जाने वाला प्रभावशाली प्रतिप्रदाह रसायन है।

रसायन जो प्रतिप्रदाह का गुण रखते हैं वह वास्तव में मास्ट कोशिकाओं का एकत्र होना कम करते हैं, उनकी संख्या कम करते हैं और उनसे होने वाले प्रदाह कारक जैसे हिस्टामीन, ल्यूकोट्रिन, सिरेटोनिन आदि रसायन का स्रावण करते हैं।

मास्ट कोशिकाओं का दमन करने वाले, प्रतिप्रदाह गुणों से युक्त शैवाल :

* लगभग सभी नील-हरित शैवाल जैसे स्पाइरूलिना, एकेनोजोमेनान फ्लस-एक्वी, लिनबिया लेगरहेमाई, फोरमीडियम टेन्यू, इत्यादि में फाइकोसायनिन एवं क्यूएरस्टिन पाया जाता है जो मास्ट कोशिकाओं में ल्यूकोट्रिन निर्माण को रोकता है एवं प्रदाह स्थान के उपापचय रसायन आरकीडोनिक अम्ल के निर्माण को बाधित करता है।

* गालेक्स्यूरा मारजिनेटा एवं क्वालोसाइसलिस सिफेलोरिन्थस में 6-एन-ट्राइडी साइलसेलिसिलिक अम्ल पाया जाता है जो एस्प्रिन, डिस्प्रिन में पाये जाने वाले सेलिसिलिक अम्ल के समान प्रतिप्रदाह गुण रखती हैं। परन्तु इसमें आमाशय में अल्सर उत्पन्न करने का प्रभाव अत्यन्त कम है।

* लियागोरा फेरिनोसा तथा फेसियोकार्पस, लैबिलारडिराई नामक लाल समुद्री शैवाल में एसिटिलिन युक्त वसीय अम्ल पाये गये प्रतिप्रदाह गुण दर्शाते हैं इससे मधु मख्खी के दंश के विष से उत्पन्न प्रदाह को भी कम किया जा सकता है।

* पेडीना बोइर्जिसनी, हिपनिया वेलेन्टिएइ, भूरी समुद्री शैवाल में भी प्रतिप्रदाह गुणों वाले एसिटलीन युक्त वसीय अम्ल पाये जाते हैं।

* कोम्पिया फेल्डमानाई समुद्री शैवाल में सल्फेट युक्त बहुशर्करा पायी जाती है जो प्रबल प्रतिप्रदाह गुण से युक्त है।

* स्कैलिटोनीमा के वसीय सत् में प्रतिप्रदाह गुण होता है यह कोशिकीय प्रदाह को भी कम करता है।

* अल्वा कांग्लोबाटा समुद्री शैवाल में एक विशेष तंत्रिका तंत्र को सुरक्षित रखने वाला प्रतिप्रदाह रसायन पाया जाता है जो वृद्धावस्था में होने वाली मस्तिष्क की क्षीण क्रियाशीलता एवं सक्रियता से संबधित एलजाइमर रोग को कम कर सकता है। एलजाइमर रोग के उपचार में इस शैवाल में पाये जानेवाला रासायनिक प्रतिप्रदाह घटक अत्यन्त उपयोगी है।

सामान्यतः बच्चों से लेकर बूढ़े तक सभी कभी न कभी, किसी न किसी प्रदाह से ग्रस्त होते रहते हैं। विशेष रूप से नवजात बच्चों और बूढ़ों में श्वसनतंत्र का प्रदाह गंभीर जीवन संकट उत्पन्न कर सकता हैं। अधिकांश लोग प्रतिप्रदाह औषधियों के लिए संवेदनशील होते हैं और वे गंभीर रूप से प्रदाह से ग्रसित होने पर भी प्रतिप्रदाह औषधियों का उपयोग नहीं कर पाते ऐसे व्यक्तियों के लिए प्रतिप्रदाह रसायन युक्त शैवाल अद्‌भुत औषधि है जो न केवल प्रतिप्रदाह गुणों से युक्त है वरन तनाव, रक्त अल्पता, मस्तिष्क कोशिका क्षरण रोकने में सहायक है इसके साथ ही साथ यह संपूर्ण भोजन में निहित पोषक तत्वों की पूर्ति भी करते हैं।

———

शैवाल : एक अवलोकन

आर. के. गुप्ता एवं दीनेश्वर के. साह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

शैवाल (एल्गी) पादप जगत के महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीनतम सदस्यों में से एक है। करीब 300 ई. पू. कवि कालिदास ने शैवाल की चर्चा अपने प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम में किया है। चीनी, रोमन एवं ग्रीक के शास्त्र में बहुधा शैवाल का जिक्र किया गया है। लीनियस (1754) ने पौधों के एक समूह को हिपेटिकी के अंतर्गत रखा जिसे एल्गी कहा लेकिन जूसी (1789) ऐसे पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने पादप के इस समूह को शैवाल (एल्गी) के नाम से नामांकित किया जो आज प्रचलित है।

शैवाल पादप जगत के अपुष्पी पौधों के अंतर्गत आते हैं। विभिन्न वर्णको के कारण ये रंग बिरंगे होते हैं। जिसमें मुख्यतः पर्णहरित एवं कैरोटिन है। पर्णहरित के कारण ये अपना भोजन स्वयं बनाते हैं और इसी कारण ये स्वयंपोषी (ऑटोट्राफिक) कहलाते हैं। इन्हें बोलचाल की भाषा में 'काई' कहते हैं। यह पृथ्वी का प्राथमिक उत्पादक का कार्य करता है।

भारतवर्ष में शैवाल की लगभग 6500 जातियाँ तथा 728 वंश ज्ञात हैं जिसमें 169 वंश तथा 680 जातियाँ समुद्र में पायी जाती हैं जबकि 16 वंश और 23 जातियाँ स्वच्छ तथा समुद्री जल दोनों में पायी जाती हैं। इनमें से 1924 जातियाँ स्थानीय हैं। विश्व में शैवालों की अनुमानित जातियाँ 2.5 लाख हैं परन्तु अभी तक 2500 वंशो के अंतर्गत केवल 40,000 जातियाँ ही वर्णित की जा सकी हैं। विश्व की तुलना में करीब 16.25% शैवाल भारत में पाया जाता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि केवल ब्रिटेन में शैवालों की 20,850 जातियाँ पायी जाती हैं जो विश्व शैवाल की तुलना में 50% से भी अधिक है (यूनाइटेड किंगडम जैव विविधता कार्यान्वयन योजना 1996)।

उपोष्ण कटिबंध से लेकर ध्रुवीय क्षेत्र तक में पाये जाने वाले इस समूह के पौधे अधिकतर तालाबों, झीलों, जलाशयों, नदी, नालों, चट्टानों, वृक्षों की नम छाल, नम भूमि, समूह आदि स्थानों मे पाए जाते हैं। बहते हुए जल की तुलना में स्थिर जल में शैवाल अधिक मिलते हैं। इनकी कुछ जातियाँ स्थलीय, परजीवी, सहजीवी या अधिपादपीय भी होती है। उच्च श्रेणी की अनुकूलन क्षमता के कारण ये 70-80° सेंटीग्रेड से लेकर –10° सेंटीग्रेड तापमान में भी पायी जाती हैं। *पाइरैमिमोनास जलिडीकोला* (क्लोरोफाइसी) अटार्कटिका में पाया जाने वाला ऐसा शैवाल है जो बर्फ के जमने के साथ स्वयं जम जाता है और बर्फ पिघलने पर पुनः अपना जीवन-चक्र प्रारंभ करता है।

शैवालों की संरचना में काफी विविधता है। ये विशालकाय से लेकर इतने छोटे होते हैं कि इनको सूक्ष्मदर्शी यंत्र के बिना नहीं देखा जा सकता। *मेलोमोनास ऑबलीकुआ* जहाँ मात्र 0.5 माइक्रोमीटर लम्बा होता है वहीं *सरगासम लॉगीफोलियम, लैमिनेरिया फ्लैविकेन्स* 0.5 मी. तक लंबे होते हैं। उत्तरी अमेरिका के समुद्र से ज्ञात *माइक्रोसिस्टिस पाइरीफेरा, पोस्टेलसिया पामीफॉर्मिस* और *लेसोनिया फ्लैविकेन्स* तो 250 मी० तक लंबे होते हैं। सामान्यतः बड़े आकार वाले शैवाल समुद्रों में पाये जाते हैं और इसे समुद्री वीड या जायन्ट केल्प कहा जाता है।

शैवालों में प्रजनन विखंडन, बीजाणु का निर्माण, लैंगिक, अलैंगिक तथा उगैमस तरीकों द्वारा होता हैं। इसकी कुछ जातियाँ उच्च स्तरीय उगैमस तरीकों द्वारा प्रजनन करती हैं।

भारत के मुख्य शैवाल शोध केन्द्र वनस्पति विज्ञान विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय, तमिलनाडु, वनस्पति विज्ञान विभाग, उसमानिया विश्वविद्यालय, आन्ध्र प्रदेश, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश हैं। सरकारी विभागों में केन्द्रीय लवण एवं समुद्री रसायन अनुसंधान केन्द्र, भावनगर, गुजरात, भारतीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली एवं राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिक अनुसंधान संस्थान, नागपुर, महाराष्ट्र हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के श्रीनिवासन तथा विश्वास

ने शैवाल शोध पर सक्रिय भूमिका निभाई हैं। वनस्पति विज्ञान विभाग मद्रास तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में नील हरित शैवालों पर अत्याधुनिक अनुसंधान कार्य कर रहा है जिसमें प्रमुख हैं फिजियोलॉजी, जेनेटिक इंजीनियरिंग बायोकेमिकल इंजीनियरिंग एवं जैविक खाद्।

जॉन गेरार्ड कोनिंग ने सर्वप्रथम 1768 ई० में दक्षिण भारत से शैवाल का संग्रह किया जिसे विलियम जोन्स व अन्य वैज्ञानिकों ने बाद् में वर्णित किया। भारतीय शैवाल पर पहला शोध पत्र प्रकाशित करने का श्रेय कीर्तिकर 1886 को जाता है। एम. ओ. पी. आयंगर, विश्वास, भारद्वाज, रामनगीना सिंह, रंधावा, रामनाथन, फिलिपोस, पी. एन. सक्सेना, देशिकाचारी, वी. पी. पाल, सुंदर लिंगम, बी. एन. प्रसाद, रंगास्वामी, जे. पी. सिन्हा, जी. एस. वेंकटरामण और गोनसालविस ने शैवालों पर शोध करते हुए कई नई जातियों तथा वंशों की खोज की तथा साथ ही ऊनके जीवन-चक्र का भी अध्ययन किया।

वर्णकों के आधार पर शैवाल को 12 वर्गो में बाँटा जा सकता है।

1. नील हरित शैवाल (सायनोफाइसी) :

यह शैवाल का सबसे प्राचीन समूह है। ये स्वच्छ तथा समुद्री जल दोनों जगहों में पाये जाते हैं। इसकी काशिका भित्ति म्यूकोपेप्टाइड की बनी होती है। इनका आकार प्रकार बहुत की साधारण होता है। ये प्रोकैरियोटा समूह में आते हैं। इस समूह के *आर्थोस्पाइरा, आसिलेटोरिया, एनाबिना, एनाबिनाप्सिस, कैलोथ्रिक्स, क्रोकोकस, ग्लोइयोकैप्सा, नास्टॉक, फार्मीडियम, माइक्रोसिस्टिस, लिनबिया, साइजोथ्रिक्स, स्पाइरूलिना* आदि भारत में पाए जाते हैं।

2. ग्राम हरे शैवाल (क्लोरोफाइसी) :

यह शैवाल का सबसे बडा समूह है। अन्य शैवालों के साथ इसे यूकैरियोटा में रखा गया है। इसमें *क्लैडोमोनास, वर्रॅलवॉक्स, हाइड्रोडिक्टियॉन, क्लोरेला, यूलोथ्रिक्स, यूरोनीमा, एनटेरोमार्फा, क्लैडौफोरा, पीथोठोरा, उडोगोनियम, बल्बोकीट, स्पाईरोगाइरा, जिगनीमा, साइरोगोनियम, साइरोक्लेडियम, कासमेरियम, कीटोफोरा, सिफैल्यूरॉस, ट्रेंटीफोलिया, वाउचेरिया, कारा* और *नाइटेला* आदि शैवाल आते हैं। भारत के उत्तर पूर्वी राज्य विशेष कर असम में चाय के पौधे में लगने वाले रोग 'रेड रस्ट ऑफ टी' *सिफैल्यूरॉस* के कारण होता है। यह परजीवी शैवाल है।

3. सुनहरे पीले शैवाल (बेसिलिरियोफाइसी) :

इस समूह के शैवाल लगभग सभी जगह पाये जाते हैं। इसे बोलचाल की भाषा में डायटम कहा जाता हैं क्योंकि इसके दो वाल्व आपस में जुड़े होते हैं तथा इसकी कोशिका सिलिका युक्त होती है। यह स्वच्छ तथा समुद्री जल में पाया जाता है। *गोम्फोनीमा, सिम्बेला, पिनुलेरिया, नेवीकुला, निश्चिया, मिलासायरा* एवं *कोकोनिस* महत्वपूर्ण जातियाँ है। डायटम के फ्रस्टयूल के द्वार डायटोमाइड का निर्माण समुद्र में होता है।

4. भूरे शैवाल (फियोफाइसी) :

यह सामान्यतः समुद्र में पाये जाते है लेकिन कुछ जातियाँ स्वच्छ जल में भी पायी जाती हैं। *जिलेडियम, ग्रेसीलेरिया* से अगर-अगर बनाया जाता है तथा जैविक खाद के रूप में भी इनका इस्तेमाल होता है। इसे 'जायन्ट केल्प' भी कहा जाता है।

5. लाल शैवाल (रोडोफाइसी) :

इस समूह के शैवाल सामान्यतः समुद्र में पाए जाते हैं। इसमें आर-फाइकोइरीथ्रिन अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। *पोरफाइरीडियम* नम भूमि पर जबकि *बैट्राकोस्परमम, लेमानियां* तथा *कामसोपोगॉन* की कुछ जातियाँ स्वच्छ जल में पायी जाती है।

6. पीले हरे शैवाल (जेन्थोफाइसी) :

इस समूह के शैवाल में जेन्थोफिल होता है। यह एक कोशकीय ओर तंतुनुमा होते हैं। इनकी कोशिकाओं में तेल अथवा वसा अधिक मात्रा में पाया जाता है। ये स्वच्छ तथा समुद्री जल में मिलते हैं जबकि *बॉट्रीडियम* तथा *बॉट्रीडियोप्सिस* नम भूमि पर पाये जाते हैं।

7. पीले भूरे शैवाल (डायनोफाइसी) :

इन्हे बोल-चाल की भाषा में डाइनोफ्लैजिलेट कहते हैं। यह ज्यादातर समुद्र में पाए जाते हैं जबकि इनकी कुछ जातियाँ स्वच्छ जल में भी पायी जाती हैं। ये एक कोशकीय होते हैं और इसमें दो फ्लेजिला पाए जाते हैं। भारत में प्रायं *जिमनोडीनियम, पेरीडरनियम* तथा *पायरोसिस्टिस* पाए जाते हैं।

8. हरे शैवाल (युग्लीनोफाइसी) :

इस समूह के शैवालों को आम बोल-चाल की भाषा में युग्लीनॉयड्स कहा जाता हैं। ये एक कोशीय होते है। इसका संचित भोजन पारामाइलोन है। यह ज्यादातर कार्बनिक तत्व से युक्त प्रदुषित जल में पाया जाता हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने इसे पादप समुदाय तो कुछ ने इसे जंतु समुदाय के साथ रखा है जबकि कुछ इसे बीच की कड़ी समझते हैं। *फेकस, युग्लीना, ट्रेकिलोमोनास, कोलेसियम* तथा *लीपोसीनसीलिस* वंश की जातियाँ प्रायः गर्मियों में पायी जाती है।

9. नारंगी भूरे शैवाल (क्राइसोफाइसी) :

यह शैवाल का छोटा समूह है जिसकी कुछ जातियाँ स्वच्छ जल तथा कुछ समुद्री जल में पायी जाती है। ये एक कोशीय तथा बहुकोशकीय होती है। *साइनूरा, मैलोमोनास, क्रोकोसफेरा, ऑक्रोमोनास, क्रोमाइलीना,* क्राइसोकोकस, *डायनोब्रायोन, यूरोग्लीना* मुख्य हैं।

10. जैतूनी भूरे शैवाल (क्रिपटोफाइसी) :

यह एक कोशकीय होती है। *हेमीसेलमस, क्रिप्टोमोनास, क्रूमोनास* यूरोपीय देशों से ज्ञात है। भारत में इस समूह के शैवाल की कोई भी वंश या जाति अभी तक ज्ञात नहीं है।

11. चमकीले हरे शैवाल (क्लोरोमोनाडीनी) :

यह शैवाल का अति छोटा समूह है। यह एक कोशकीय होती है तथा स्वच्छ जल में पाये जाते है। यह अपना आकार-प्रकार बदलते रहते है। भारत से इसका कोई भी वंश ज्ञात नहीं है जबकि *वैक्यूलेरिया, ट्रेन्टोनीया, गोनियोटोमस* तथा *थॉमैटोमैट्रीक्स* यूरोपीय देश से ज्ञात है।

12. रंगहीन शैवाल :

कुछ रंगहीन शैवाल भी पाए जाते हैं *वायकोमोनास, मल्टीसीतिया, एस्ट्रोसीगा* तथा *क्रिपटोबिया* प्रमुख है।

उपयोग : विश्व में शैवालों की लगभग 40 जातियों का खाद्य के रूप में प्रयोग किया जाता है परन्तु भारत में केवल 16 जातियाँ ही खाद्योपयोगी हैं। स्पाइरूलिना इनमें सबसे अधिक पौष्टिक है, इसमें प्रोटिन, लौह व वीटाकेरोटिन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसके टेबलेट भी बाजार में उपलब्ध हैं जिन्हें शाकाहारियों के लिये बहुत उपयोगी बताया गया है। मणिपुर में लाल शैवाल *लेमानियां ऑस्ट्रेलेरिस* बड़े चाव से खाया जाता है। प्रसाधन सामग्री बनाने में भी लाल शैवालों का प्रयोग होता है। कुछ अन्य जातियों जिन्हें पकाकर या कच्चा सलाद के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, *एम्पैरोगोप सिसटेक्सीफॉर्मिस* (पकाकर, सलाद) *कौलरपा रेसीमोसा* (कच्छा या सलाद)), *कीटोमोर्फा कासा* (पकाकर या सलाद), *इन्ट्रोमार्फा क्लेथेरेटा* (कच्चासलाद), *इन्ट्रोमार्फा कम्प्रेसा* (कच्चा या सलाद), *इन्ट्रोमार्फा इन्टेसटाईनेलिस* (कच्चा, टोस्ट), *इन्ट्रोमार्फा प्रोलीफेरा* (कच्चा टोस्ट, मसाले की तरह), *इन्ट्रोमार्फा लिंजा* (मसाले की तरह), *ग्रेसिलेरिया वेरूकोसा* (कच्चा, पकाकर) अल्वा लेक्टुका (सूप, सलाद, चाय) अल्वा फेसिआटा (सूप), *मोनोस्ट्रोमा* (सलाद), *सरगासम*

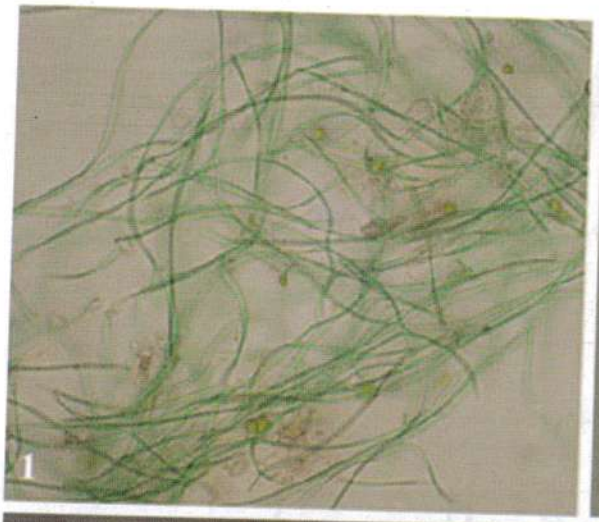
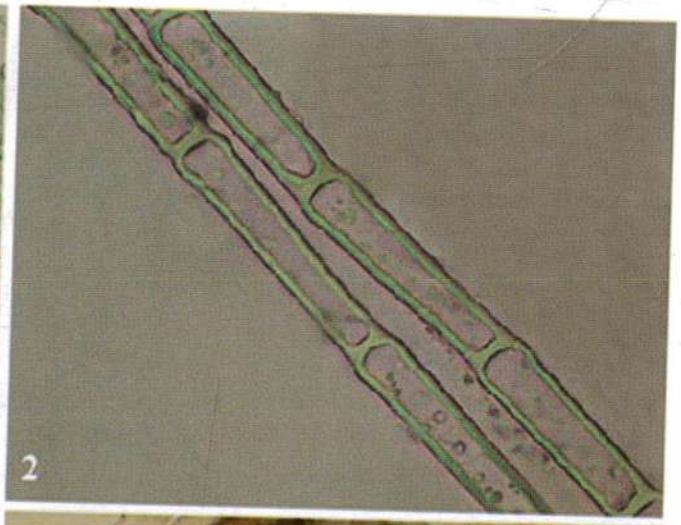
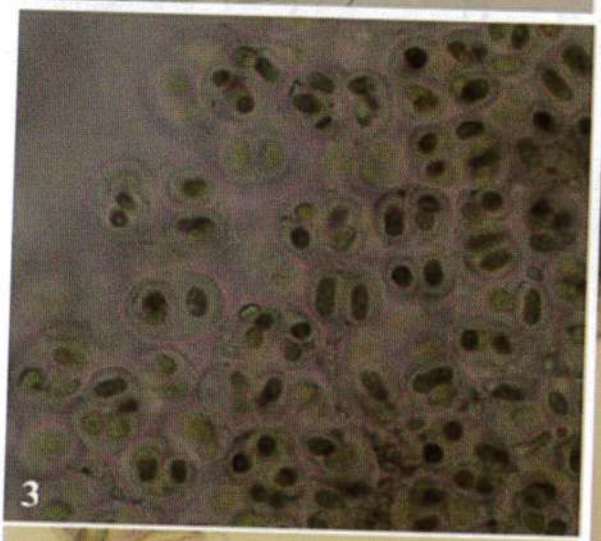
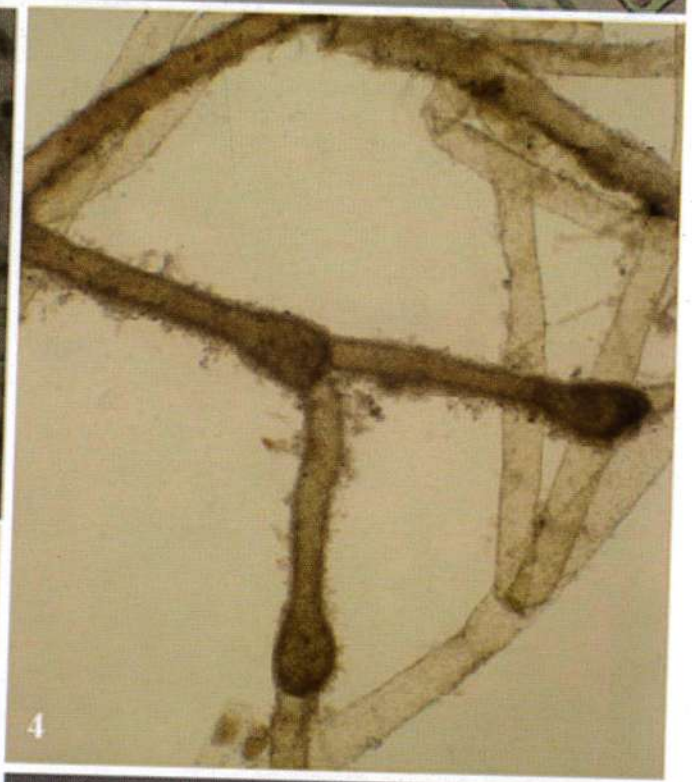
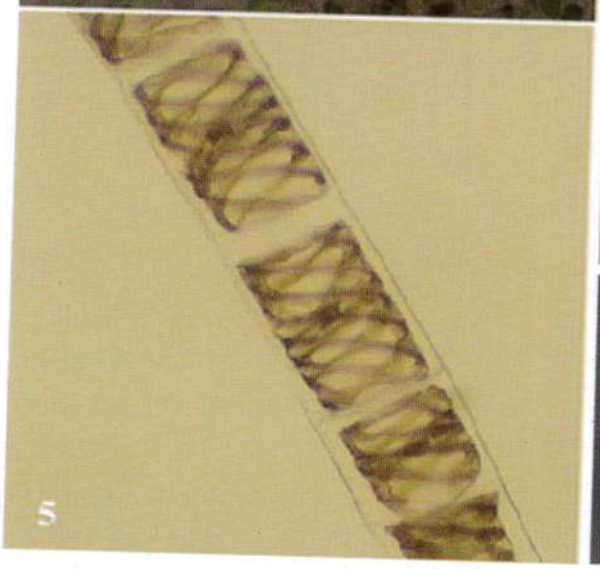

1. फॉरमीडियम एम्बीगुअम x 400. 2. राईजोक्लोनियम हीरोग्लाईफिकम x 1000. 3. क्रेकोकस माइन्यूटसस x 820.
4. पिथोफोरा उड़ोगोनिया x 800. 5. स्पाइरोगाईरा ग्रोस्सी x 1200. 6. नेवीकुला ओब्ट्यूसा x 900.

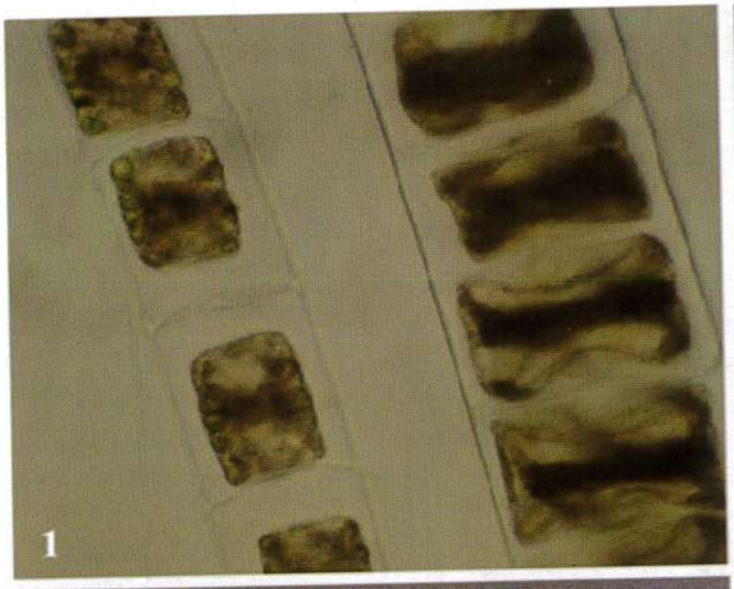

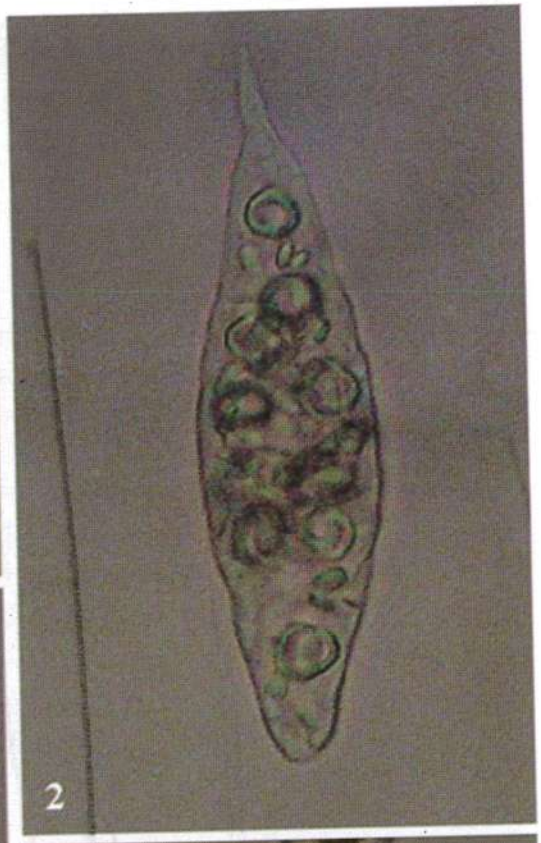

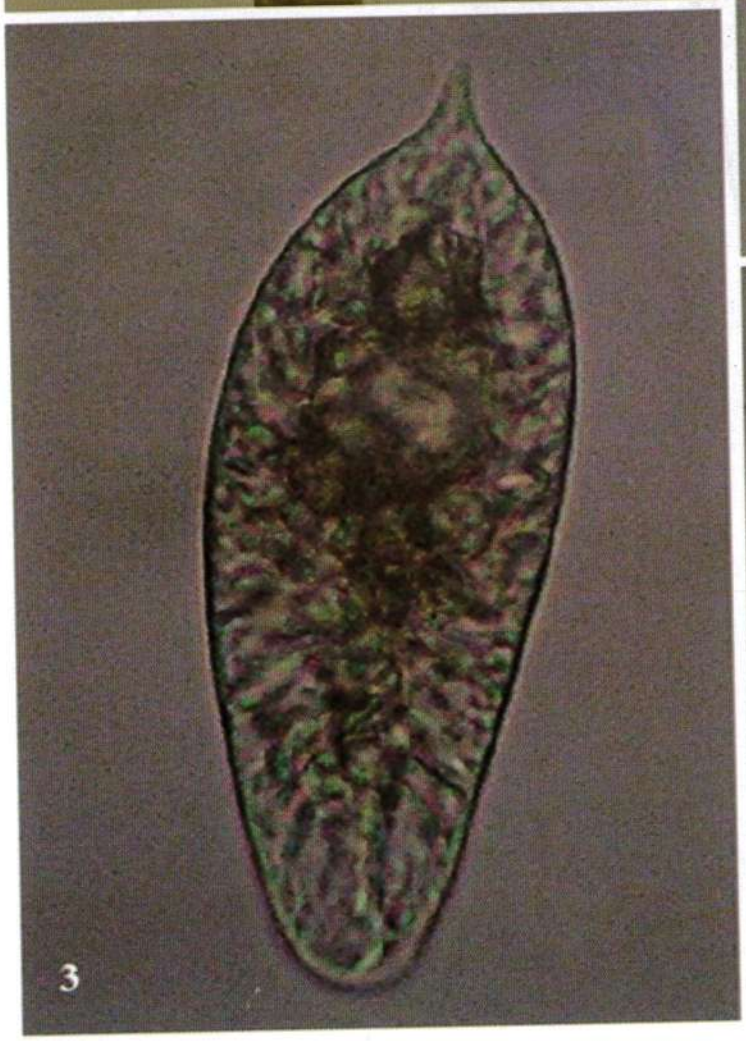

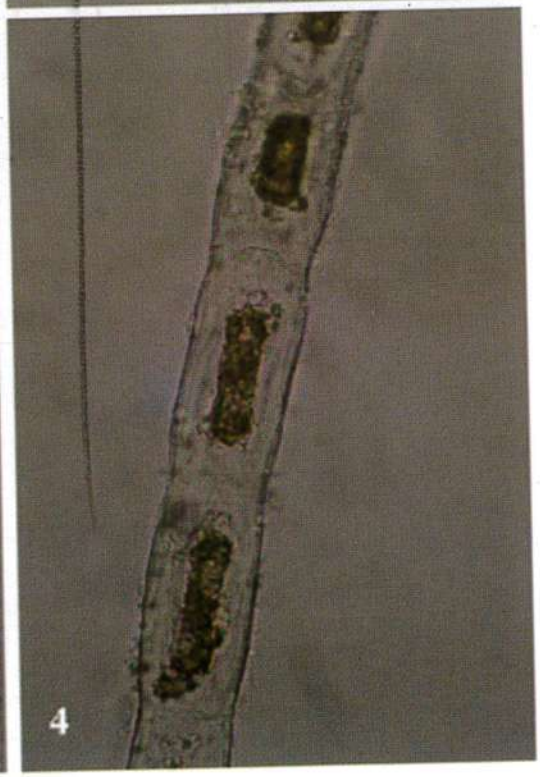

1. स्पाइरोगाईरा मैक्सिमा x 1018. 2. युग्लीना थिनोफिला x 1050. 3. युग्लीना जिब्बोसा 1560. 4. राईजोक्लोनियम हुकरी x 960.

(पकाकर), *पोरीफाइट वियतनामेनसिस* (सूप), *एकेन्थाफोरा स्पासीफेरा* (मसाले की तरह) आदि मुख्य हैं। हरे शैवाल *क्लोरेला* से क्लोरेलिन प्राप्त होती है जबकि कुछ डायटम अग्निरोधक सामान बनाने में प्रयुक्त होते हैं। जैविक खाद् के रूप में भी शैवाल काफी उपयोगी सिद्ध हुए हैं। मृदा क्षरण को रोकने में भी इनकी कुछ जातियाँ प्रभावी मानी गई हैं कुछ जातियाँ प्रदूषण व खनिज सूचक भी होती है। शैवालों का खाद् के रूप में प्रयोग काफी पुराना है, हवाई द्वीप के निवासी इन्हे लिमू के नाम से जानते थे व खाद् के रूप में प्रयुक्त करते थे।

भारत में शैवाल की खेती का भविष्य उज्जवल है लेकिन तटीय निवासियों में शैवाल की उपयोगिता की कम जानकारी के कारण यह अभी बहुत प्रचलित नहीं है जबकि जापान, चीन आदि देशों में इसकी खेती बहुतायत में होती हैं। यदि भारत सरकार के सहयोग से इसकी खेती करायी जाय और लोगों को इसकी उपयोगिता के बारे में जागरूक किया जाए तो इससे न केवल तटीय निवासियों को रोजगार मिलेगा बल्कि जीवन स्तर भी ऊँचा होगा।

भारत की शैवाल विविधता को देखते हुए सर्वप्रथम सर्वेक्षण के कार्य में तेजी लाने की आवश्यकता है। पूर्वोत्तर राज्यों में असम को छोड़कर अन्य राज्यों में शैवालों का सर्वेक्षण नहीं के बराबर हुआ है और जब तक करीब 80% सर्वेक्षण का कार्य नहीं होता है तब तक हम इसका रेड डाटा लिस्ट नहीं बना सकते हैं और न ही इसके संरक्षण की दिशा में ठोस कार्य कर सकते हैं। अतः जरूरत इस बात की है कि छोटे-छोटे क्षेत्रों को लेकर गहन सर्वेक्षण किया जाए और इसी आधार पर इसके लिए अभयारण्य तथा राष्ट्रीय जलीय उद्यान बनाये जाय तथा कुछ विशिष्ट क्षेत्र जो कि शैवालां के प्राकृतिक आवास है, को संरक्षित क्षेत्र घोषित किया जाय।

शैवाल के बिना पृथ्वी पर जीवन असंभव है। शैवाल हीन परिस्थितियों में सागर जीवन हीन व पृथ्वी बंजर हो जायेगी।

———

शैवालों की बहूपयोगिता

अरविन्द कुमार
भारतीय वनस्पति प्रयोगशाला, हावड़ा

विभिन्न शैवालों का जीवों के लाभ हेतु आर्थिक एवं औद्योगिक महत्व होता है।

शैवालों की भोजन के रूप में बहुत उपयोगिता है। समुद्री शैवाल तथा ताजे जल के शैवाल मनुष्य के लिए खाद्य जाल का निर्माण करते हैं। दोनों ही प्रकार के शैवाल अनेक प्रकार के प्रोटोजोआ कीटों के लार्वा का भोजन होते हैं तथा यह जीव मछलियों का भोजन होते हैं, मछलियों से मनुष्य को भोजन के रूप में प्रोटीन्स प्राप्त होती है। स्टीवर्ट (1967) के अनुसार, जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में शैवाल उत्पादक का कार्य करते हैं। नील हरित शैवाल नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं, अतः जल में नाइट्रोजन की पर्याप्त मात्रा पायी जाती है, जोकि अन्य पौधों एवं जीवधारियों को प्राप्त होती है।

आधुनिक युग में शैवालों तथा मछलियों को साथ साथ एक ही स्थान पर विकसित किया जाता है जिससे मछलियों को बराबर भोजन प्राप्त होता रहता है। डाइएटम्स शैवालों द्वारा भोजन के रूप में मछलियों को विटामिन्स एवं तेल प्राप्त होता है।

जापान तथा चीन के समुद्री तट के निवासी समुद्री घासों तथा शैवालों जैसे-पोरफायरा, अल्वा, अलेरिया आदि शैवालों का सूप बनाकर सेवन करते हैं तथा मांस के साथ पकाकर खाया जाता है। इन शैवालों का भोजन के रूप में प्रयोग करने से मनुष्य के शरीर को आयोडीन प्राप्त होने से थायराक्सीन हार्मोन प्रचुर मात्रा में बनता है तथा संतुलित आहार के सभी खनिज लवण भी प्राप्त होते हैं। इन शैवालों में प्रोटीन्स की मात्रा अधिक नहीं होती है, किन्तु विटामिन्स जैसे ए. बी. सी, फोलिक अम्ल तथा नियासिन अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। मनुष्य के भोजन के रूप में प्रयुक्त होने वाले समुद्री शैवालों में सबसे महत्वपूर्ण लाल शैवाल पोरफायरा टेनेरा है जिसकी खेती बड़ी पैमाने पर जापान में समुद्र के किनारे की जाती है।

स्कॉटलैण्ड के लोग अल्वा-लेक्टूका का सूप तथा सलाद बनाकर सेवन करते हैं तथा लेमीनेरिया सेकेराइना एवं रोडोमीनिया पामेटा का प्रयोग भोजन के रूप में करते हैं। जिगरटीनिया स्टेलेटा तथा कॉण्ड्स क्रिस्पस नामक शैवालों से प्राप्त जिलेटिन युक्त कार्बोहाइड्रेट को गोश्त में भरकर तथा दूध के साथ अथवा फलों तथा आइसक्रीम के साथ खाया जाता है। मुख्य रूप से समुद्री शैवालों को मलाया, इण्डोनेशिया, बर्मा, बोर्नियों आदि देशो में भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है। ताजे फल के शैवाल जैसे कि क्लोरेला शैवाल को जापान, अमेरिका, तथा चीन में औद्योगिक स्तर पर उगाया जाता है। यह शैवाल प्रकाश, कार्बन डाइ आक्साइड तथा खनिज लवणों की उपस्थिति में आसानी से उगाया जाता है। शैवाल में भोजन के सभी आवश्यक तत्व उपस्थित रहने के कारण यह भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है। जापान में क्लोरेला इलिप्सोइडिया के पाउडर को चाय के साथ मिलाकर सेवन किया जाता है। क्लोरेला में लगभग 30% प्रोटीन्स 15% लिपिड्स, 30% कार्बोहाइड्रेट्स तथा 5% राख पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें विटामिन ए. बी. सी तथा के भी होते हैं। अंतरिक्ष यात्रियों के लिए अंतरिक्ष यान के टैन्कों में क्लोरेला उगाया जाता है जिससे उन यात्रियों को इस शैवाल से भोजन तथा आक्सीजन प्राप्त होता रहता है। जावा तथा चीन में नील हरित शैवाल जैसे–नास्टॉक कम्यूनो को भोजन की भांति प्रयोग में लाया जाता है।

स्कॉटलैण्ड में भूरे शैवाल जैसे–लेमीनेरिया तथा फ्यूकस को चारे के रूप में दूध देने वाले पशुओं जैसे –भेड़ तथा गायों आदि को दिया जाता है जिससे उनके दूध से अधिक वसा प्राप्त होती है। मुर्गियों को भोजन रूप में समुद्री शैवाल खिलाने पर उनमें अण्डे देने की क्षमता बढ़ जाती है तथा अण्डों में आयोडीन की मात्रा भी अधिक होती है। मछली पालन केन्द्रों पर मछलियों के भोजन के लिए कुछ शैवालों जैसे –लिंगबया, हाइड्रोकोलियस तथा डाइएटम्स को प्रयोग में लाया जाता है।

बड़े बड़े जलाशयों में थोड़ी मात्रा में शैवालों को उगाने पर वे जैविक फिल्टर्स का कार्य करते हैं जिनमें जीवाणु, तथा कवक उनके म्यूसिलेज में उलझकर जल से पृथक हो जाते हैं। कुछ शैवाल जैसे डाइएटम्स पीने हेतु उपयोग किए जाने वाले पानी के टैंक्स में उगाया जाता है, जोकि पानी में पाये जाने वाले हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट कर देता है।

समुद्री शैवालों में खनिज लवण जैसे –सोडियम, कैल्शियम, मैग्निशियम, आयरन, सल्फर, कॉपर, मैंगनीज, कोबाल्ट, बोरान, आयोडीन आदि संगृहीत होते हैं। अतः ऐसे शैवालों को कार्बनिक पदार्थों के साथ खेतों में सड़ने-गलने दिया जाता है जिससे वे उर्वरकों में परिवर्तित हो जाते हैं। ये उर्वरक भूमि को अधिक उपजाउ बनाते है तथा मिट्टी के कणों को आपस मे जकड़े रहने की क्षमता भी बढाते हैं। उदाहरण के तौर पर लियोथेम नियान्न तथा लिथोफायलम आदि। समुद्री शैवालों की अपेक्षा नील हरित शैवालों में नाइट्रोजन तथा फास्फोरस की मात्रा अधिक होती है। कुछ नील हरित शैवाल नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं। ऐसे शैवाल प्रायः धान के खेतों में पाये जाते हैं। जापान में टोलीपोथ्रिक्स टेनुयस तथा भारत में ओलोसीरा फर्टिलिसीमा नामक नील हरित शैवालों पर अनेक कार्य किए गये हैं तथा प्रयोग द्वारा देखा गया है कि इनको धान की खेतों में लगाने पर चावल की पैदावार 30% अधिक हो जाती हैं। राजस्थान में एनाबिनोप्सिस तथा स्पायरूलाइना का प्रयोग उर्वरक के रूप में किया जाता है।

शैवालों का वाहितमल निवारण में बहुत उपयोग है। ऑर्डर क्लोरोकुकेल्स, वाल्वोकेल्स तथा यूग्लीनोफाइसी के अनेक शैवाल सदस्य वाहित मल की जल की सतह पर उगते हुये पाये जाते हैं। ये शैवाल इस जल को ऑक्सीजन प्रदान करते हैं तथा खनिज लवणों का अवशोषण करके जटिल पदार्थों को सरल पदार्थों में विघटित कर देते हैं। उदाहरण के तौर पर सेण्डेस्मस माइक्रोएक्टीनम, पायरोबोट्रिस, क्लेमाइडोमोनास तथा युग्लीना आदि।

शैवालों का औषधियों एवं एन्टीबायोटिक्स के रूप में भी बहुत उपयोग है।

शैवाल	प्राप्त औषधि	रोग उपचार में महत्व
भूरा शैवाल	आयोडीन	घेंघा
सरगासम	पेलकेटो	दक्षिण अमेरिका में घेंघा रोग के उपचार में।
गेलीडियम	–	उदर सम्बन्धी रोग के उपचार में।
फ्यूकोइडीन	–	खून का थक्का जमने से रोकने के लिए
कोडियम एवं डाइजेनिया	–	चीन तथा जापान में वृक्क, ब्लैडर तथा फेफड़ों से सम्बन्धित रोग के उपचार में।

इसी प्रकार मलेरिया रोकथाम हेतु मच्छरों को नष्ट करने हेतु कारा तथा नाइटैला नामक शैवाल जलाशयों में उगाये जाते हैं। क्लोरेला नामक शैवाल से प्राप्त क्लोरेलिन नामक एण्टीबायोटिक्स का प्रयोग विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं को नष्ट करने में किया जाता है। क्लेडोफोरा एवं लिंगबया शैवालों से प्राप्त सत्व मे स्यूडोमोनाज तथा माइकोबैक्टिरियम को नष्ट करने की क्षमता होती है।

शैवाल का अगर-अगर मीडिया बनाने में भी किया जाता है। जापान में समुद्री शैवाल गेलीडियम कार्टीलेजीनियम से अगर तैयार किया जाता है। अन्य देशों जैसे – अमेरिका, आस्ट्रेलिया न्यूजीलैण्ड में अगर-अगर अनेक शैवालों जैसे टेरोक्लेडिया, ग्रेसीलेरिया, कॉण्ड्रस, फाइलोफोरा तथा कम्पलेफोरा आदि से तैयार किया जाता है। भारत में ग्रेसीलेरिया वेरूकोसा, ग्रेसीलेरिया एडुलिस, ग्रेसीलेरिया क्रेसा, तथा जिलेडियम माइक्रोप्टेरम से अगर-अगर प्राप्त किया जाता है। अगर-अगर का प्रयोग प्रायः कवको तथा जीवाणुओं के संवर्धन के लिए माध्यम की भांति प्रयोगशालाओं में किया जाता है। इसी प्रकार अगर-अगर का प्रयोग विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थो के निर्माण, जैसे–आइसक्रीम, शर्बत तथा औषधियों के निर्माण में भी किया जाता है।

एल्जीनिक अम्ल प्रायः फियोफाइसी के अनेक सदस्यों जैसे लेमीनेरिया मेक्रोसिस्टिस, लेसोनिया, तथा डरबीलिया से एल्जीनिक अम्ल प्राप्त किया जाता है। इस अम्ल के कैल्शियम, एल्युमिनियम, तथा जिंक के लवण एल्जीनेट्स कहलाते हैं जिनका प्रयोग भोज्य पदार्थों आइसक्रीम आदि के निर्माण में किया जाता है। इसके अतिरिक्त एल्जीनेट्स का प्रयोग कपड़ा, रबर, प्रिंटिग स्याही, पॉलिश, पेन्ट्स व कागज उद्योगों मे भी किया जाता है।

समुद्री खरपतवारों जैसे –लैमिनोरिया डिजीटेरा, फ्यूकस वेसीकुलोसस को आयोडीन बनाने में काम मे लिया जाता है।

डाइएटम्स से बने भूखण्ड डाइटोमाइट कहलाते हैं इनमें अनेक सूक्ष्म छिद्र पाये जाते हैं तथा इनमें कोई भी रासायनिक क्रिया नहीं होती है। डाइटोमाइट का प्रयोग विस्फोटक पदार्थो के अवशोषण, शर्करा शोधन के फिल्टर निर्माण, बायलर्स इन्सूलेटर्स, तथा सीमेन्ट फैक्ट्री में अग्निप्रतिरोधक के रूप में भट्टियों में किया जाता है।

अनेक सूक्ष्म शैवालों तथा डाइएटम्स की कोशिकाओं में भोज्य पदार्थ, तेल की बूंदों के रूप में संचित होते हैं जोकि पेट्रोलियम उद्योग मे महत्वपूर्ण होते हैं।

कुछ शैवाल जैसे – फ्यूकस फाइलोफोरा आदि से विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थ जैसे – एसीटिक अम्ल, फार्मिक अम्ल, तथा एसीटोन प्राप्त किए जाते हैं। जापान मे सरगासम की कुछ जातियों से कृत्रिम ऊन बनाई जाती है। शैवालों से प्राप्त एल्गिन से टाइपराइटर के रोलर बनाये जाते हैं। कॉण्ड्स नामक शैवाल से प्राप्त म्यूसिलेज का प्रयोग क्रीम, पाउडर, पॉलिश तथा शैम्पू बनाने के लिए किया जाता है।

———

शैवाक (LICHENS) : परिचय, विविधता एवं उपयोग

विवेक नारायण सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

वनस्पति जगत में हम विभिन्न समुदाय के पौधों का अध्ययन करते हैं। प्रत्येक समुदाय की प्रजातियों की अपनी एक विशेष पहचान होती है और वे उन्हीं लक्षण विशेष के कारण जाने जाते हैं। परन्तु क्या यह इस प्रकृति का आश्चर्यजनक सत्य नहीं है कि, इस सृष्टि में पौधों का एक ऐसा भी समुदाय है जिसकी पहचान दो परस्पर भिन्न समुदायों के संयोजित लक्षणों से उत्पन्न होती है। वैज्ञानिक रूप से इन पौधों को शैवाक (Lichen) के नाम से जाना जाता है। शैवाक अर्थात् शैवाल (Algae) तथा कवक (Fungi) ये दोनो ही पूर्णतः भिन्न गुणों के धारक हैं। शैवाल जिनके पास हरितलवक होने के कारण भोजन बनाने का सामर्थ्य तो होता हैं परन्तु अपने शरीर में नमी को रोक न पाने के कारण जीवन बचाने में असमर्थ होते हैं, वही दूसरी तरफ कवक अपनें लम्बे-लम्बे तन्तुओं में नमी को तो अवशोषित कर सकते हैं परन्तु भोजन बनाने में अक्षम होने के कारण उन्हें दूसरों के बनाये भोजन पर निर्भर रहना पड़ता है। अतएव इन दोनों ने अपनी कमियों को एक दूसरे की सहायता से दूर किया अर्थात् कवक शैवाल को नमी प्रदान करता है तथा बदले में उससे भोजन प्राप्त करता है। इस परस्पर मित्रवत सम्बन्ध को स्थाईत्व प्रदान करने हेतु दोनों ने मिलकर एक नयी संरचना को जन्म दिया जिसे हम शैवाक के नाम से जानते हैं। वैज्ञानिक शैवाकों के जीवन जीने की इस विधा को सहजीविता (Symbiosis) का नाम देतें हैं, जिसमें दो परस्पर भिन्न गुणों के जीव एक दूसरे को हानि पहुँचाये बिना परस्पर लाभ लेते हैं।

एलेक्सोपोलस व मिम्स (1979) के अनुसार शैवाक, एक शैवाल व एक कवक का ऐसा मेल होता है, जिसमें दोनों जीव परस्पर एक दूसरे मे गुँथ कर एक समान थैलस का निर्माण करते हैं। शैवाकों द्वारा बनाया जाने वाला यह थैलस मुक्त अवस्था में पाये जाने वाले अपने घटक जीवो से पूर्णतः भिन्न होता है।

शैवाकों का संरचनात्मक अध्ययन करनें से ज्ञात होता है कि इनके आधारीय ऊतकों का निर्माण कवकों के द्वारा होता है तथा शैवालों का प्रतिशत कुल संरचना का 10% से अधिक नहीं होता है। लगभग 85% शैवाकों में हरे शैवाल (Green Algae) पाये जाते है, 10% शैवाकों में हरे-नीले शैवाल (Blue green Algae) व लगभग 4% शैवाकों में दोनों घटकों के वितरण के आधार पर दो प्रकार के थैलस पाये जाते हैं। प्रथम यह जिसमें दोनों घटकों का वितरण समान रूप से पूरे थैलस में होता है–समावयवी थैलस (Homoiomerous thallus) कहलाते हैं, जैसे कि कोलेमा में नॉस्टाक व कवक का वितरण। दूसरा प्रकार–विषमावयवी थैलस (Heteromerous thallus) कहलाता है जिसमें शैवाल एक स्तर के रूप में वल्कुट (Cortex) के नीचे होता हैं, अधिकतर शैवाकों में इसी प्रकार के थैलस पाये जाते हैं।

वाह्य आकारकी के आधार पर शैवाकों को 4 प्रमुख भागों कें बॉटा जा सकता है–

1) **पर्पटीमय शैवाक** (Crustose lichen) : इस प्रकार के शैवाक अपने आधार की सतह पर सीधे एक पतले स्तर के रूप में लगे होते हैं। वे अपने निचली सतह के तन्तुओं (Hyphae) द्वारा आधार को कस कर जकड़े रहते हैं तथा उन्हें उनके आधार से अलग नही किया जा सकता है। जैसे - वंश *आर्थोनिया, ग्रेफिस लेकानोरा, पर्टूसेरिया* आदि की प्रजातियाँ।

2) **पर्णिल शैवाक** (Foilose lichen) : इस प्रकार के शैवाक पर्ण (पत्ती) के सदृश्य, चपटे, पृष्ठाधर, क्षैतिज रूप से फैले हुये, निचली सतह की मूलिकाओं (Rhizines) द्वारा आधार से जुड़े होते हैं। इनका थैलस एक पॉलिवत् या द्विशाखित अनेकों पालियों में विभाजित होता है। इन पालियों की लम्बाई व चौड़ाई अलग - अलग वंशों में भिन्न परन्तु स्थिर होती है। जैसे – वंश पार्मोट्रिमा, डर्मेटोकार्पान, हेट्रोडर्मिया, लोबेरिया आदि की प्रजातियां।

3) **पालिकीवत् शैवाक** (Squamulose lichen) : शैवाकों का यह प्रकार पर्पटीमय व पर्णिल के बीच का है। ये शैवाक गोल या अण्डाकार, पृष्ठाधर, छोटी-छोटी पालिकी जैसी संरचना के रूप में, अलग-अलग स्वतंत्र रूप से, आधार पर सिर्फ किनारों से जुड़े होते हैं। कुछ वंशो जैसे कि *पेल्टुला* में ये आधार पर विशेष संरचना केन्द्रीय नाभिका (Central

umbilicus) द्वारा जुड़े होते हैं। जैसे – वंश इंडोकार्पान, सोरा, टोनीनिया आदि की प्रजातियाँ।

4) **क्षुपिल शैवाक** (Fruticose lichen) : ये शैवाक सामान्यतः आधार से निकल कर सीधे खड़े या लटके हुये व शाखित होते हैं। अपने आधार से ये एक स्थापनांग (Hold fast) द्वारा जुड़े होते हैं, जो आधार में धंस कर शैवाल को जकड़े रखता है। इनके प्रपर्ण (Fronds) सामान्यतः शाखित, बेलनाकार जैसे कि वंश *उस्निया* व *ब्रायोरिया* में चपटे फीते की तरह होते हैं जैसे कि *रोसेल्ला* व रामालिना में।

शैवाक अध्ययन का इतिहासः

शैवाकों के अध्ययन का आरम्भ भी थियोफ्रेस्टस (370-280 ई. पू.) के समय से मान सकते हैं, क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम ग्रीक भाषा के शब्द 'लाईकेन' (Lichen) का प्रयोग इस पादप समूह के लिये किया। बाद में टाउनफोर्ट (1700 ई.) नें इस शब्द 'लाईकेन' को इस पादप समूह के एक वंश के रूप में प्रतिस्थापित किया। कैरोलस लीनियस ने अपनी पुस्तक स्पीशीज प्लैन्टेरम (1753) में लाइकेन वंश के अन्तर्गत 80 प्रजातियों का एक वर्गीकृत लेखा प्रस्तुत किया।

स्वीडन के वनस्पतिज्ञ अकेरियस ने शैवाकों का गूढ़तम अध्ययन करते हुये इसे एक नया आयाम प्रदान किया। उन्होनें शैवाकों के बाह्य आकारिकी के अध्ययन के आधार पर अनेकों नये वंशों व प्रजातियों को स्थापित किया तथा मेथोडिका लाईकेनम (1803) लाईकेनोग्राफिया यूनिवर्सेलिस (1810) व सिनोप्सिस मेथोडिका (1814) आदि ग्रन्थ लिखे। 19 वीं शताब्दी में शैवाकों का विधिवत् अध्ययन करने वाले अन्य वनस्पतिज्ञों में यूरोप के फ्रांईस, फी, कोर्बर, नाईलेन्डर, वाईनों आदि व अमेरिका के टकरमान प्रमुख हैं। 20 वी शताब्दी तक एशिया, अफ्रीका व अमेरिका के उष्ण व शीतोष्ण भागों में शैवाकों का पर्याप्त अध्ययन हो चुका था।

भारत में भी उन्नीसवीं शताब्दीं में प्रायद्वीप भाग से बेलन्गार ने नीलगिरि पर्वत से पेरोट ने हिमालय पर्वत से वॉलिच ने कुमॉयू पहाड़ियों से स्ट्रैकी व विन्टरबोटम् ने पूर्वी हिमालय से हुकर व थॉमसन ने बंगाल व अण्डमान द्वीपों से कुर्ज ने असम से जे. थॉमसन ने तथा मणिपुर से जी. वॉट ने शैवाकों के नमूनों को एकत्रित किया। शैवाकों का अनेक शैवाकविद्वों सी. मोन्टग्ने, टी. टेलर, सी. बैबिंग्टन, नाइलेन्डर, स्टिर्टन व मुलर–आर्गोवेन्सिस आदि ने अध्ययन किया।

शैवाकों का प्राकृतिक वास व वितरण :

शैवाक सभी प्रकार की वातावरणीय दशाओं में व विभिन्न वासस्थलों पर कुशलता पूर्वक पनप सकते हैं, ये विश्व के सभी भागों में पाये जाते हैं। पर्याप्त नमी, प्रकाश, स्वच्छ व प्रदूषण रहित वायु व विक्षोभ रहित आधार शैवाकों की वृद्धि के लिये अनुकूल दशायें है। शैवाक पत्थरों, पेड की छालों, पत्तियों, मिट्टी व कभी-कभी माँस पर भी आसानी से पनपते हैं। ये दीवारों, लकड़ियों व लोहे की नलियों पर भी फैल सकते हैं।

भारत की भौगोलिक विविधता को देखते हुये, शैवाकों के वितरण को तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है।

1) **उष्ण व उपोष्ण भागों के शैवाकः** ऐसे क्षेत्रों में जिनकी ऊँचाई 1,500 मी. या इससे कम होती है वहां पर्पटीमय शैवाक अधिक पाये जाते हैं। इन क्षेत्रों में पाये जाने वाले शैवाक कुलों में *पायरेनोकार्पेसी कैलिसियेएसी, ग्रेफिडियेसी, थिलोट्रिमेसी आर्थोनिएसी* आदि प्रमुख हैं। ये शैवाक *टर्मिनेलिया, डिप्टेरोकार्पस, इलियोकार्पस, यूरिया ट्रीमा, शीमा, पाइनस, अल्बीजिया* आदि वृक्षों की छालों पर सामान्यतः पाये जाते है। नम भागों में भूमि पर *क्लैडोनिया* जैसे क्षुपिल शैवाक भी मिलते हैं। *फिसिया, डिरिनेरिया, पार्टोट्रिमा* आदि पर्णिल वंश के शैवाक नम स्थानों पर देखे जा सकते हैं।

2) **समशीतोष्ण भागों के शैवाक :** ऐसे क्षेत्र जो समुद्र तल से 1,500-3,600 मी. की ऊँचाई पर होते हैं जैसे कि पूर्वी व पश्चिम हिमालय, उ. पू. भारत के उतुंग क्षेत्र व द. भारत की पहाड़ियाँ आदि समशीतोष्ण भाग के अन्तर्गत आते हैं। इस क्षेत्र की वातावरणीय दशा पर्णिल व क्षुपिल शैवाको के विकास के लिये अनुकूल अवसर प्रदान करती है, क्योंकि इन क्षेत्रों में वनों के अधिक घने नहीं होने के कारण शैवाकों को विकास के लिये समुचित प्रकाश, वर्षा व वायु आसानी से मिल जाता है। इसके अतिरिक्त *मैग्नोलिया, कैस्टेनोप्सिस, रोडोडेन्ड्रान, क्वैर्कस, एसर, सिम्पलोकस, एस्कुलस,*

क्यूप्रेसस आदि की प्रजातियों के वृक्ष *पार्मोट्रिमा, लसालिया, कोलेमा, लेप्टोजियम्, फिसिया, फिस्कोनिया, लोबेरिया, सिट्ट्रेलिया* व *ब्रायोरिया* आदि पर्णिल वंशों के शैवाकों को उपयुक्त आधार प्रदान करते हैं। *राइनोडिना, डिप्लोटोमा, एकरोस्पोरा, पर्टुसेरिया, कैलोप्लैका, ओक्सोलेकिया, बुएलिया* आदि पर्पटीमय शैवाक भी चट्टानों, वृक्ष की छालों व धरती पर देखे जा सकते हैं। क्षुपिल वंशों के शैवाकों में *उस्निया, रामालिना, ब्रायोरिया* व टीलोस्किटिस आदि को कोनधारी वृक्षों की टहनियों से लटकते हुये तथा *क्लैडोनिया* व स्टीरियोकाउलॉन को भूमि से उगते हुये देखा जा सकता है।

3) **शीत प्रदेशों के शैवाक :** वे क्षेत्र जिनकी ऊँचाई 3,600 मी. या अधिक है, जैसे कि गोमुख, पिण्डारी हिमक्षेत्र, केदारनाथ, नाथुला दर्रा, सेला दर्रा, नांगुला दर्रा, सारामती पहाड़ियाँ आदि शीत प्रदेशों के अन्तर्गत आते हैं। इन प्रदेशों में शैवाकों के सामान्यतः वे ही वंश मिलते है जो समशीतोष्ण भागों में मिलते हैं परन्तु प्रजातियाँ भिन्न होती हैं। बड़े वृक्षों की अनुपस्थिति में छोटी झाड़ियाँ जैसे *रोडोडेन्ड्रान, जूनीपेरस, करंगा* आदि इन्हें आधार देती हैं। खुले भागों में पत्थरों पर व भूमि पर *एकैरोस्पोरा, डिप्लोटोमा, लेसीडिया, लेकानोरा, राइजोकार्पान, हाइपोजिम्निया, अम्बिलिकेरिया, थाम्नोलिया, स्टीरियोकाउलॉन* आदि प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

शैवाको की विविधता :

शैवाकों की वैश्विक विविधता का अध्ययन अभी अपूर्ण है परन्तु वैज्ञानिकों द्वारा सतत् प्रयास किया जा रहा है। अनेक क्षेत्रों में निरंतर सर्वेक्षण कार्य प्रगति पर है। वर्तमान में विश्व में लगभग 20,000 शैवाक प्रजातियाँ खोजी जा चुकी हैं। भारत में शैवाकों की 2,180 प्रजातियाँ (सिन्हा व सिंह 2005) हैं। पश्चिमी हिमालय में 119 वंशों के अन्तर्गत इनकी लगभग 550 प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जबकि पूर्वी हिमालय से 147 वंशो की लगभग 759 प्रजातियाँ प्रकाशित हैं। गंगा के मैदानी भागों से जहाँ मात्र 224 प्रजातियाँ ज्ञात हैं वहीं अण्डमान व निकोबार द्वीपों से 307 व पश्चिमी घाट से सर्वाधिक लगभग 800 प्रजातियाँ (140 वंशो से) उल्लिखित हैं।

आंकड़े के अनुसार भारतीय प्रायद्वीप में लगभग 23% अर्थात 527 प्रजातियाँ सीमित क्षेत्री (Endemic) हैं। पर्पटीमय शैवाक अन्य की तुलना में अधिक सीमित हैं। क्षेत्रवार अध्ययन करें तो पश्चिमी घाट में सर्वाधिक लगभग 219 प्रजातियाँ व पूर्वी हिमालय में लगभग 177 प्रजातियाँ सीमित हैं। *कैलोप्लेका अल्मोरेन्सिस, पारमेलिया मसुरेन्सिस, फिसिया गोमुखेन्सिस* आदि प. हिमालय की कुछ सीमित प्रजातियाँ हैं।

आर्थोनिया कलेक्टिवा, बुएलिया पिनीकोला, ग्रफिस असमेन्सिस, पारमेलिना मनीपुरेन्सिस आदि पूर्व. हिमालय की *आर्थोथेलियम्* अवस्थी, *लिथोथीलियम इन्डिकम्, उस्निया नीलगिरिका,* आदि प. घाट की कुछ सीमित प्रजातियाँ हैं।

यूँ तो देश के शैवाकों का पूर्ण अध्ययन अभी प्रतीक्षित है, परन्तु उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार लगभग 404 प्रजातियाँ दुर्लभ (Rare) श्रेणी की हैं जैसे कि *आर्थोनिया अर्कटाटा इन्डिका, क्युलिया इन्डिका, कैलोप्लेका पिण्डारेन्सिस, कोलेमा हुकेरी, पिक्जिन पाल्नियेन्सिस* आदि।

शैवाकों के उपयोगः

शैवाक प्राचीन काल से ही मानव उपयोग में रहें हैं। शैवाकों से प्राप्त अनेक तत्वों का प्रयोग दवाओं, भोजन, इत्र, रंजक, पराबैंगनी अवशोषक तत्व, हवन सामग्री आदि को बनानें में किया जाता रहा है। एक प्रकाशित शोध पत्र के अनुसार भील, गोंड कोरका आदि आदिवासी जातियां शैवाकों को जंगलों से एकत्रित करके स्थानीय बाजार में बेच कर धनोपार्जन भी करती हैं। शैवाकों में उपलब्ध गन्धयुक्त रेंजिन का प्रयोग औद्योगिक रूप से किया जाता है। *हेटरोडर्मिया डाइडिमेटा* व *पेल्टिजेरा* का प्रायोग घाव से बहते रक्त को रोकने हेतु किया जाता हैं। *एवर्निएस्ट्रम सिर्हेटम* को उबाल कर या भून कर खाया जाता हैं, *ए. नेपालेन्स* को सिगरेट, मसाले व धूप बत्ती बनाने में प्रयोग करतें हैं। *क्लैडोनिया अर्बुस्कुला* को रेन्डियर बहुत चाव से खाते हैं। *फिस्कोनिया* व रामालिना फैरिनेसिया से रंजक व इत्र का निर्माण होता है।

मानव की असीमित आकांक्षा के परिणाम स्वरूप अन्य वनस्पतियों की ही भांति शैवाक भी अपने अस्तित्व को बचा पाने में असमर्थ हैं। जंगलो की अंधाधुन्ध कटाई से इनका वासस्थल ही नष्ट हो रहा है। उ. पू. भारत में आदिवासी जातियाँ खेती के लिये झूम पद्धति का प्रयोग करती हैं, जोकि शैवाकों का समूल नाश करने के लिये स्वयं ही पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त अनेक प्राकृतिक कारण–तेज वर्षा, बाढ़, सूखा भूस्खलन, आदि भी हैं जो शैवाकों को हानि पहुँचाते हैं। यदि इन सभी कारकों पर रोक नहीं लगाया गया तो धीरे-धीरे शैवाकों का अस्तित्व ही नष्ट हो जायेगा तथा प्रकृति की यह अनुपम संरचना सदैव के लिये समाप्त हो जायेगी।

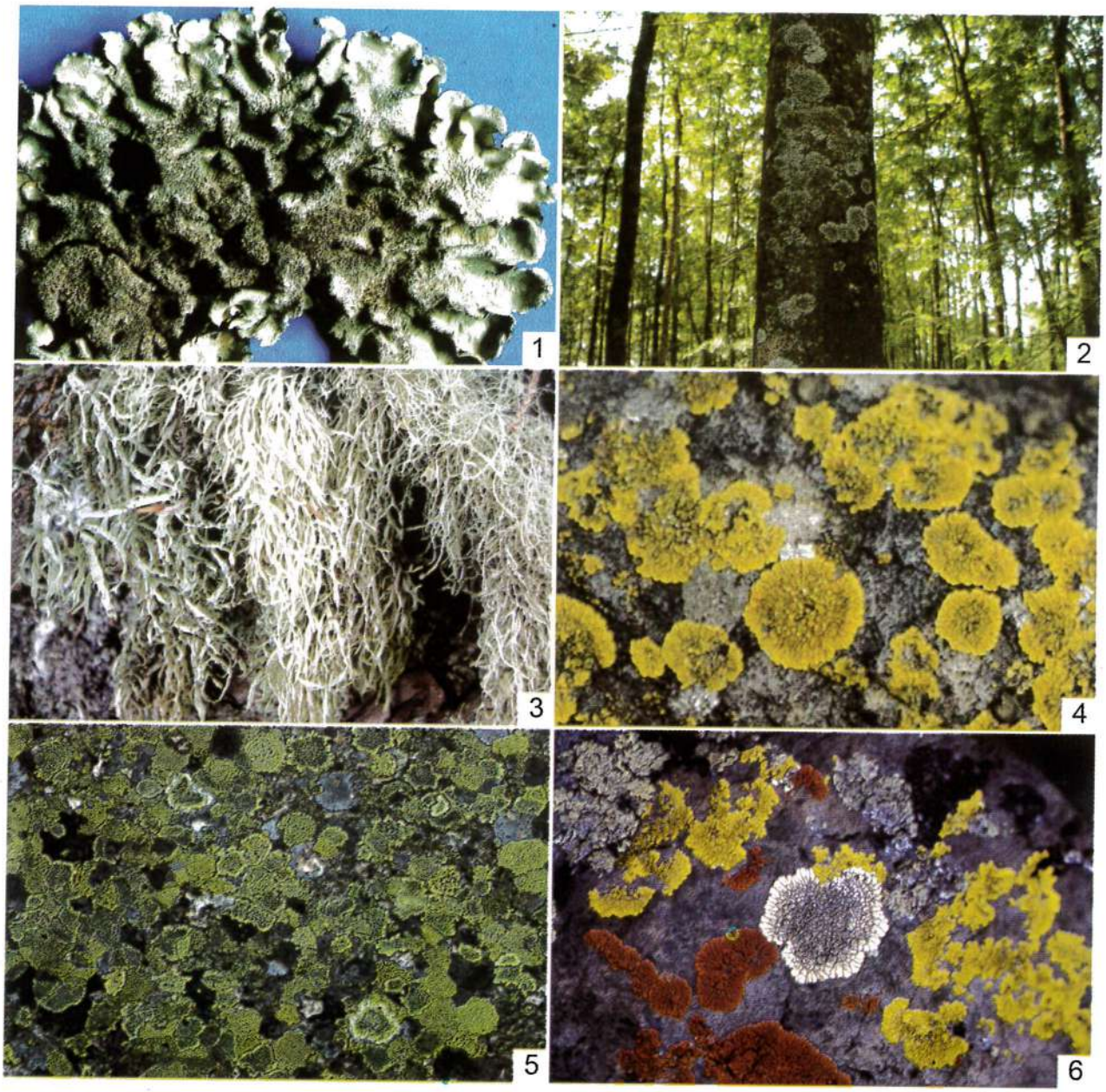

1. मसाले के रूप में उपयोगी शैवाक : पार्मोट्रिमा टिंक्टोरियम् 2. शैवाकों का प्राकृतिक आवास 3. प्रकृति में क्षुपिल शैवाक
4. पर्णिल शैवाकों की विविधता 5. शैवाकों की विविधता 6. पर्पटीमय शैवाकों की विविधता

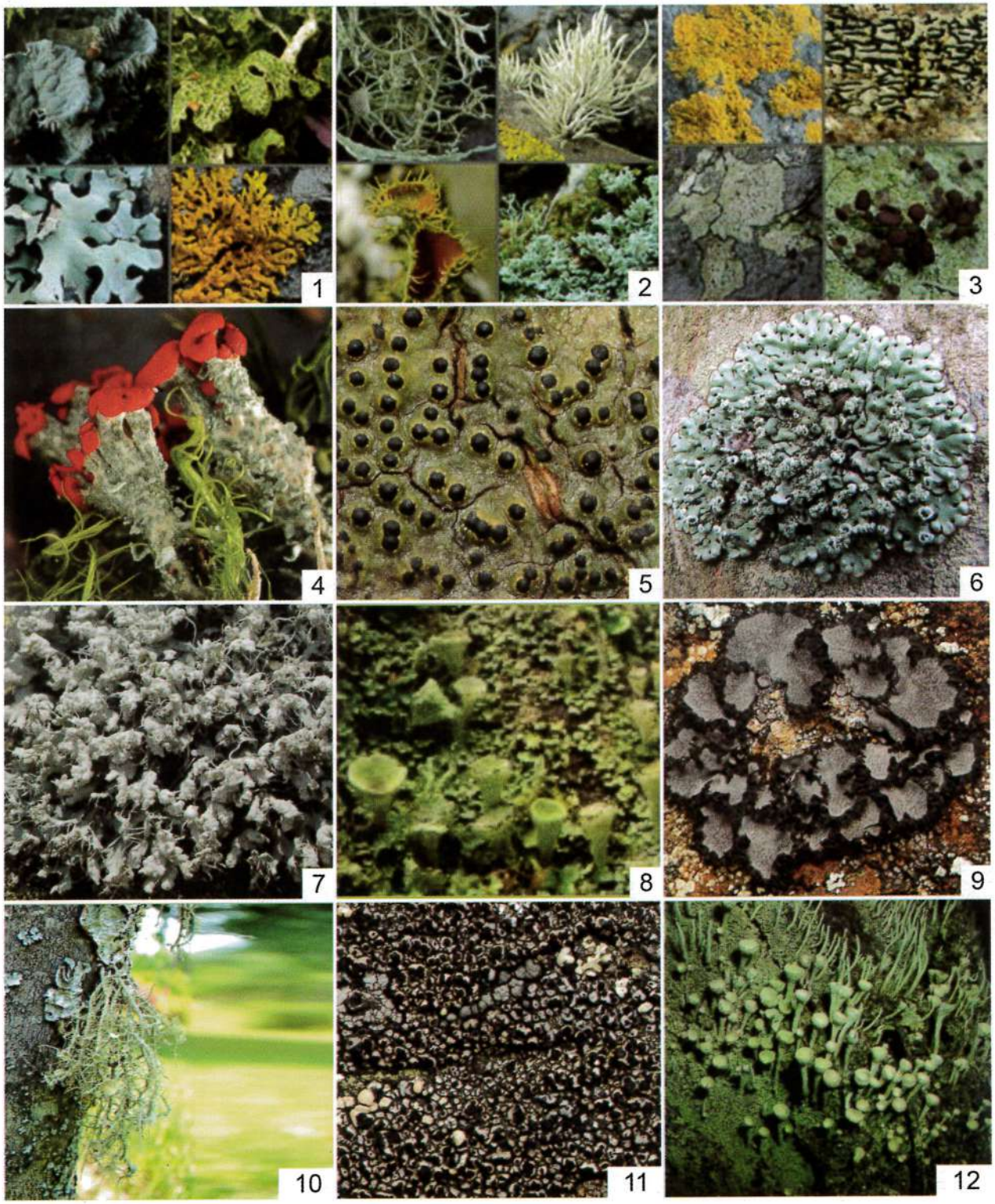

1. पर्णिल शैवाक 2. क्षुपिल शैवाक 3. पर्पटीमय शैवाक 4. भूमि से निकलने वाला शैवाक : क्लैडोनिया 5. पाइरेनुला निटिडा
6. पर्णिल शैवाक 7. फिसिया एडसेन्डेंस 8. पालिकीवत शैवाक 9. अम्बेलिकेरिया सिलेण्डरिका 10. प्रकृति में क्षुपिल शैवाक
11. बुएलिया प्रजाति 12. भूमि से निकलने वाला शैवाक : क्लैडोनिया

पर्णोद्भिद् मानव जीवन में कितने उपयोगी?

ए० बेनियामिन
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, ईटानगर
एवं सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

पादप जगत में पर्णोदिभदों को संवहनी अपुष्पी पौधों (vascular non flowering plants) के नाम से जाना जाता है। क्रिप्टोगैम्स शब्द लिनियस (Linnaeus 1754) द्वारा उन सभी फूल न देने वाले पौधों के लिए प्रस्तावित किया था जिनमें किसी समय लिंगी जनन अज्ञात था। बीजधारी तथा बीजरहित पौधों के बीच का स्थान रखने तथा आकारकीय विशेषताओं एवं विकासक्रम में महत्वपूर्ण स्थान रखने के कारण इस समूह के सदस्यों का अध्ययन अत्यन्त रोचक है। जीवाश्मकीय प्रमाणों से प्रतीत होता है कि पृथ्वी पर उत्पत्ति इनकी 400 मिलियन वर्ष पूर्व कार्बोनीफेरस काल में हुई तथा उस समय की ये प्रमुख वनस्पति थे। अगर हम आदिम भीमकाय क्लब मॉसेस एवं हार्सटेल्स (जो कि लगभग 30 मी० की उंचाई वाले थे) की तुलना वर्तमान में पाये जाने वाले उनके सदस्यों से करें तो हम पाते हैं कि आज इनका आकार आश्चर्यजनक रूप से छोटा है। पर्णोद्भिदों के उद्भव के बारे में कोई स्पष्ट विचारधारा नहीं है। कुछ शोधार्थियों का मत है कि इनका उद्भव हरितोदिभदों से हुआ है तो कुछ मानते हैं कि शैवालों से हुआ है। इस समूह के पौधे प्रचुर शारीरिक विविधता के साथ-साथ अत्यधिक आवसीय विविधता भी प्रदर्शित करते हैं तथा विभिन्न प्राकृतिक आवासों जैसे स्थलीय अधिपादप चट्टानों पर और अत्यधिक अनुकूल परिस्थितियों में जल के किनारे अथवा जल में तैरते हुए भी पाये जाते हैं। इस समूह के पादप नम छायादार स्थानों, जहां वर्ष भर मध्यम तापमान बना रहता है, में उगना पसंद करते हैं एवं ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं से लेकर निम्न ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं।

वर्तमान में पर्णोद्भिदों के 318 वंश एवं 13,600 जातियां (इनमें फर्न संगी भी शामिल हैं) जो कि विश्व के विभिन्न भागों विशेषकर उष्णकटिबंधीय से लेकर शीतोष्ण क्षेत्रों तक में पायी जाती हैं। दक्षिणपूर्वी एशिया विशेषरूप से इंडोनेशिया, ताइवान, न्यूगिनी एवं भारत में पर्णोदिभद् बहुतायत में मिलते हैं।

जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण हमारे देश की पर्णोद्भिद विविधता अनोखी एवं महत्वपूर्ण स्थान रखती है। एक अनुमान के अनुसार हमारे देश के विभिन्न पादप भौगोलिक क्षेत्रों में पर्णोदिभदों की लगभग 1,100 जातियां पायी जाती हैं जो कि 144 वंश तथा 34 कुलों से सम्बन्धित हैं। इनमें से लगभग 235 प्रजातियां स्थानिक हैं।

पर्णोद्भिदों का उपयोग मानव प्राचीन काल से करता आ रहा है। लगभग 2000 वर्ष पूर्व थियोप्रेस्टस (327-328 बी. सी.) तथा डिस्कोराइड्स (50 ए. डी.) ने पर्णोद्भिदों के औषधीय उपयोग के संबंध में जानकारी दी। केयस वह प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने सर्वप्रथम 1935 में भारत में पाए जाने वाले पर्णोद्भिदों के औषधीय उपयोगों का उल्लेख किया। तत्पश्चात् अनेकों शोधार्थियों ने इनके औषधीय उपयोगों का उल्लेख किया है। वर्तमान में मानव पर्णोद्भिदों का उपयोग विभिन्न रूपों जैसे कृमिनाशक, जैव प्रतिरोधक तथा भोजन, वाणिज्य इत्यादि में कर रहा है। इस लेख में इन्ही उपयोगों के बारे में विस्तार से उल्लेख किया गया है :

औषधि के रूप में :

एक्रोस्टीकम अरियम (*Acrostichum aureum*) : प्रकंद के चूर्ण का लेप फोड़े फुन्सियों एवं घावों पर लगाने से आराम मिलता है। चीन में इसका उपयोग पुराने अल्सर तथा मूत्राशय के इलाज में किया जाता है। इसके फलप्रद प्रपर्ण बोर्नियों, इंडोनेशिया में सिफिलिटिक अल्सर के इलाज में प्रयोग में लाये जाते हैं।

एक्टीनोप्टेरिस रेडियाटा (*Actinopteris radiata*) : इनका उपयोग डायरिया, डिसेंट्री, ज्वर, हेल्मेंथियासिस, एवं कठोर कफ तथा पित्त के इलाज में किया जाता है।

एडियंटम कैपिलस (*Adiantum capillus*) : इनका उपयोग उत्तेजक के रूप में, ज्वर को कम करने में, कफनाशक के रूप में, उदर संबंधी रोगों में एवं त्वचा तथा बालों के टॉनिक के रूप में किया जाता है। इसके साथ-साथ यह एंटीकैंसरस हाइपोग्लाइसीमिक, एप्रेडेसिक, एंटीबैक्टीरियल, एंटीफंगल, तथा एंटीवाइरल गुण भी रखता है।

एडियंटम काडेटम (*Adiantum caudatum*) : इसके प्रपर्णों के सार शल्य चिकित्सा में घाव के भरने में प्रभावकारी है।

एडियंटम लुनुलेटम (*Adiantum lunulatum*) : मलेशिया में इसकी पत्तियों एवं जडों के अर्क छाती की व्याधियों को दूर करने के लिए किया जाता है।

एडियंटम प्वाइरेटाई (*Adiantum poiretii*) : फिलीपींस में इसकी पत्तियों का उपयोग कफ, ज्वर, मधुमेह, त्वचा संबंधी विकारों के इलाज के लिए किया जाता है।

एंपेलोप्टेरिस प्रोलीफेरा (*Ampelopteris prolifera*) : अरूणाचल प्रदेश के लोग इनके नूतन प्रपर्णो का उपयोग ऑत संबंधी विकारों के इलाज के लिए करते हैं।

एंजियोप्टेरिस इवेक्टा (*Angiopteris evecta*) : इसकी पत्तियों के अर्क का उपयोग डिसेंट्री तथा अल्सर के इलाज में करते हैं। इसके साथ-साथ इनके स्पोर्स का उपयोग कुष्ठ तथा अन्य त्वचा संबंधी रोगों के इलाज के लिए किया जा सकता है।

एसप्लेनियम निडस (*Asplenium nidus*) : इसकी जड़ें, फीलपॉव तथा अल्सर के इलाज में लाभप्रद है। इसके साथ-साथ यह त्वचा को मुलायम रखने एवं खासी तथा छाती के रोगों के निदान में भी सहायक हैं। कफ से निजात पाने के लिए इसकी पत्तियों का उपयोग धूम्रपान के रूप में करते हैं।

एसप्लेनियम पॉलीडान प्रभेद बाइपिन्नेटम (*Asplenium polydon.* var. *bipinnatum*) : इसके उपयोग से प्रसव क्रिया में सहायता मिलती है। यूरोप में इसका उपयोग उबकाई से निजात पाने के लिए पेय के रूप में करते हैं। जड़े, फीलपॉव तथा अल्सर के इलाज में लाभप्रद हैं। इसके साथ ही यह एंटीकैंसरस गुण भी रखते हैं। इसके नूतन कोजियर्स के चूर्ण का लेप ट्यूमर पर लगाने से आराम मिलता है।

ब्लेचनम औरिएंटेल (*Blechnum orientale*) : मलेशिया में इसके नूतन प्रपर्णो का उपयोग फोड़े फुंसियो पर पट्टियों के रूप में होता है। चीन में प्रकंदो का उपयोग आंत्र की घावों के इलाज, प्रमुख रूप से परजीवी कृमियों के निष्क्रमण में किया जाता है।

एडियंटम लुनुलेटम बर्म० एफ०

एसप्लेनियम निडस लि०

बोटीकम लनुजिनोसम वॉल० एक्स हुक० एवं ग्रिव०

डायोप्टेरिस कोचलिएटा (ब्रे०) शान) सी० के०

भारत एवं पॉलीनेशिया में यह मूत्राशय संबंधी विकारों के इलाज तथा फिलीपींस में यह स्वेदजनक, सुगन्धक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

बोट्रीकम लैंनुजिनोसम (*Botrychum lanuginosum*) : इसके पौधे एंटीडिसेंट्रिक एवं एंटी बैक्टीरियल गुंण रखते हैं।

सिरेटोप्टेरिस थैलिक्ट्रायडिस (*Ceratopteris thalictroides*) : इसके प्रपर्णो का उपयोग त्वचा संबंधी रोगों के इलाज विशेषकर पट्टिका के रूप में किया जाता है। ऐसा ज्ञात है कि ये पौधे जहरीले एवं कसैले होते हैं।

किलेंथिस टेन्वीफोलिया (*Cheilanthes tenuifolia*) : इसके प्रकंद एवं जड़ों का अर्क का उपयोग आदिवासी टॉनिक के रूप में करते हैं।

किलेंथिस फारिनोसा (*Cheilanthes farinosa*) : इसकी जड़ों का उपयोग एग्जीमा एवं उदर संबंधी विकृतियों तथा प्रपर्णो का उपयोग मासिक धर्म संबंधी विकारों के इलाज में किया जाता हैं।

सिबोटियम बैरोमेट्ज (*Cibotium barometz*) : इसके प्रकंदों का उपयोग आंत्र के परजीवी कृमियों के निष्क्रमण में, जड़ो का उपयोग टॉनिक के रूप में तथा कमर दर्द विशेषकर मांसपेशियों के खिंचाव मे किया जाता है।

क्रिस्टेला पैरासिटिका (Cheristella parasitica): इसका उपयोग जोड़ों के दर्द एवं गठिया रोग के उपचार में किया जाता है।

क्रिस्टेला एरिडा (*Christella arida*) : इसकी जड़ो का उपयोग पशुओं के उपचार में किया जाता है।

सायथिया गिगैंटिया (*Cyathea gigantea*) : इसके प्रपर्णो का उपयोग दर्दनाशक के रूप में एवं इसके प्रकंदो का उपयोग सर्पदंश के इलाज में किया जाता है।

सिरटोमियम फॉलकेटम (*Cyrtomium falcatum*) : इसके प्रकंदो का उपयोग आंत्र के परजीवी कृमियों विशेषकर फीताकृमि के निष्क्रमण में किया जाता है।

ड्राइनेरिया क्वेर्सीफोलिया (*Drynaria quercifolia*) : इसके प्रकंद का उपयोग डायरिया, सिफैल्जिया, डिसेंट्री, अल्सर, कफ, टायफाइड ज्वर, फेफड़े, पेट संबंधी रोगों एवं माइग्रेन के इलाज मे किया जाता है। इसके पौधों का अर्क कृमिनाशक, कफनाशक के रूप में एवं टायफाइड ज्वर तथा उदर संबंधी रोगों के इलाज में किया जाता है। इसके प्रपर्ण का उपयोग सूजन को कम करने में किया जाता है।

डाइक्रेनोप्टेरिस लिनिएरिस प्रभेद *लिनिएरिस* (*Dicranopteris linearis* var. *linearis*) : इसके प्रकंद का उपयोग कृमिनाशक के रूप में एवं दमा के इलाज में किया जाता है।

डिप्लेजियम एस्कुलेंटम (*Diplazium esculentum*) : इसके प्रकंद एवं नूतन पत्तियों के अर्क का उपयोग फिलीपींस में फेफड़े संबंधी रोगों एवं कफ के इलाज में किया जाता है।

ड्रायोप्टेरिस कोचलिएटा (*Dryopteris cochleata*) : इसके सम्पूर्ण पौधे के अर्क का सेवन एवं लेप सर्पदंश में लाभप्रद है। इसका प्रकंद एंटीबैक्टीरियल एवं मांसपेशी संबंधी रोगों में उपयोगी एवं गठिया, मिरगी, कुष्ठ रोग तथा जड़ का अर्क अमीबी पेंचिस में लाभकारी है।

ड्रायोप्टेरिस स्पार्सा (*Dryopteris spsrsa*) : इसका पौधा आंत्र कृमिनाशक है।

इक्वीसिटम रैमोसिसिमम (*Equisetum ramosissimum*) : इसके तने को बच्चों के पेट संबंधी बीमारियों के इलाज में इनेमा के रूप में किया जाता है। दक्षिण अफ्रीका में इसके प्रकंद के अर्क को महिलाओं में बांझपन दूर करने के लिए उपयोग में लाते हैं। इसका पौधा हीमोस्टेटिक, डाइयूरेटिक, एंटीफंगल एवं एंटीवायरल गुण रखता है। इसकी टहनियों को कुछ अन्य पौधों के साथ मिश्रित कर लेप बनाकर विकृत हड्डियों पर लगाने से आराम मिलता है।

हेलमिंथोस्टेकिस जिलेनिका (*Helminthostachys zeylanica*) : इसका प्रपर्ण दर्दनाशक एवं मादक गुण रखता है जिसके कारण यह सियाटिका, बुखार इत्यादि रोगों में लाभप्रद है। इसका प्रकंद डिसेंट्री, नेत्र रोग, सियाटिका, मलेरिया

नपुंसकता, दमा, स्पर्मेटोरिया आदि रोगों में लाभप्रद है। इसके पौधे का अर्क नपुंसकता के इलाज में एवं पत्तियों का सार जीभ पर हुए फफोले के इलाज में किया जाता है।

हायमिनोफिलम जावानिकम (*Hymenophyllum javanicum*) : लोग इसका उपयोग सिरदर्द से निजात पाने के लिए इसके सूखे पौधे को प्याज एवं लहसुन के साथ मिश्रित कर धूम्रपान करते हैं।

हायपोडिमेटियम क्रिनेटम (*Hypodematium crenatum*) : इसका प्रकंद एंटीबैक्टीरियल गुणधारक है। इसकी पत्तियों का उपयोग महिलाएं गर्भधारण करने के लिए करती हैं।

हायपोलेपिस ग्लैंड्यूलीफेरा (*Hypolepis glandulifera*) : मलेशिया में इनके प्रपर्ण फोड़े फुंसी के इलाज में प्रयुक्त होते हैं।

आयसोइट्स कोरोमंडेलिना (*Isoetes coramandelina*) : यूरोपवासी इसका उपयोग यकृत एवं प्लीहा की बीमारियों में पेय के रूप में करते हैं।

ल्युकोस्टेजिया इमर्सा (*Leucostegia immersa*) : नेपाली इसके प्रकंद के लेप का उपयोग फोड़े फूंसी के इलाज में करते हैं। यह एंटीबैक्टीरियल गुण रखने के साथ-साथ पेट संबंधी बीमारियों में भी सहायक हैं।

लोक्सोग्रामे कस्पिडाटा (*Loxogramme cuspidata*): इसके प्रकंद का लेप का उपयोग कटने एवं घाव के इलाज में करते हैं।

लाइकोपोडिएला सर्नुआ (*Lycopodiella cernua*) इसके पौधे का अर्क बहरी-बेरी, कफ, छाती एवं त्वचा संबंधी बीमारियों में लाभप्रद है। इसके प्रकंद का उपयोग नाड़ी दोष, गठिया रोग, ज्वर, एवं ड्राप्सी आदि रोगोंके निदान में किया जाता है।

लाइकोपोडिअम जपोनिकम (*Lycopodium japonicum*) : इसके पौधे डाइयुरेटिक एवं एंटीसेप्टिक हैं तथा गठिया, फेफड़े एवं किडनी संबंधी रोगों के निदान में उपयोगी हैं। इसके स्पोर्स का प्रयोग फार्मेसी में जल विमोचक के रूप में करते हैं। *सिलेजिनेला रूपेस्ट्रिस* के साथ इसके पौधे का धूम्रपान के रूप में सेवन से सिरदर्द में आराम मिलता है।

लाइगोडिअम फ्लेक्सिओसम (*Lygodium flexuosum*) : इसके पौधे का अर्क कफ एवं ज्वर के इलाज में लाभकारक है। उबले प्रकंद को सरसों के तेल के साथ लेप लगाने से गठिया, मॉसपेशियों मे खिचाव, अल्सर, एग्जिमा एवं स्केबीज रोगों में आराम मिलता हैं। प्रकंद का सार गोनोरिया के इलाज में भी लाभप्रद है।

इक्वीसिटम रैमोसिसिमम (लि०) डेसफ०

हेलमिंथोस्टैकिस जिलानिका (लिन.) हक०

हायपोडिमेटियम किनेटम (फोर्स्क०) कुन

लाइकोपोडिएला सर्नुआ (लि०) पिक० सर्म०

लाइगोडिएम माइक्रोफिलम (*Lygodium microphyllum*) : इसकी पत्तियों का अर्क खांसी, कफ, डिसेंट्री के इलाज में लाभकारक है। इसके साथ-साथ इनका उपयोग त्वचा रोग तथा सूजन कम करने के लिए पट्टिका के रूप में करते हैं।

मैराटिया फैक्सिनिया (*Marattia fraxinea*) : इसके पौधे का अर्क का उपयोग दक्षिण अफ्रीका में एंकाइलोस्टोमियासिस के इलाज में करते हैं।

मार्सिलिया माइन्यूटा (*Marsilea minuta*) : इसका पौधा कफ एवं पैर की विकृत मांसपेशियों एवं उत्तेजन, अनिद्रा, के इलाज में लाभकारक है। एस्ट्रिंजेंट, रेफ्रिजरेंट, एक्रिड, एमोलिएंट, एनोडाइन, हाइफोटिक, आथ्रेल्मिक, डाइयूरेटिक, एक्सपेक्टोरेंट, एफ्रोडेसिक, डिपुरेटिव तेवं फेब्रीफ्यूज गुण रखने के कारण यह साइकोपैथी, आथ्रेल्मिया, स्ट्रेंगरी, लेप्रोसी, त्वचा रोग, हीमोरायडिस, डिस्पेसिया, ज्वर आदि रोगों के इलाज में लाभदायक है।

माइक्रोसोरम पंक्टेटम (*Microsorum punctatum*) : इसकी पत्तियों के अर्क का उपयोग परगेटिव, डाइयूरेटिक के रूप में तथा घाव के भरने के लिए किया जाता है।

नेफ्रोलेपिस ऑरीकुलाटा (*Nephrolepis auriculata*) : नूतन प्रपर्णो का अर्क कफ के इलाज में लाभकारक है।

नेफ्रोलेपिस कार्डीफोलिया (*Nephrolepis cordifolia*) : प्रकंद एंटीबैक्टीरियल होने के कारण, कफ, जुखाम, गठिया रोग एवं क्षुधाह्रास संबंधी व्याधियों के इलाज में लाभकारी हैं। पिन्नी एंटीट्यूसिव, स्टिप्टिक एवं एंटीफंगल होने के कारण कफ, घाव एवं पीलिया के इलाज में उपयोगी है। नूतन प्रपर्णो का अर्क मादक पेय के रूप में करते हैं।

ओडोंटोसोरिया चाइनेन्सिस (*Odontosoria chinensis*) : मॉरीशस में इसकी पत्तियों का उपयोग क्रानिक आंत्रशोथ के इलाज में करते हैं।

ओलिएन्ड्रा म्युसीफोलिया (*Oleandra musifolia*) : डंठल का काढा पीने से मासिकधर्म संबंधी व्याधियों में लाभ होता है। फिलीपींस में इसके प्रकंदो का उपयोग सर्पदंश के इलाज में किया जाता है। इसका उपयोग आंत्र परजीवी कृमिनाशक के रूप में भी करते हैं।

ऑनीकियम सिलीकुलोसम (*Onychium siliculosum*) : प्रपर्णो का जोशांदा, डिसेंट्री के इलाज में लाभदायक है।

लाइगोडिएम माइक्रोफिलम (केव०) आर० ब्र०

नेफ्रोलेपिस ऑरीकुलाटा (लि०) ट्रिमन०

नेफ्रोलेपिस बॉइसेराटा (स्विo) स्कोटo

ओफिओग्लोसम ग्रोमिनियम (*Ophioglossum gramineum*) : इसके पौधे का सार एन्जाइना के इलाज में लाभदायक है। प्रपर्ण टाक्सिक एवं स्टिप्टिक होने के कारण घाव के इलाज एवं रक्तश्राव को रोकने में प्रयुक्त होते हैं। आदिवासी इसके प्रकन्द के गर्म अर्क का उपयोग फोड़े के इलाज में करते हैं। इसके साथ-साथ यह एंटीबैक्टीरियल, एंटीकैंसरस, एंटीसेप्टिक गुण भी रखते हैं।

ओफिओग्लोसम रेटीकुलेटम (*Ophioglossum reticulatum*) : यह घाव में होने वाली जलन को कम करके शीतलता प्रदान करता है। प्रपर्ण टॉनिक के रूप में एवं एन्टीसेप्टिक होने के कारण घाव के इलाज एवं रक्तश्राव को रोकने में प्रयुक्त होते हैं।

ऑसमुंडा हयूग्लियाना (*Osmunda hugeliana*) : प्रपर्ण टानिक के रूप में, एवं एंटीसेप्टिक होने के कारण घाव, रिकेट्स, गठिया एवं आंत्र के इलाज में प्रयुक्त होते हैं (नायर, 1959; दीक्षित एवं वोहरा, 1984)।

आनीकियम जैपोनिकम (*Onychium japonicum*): इसकी पत्तियों के सार का उपयोग करने से बालों का झड़ना बंद होता है।

ओलिएन्ड्रा वैलिचि (*Oleandra wallichi*) : इसके प्रकंद का उपयोग बृद्ध लोग स्फूर्ति प्राप्त करने के लिए करते हैं।

पैराहेमियोनाइटिस एरिफोलिया (*Parahemionitis arifolia*) : इसके प्रपर्णो का उपयोग आंत्र परजीवी कृमियों के निष्क्रमण में एवं अर्क असंतुलित मासिकधर्म के इलाज तथा गर्भरोधक के रूप में होता है। इसका प्रकंद एंटीबैक्टीरियल गुणधारक है।

फ्लेबोडियम ऑरियम (*Phlebodium aureum*) : मेक्सिको में इसके प्रकंद का उपयोग कफ, बुखार एवं अत्यधिक पसीना आने की बीमारी के इलाज में करते हैं।

पिटीरोग्रेमा कैलोमेलानॉस (*Pityrogramma calomelanos*) : इसके पौधे के सार का उपयोग फिलीपींस में गुर्दों के इलाज में किया जाता है। त्रिनिदाद में इसके प्रपर्णो के जोशांदे का उपयोग फ्लू उच्चरक्तचाप, बुखार एवं कफ के इलाज में करते हैं। दक्षिण अफ्रीका में इसके प्रकंदो का उपयोग आंत्र परजीवी कृमिनाशक के रूप में किया जाता है। इसके प्रपर्णो के सार का प्रयोग नाक एवं मुख के फोड़ों के इलाज में किया जाता है। इसके साथ-साथ यह कफ, जकड़न एवं अस्थमा के इलाज में भी लाभप्रद हैं।

प्लियोपेलटिस मैक्रोकार्पा (*Pleopeltis macrocarpa*) : दक्षिण अफ्रीका में इसका प्रपर्ण कफ, गले के दर्द एवं खुजली के इलाज में तथा आंत्र परजीवी कृमिनाशक के रूप में किया जाता है। मेक्सिको एवं ग्वाटेमाला में इसके प्रकंद का उपयोग ज्वर एवं कफ के इलाज में किया जाता है।

पॉलीस्टीकम मोलक्केंसे (*Polystichum molucceense*) : इसका बीजाणु पत्रक एक एंटीबैक्टीरियल एजेंट है।

पॉलीस्टीकम स्क्वेरोसम (*Polystichum squarrosum*) : इसका बीजाणु पत्रक एक एंटरबैक्टीरियल एजेंट है (सिंह, 1999)।

साइलोटम नूडम (*Psilotum nudum*) : इसके तैलीय स्पोर्स का उपयोग नवजात शिशुओं में होने वाली डायरिया के इलाज में किया जाता हैं। इसका अर्क एंटीबैक्टीरियल गुण रखता है तथा आंत्र रोगों में लाभप्रद है।

टेरिडियम एक्वीलिनम (*Pteridium aquilinum*) : इसका प्रकंद डायरिया, पेट में जलन, आंत्र एवं प्लीहा की क्रोनिक बिमारियों एवं घाव के इलाज में प्रभावकारी है। ऐसी सूचना है कि इसके प्रपर्ण जहरीले तथा पशुचारण के लिए घातक होते हैं।

टेरिस क्रेटिका (Pteris cretica) : इसका प्रपर्ण एंटीबैक्टीरियल गुण रखता है तथा लेप घाव के इलाज में प्रभावकारी है।

टेरिस क्वाडिऑरिटा (*Pteris quadiaurita*) : इसके प्रकन्द का लेप फोड़े फुन्सियों एवं घाव के इलाज में प्रभावकारी है।

टेरिस विटाटा (*Pteris vittata*) : इसके सार का उपयोग डिमलसेंट, हाइपोटेंसिव, टॉनिक, एंटीवायरल एवं एंटीबैक्टीरियल के रूप में करते हैं।

टेरिस वैलिचियाना (*Pteris wallichiana*) : इसकी नूतन पत्तियों के लेप का उपयोग रक्तश्राव को रोकने तथा घावों के भरने में किया जाता है।

टेरिस इंसीफार्मिस (*Pteris ensiformis*) : इसके नूतन प्रपर्णों का अर्क डिसेंट्री के इलाज में प्रभावकारी है। प्रकंद का सार गर्दन की ग्रन्थियो में होने वाली सूजन के उपचार में उपयोगी है।

टेरिस मल्टीफिडा (Pteris multifida) : इसके प्रकंद एवं प्रपर्णों का सार डिसेंट्री के उपचार एवं आंत्र के परजीवी कृमियों के निष्क्रमण के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

पायरोशिया एडनासेंस (Pyrrosia adnascens) : इसके प्रपर्णो का उपयोग डिसेंट्री एवं जले कटे के उपचार में किया जाता है।

पायरोशिया हेटेरोफिला (*Pyrrosia heterophylla*) : शीतलता प्रतिनिधि के रूप में यह सूजन, मांसपेशियो के खिंचाव एवं दर्द को कम करने में लाभप्रद है।

पायरोशिया लैंसिओलाटा (*Pyrrosia lanceolata*) : इसके प्रपर्ण के सार का उपयोग दक्षिण अफ्रीका में सर्दी एवं गले की खरास के इलाज में किया जाता है। मेक्सिको में इसके प्रपर्णो का जोशांदा खुजली रक्षक के रूप में किया जाता है।

साल्वीनिया मोलेस्टा (*Salvinia molesta*) : यह एंटीफंगल गुण रखता है।

सिलेजिनेला डेलीकैटुला (*Selaginella delicatula*) : पौधे का अर्क एंटीबैक्टीरियल गुण रखता है। निलंबूर के आदिवासी इसका उपयोग घाव के उपचार के लिए करते हैं।

सिलेजिनेला इन्वालवेंस (Selaginella involvens) : महिलाएं इसके बीजाणु पाउडर का उपयोग वेमिलियन पाउडर, जिसको कि नेपाली में सिंदूर के नाम से जानते हैं के उपस्थापक के रूपमें करती हैं। पौधा नवजीवनदायक माना जाता है तथा कफ, खूनी बवासीर एवं अमीनोरिया जैसे रोगों में लाभप्रद तथा एंटीबैक्टीरियल है।

सिलेजिनेला रेडिकाटा (Selaginella radicata) : इसका प्रपर्ण एंटी बैक्टीरियल गुण रखता है।

स्फेरोस्टेफानॉस युनिटस (Sphaerostephanos unitus) : इसके प्रकंद का अर्क एंटीबैक्टीरियल गुण रखता है।

स्टेनोक्लीना पेलसट्रिस (Stenochlaena palustris) : प्रपर्ण एंटीबैक्टीरियल तथा ज्वर एवं गैस्ट्रिक अल्सर रोग में लाभदायक है। पत्तियां एवं प्रकंद शीतलता प्रदायक तथा जले एवं अल्सर में लाभकारी हैं।

पिटीरोग्रेमा कलोमेलाना (लि०)

साइलोटम नूडम (लि०) पी० ब्यूव०

टेरिस क्रेटिका लि०

टेरिस वैलिचियाना जे० अर्थ०

टेक्टेरिया क्वाडुनाटा (Tectaria coadunata) : इसके प्रपर्ण एंटीबैक्टीरियल हैं तथा दमा, ब्रांकाइटिस एवं मधुमक्खीदंश में लाभप्रद हैं। दार्जिलिंग में इसके नूतन प्रकंदों के अर्क का उपयोग नवजात शिशुओं में होने वाले डायरिया को रोकने में किया जाता है।

टेप्टेरिया वाइटाई (*Tectaria wightii*) : इसके प्रकंद आंत्र परजीवी कृमिनाशक के रूप में लाभप्रद हैं।

टेक्टेरिया पॉलीमार्फा (*Tectaria polymorpha*) : इसके पौधे आंत्र परजीवी कृमिनाशक के रूप में लाभप्रद हैं।

ट्रिगोनोस्पोरा कॉडीपिन्ना (*Trigonospora caudipinna*) : नेपाली इसके प्रकंद के अर्क का उपयोग ज्वर के इलाज में करते हैं।

विटेरिया इलांगेटा (*Vittaria elongata*) : अंडमान के आदिवासी इसकी पत्तियों का उपयोग गठिया रोगों के इलाज में करते हैं।

सिलाजिनेला इन्वालवेंस (रक्ष०) स्प्रिंग

स्टिनोक्लीना पेलसट्रिस (बम० एफ०) बड०

टेक्टेरिया क्वाडुनाटा
(वाल० एक्स हुक० एवं ग्रिब०) सी० क०

भोज्य पदार्थ के रूप में : अनेको पर्णोदिभदों का उपयोग भोजन के रूप में सर्वविदित है। इनमें से ब्रेकेन फर्न *टेरिडियम* की प्रजातियां प्रमुख हैं जिनका उपयोग जापान, फिलीपींस, अफ्रीका, यूरोप एवं संयुक्त राज्य में सब्जियों के रूप में हो रहा है। *एंजियोप्टेरिस इवेक्टा* के तने का उपयोग हमारे देश में भोजन के रूप में हो रहा है। *डिप्लेजियम एस्कुलेंटम* के नूतन पौधें एवं *एंपेलोप्टेरिस प्रोलीफेरा* के नूतन प्रपर्ण गोवा एवं अरूणाचल प्रदेश में सब्जियों के रूप में उपयोग किए जा रहे हैं। तमिलनाडु के आदिवासी *ड्राइनेरिया क्वेर्सीफोलिया* के प्रकंदों को खाते हैं। *नेफ्रोलेपिस बाइसेराटा* के नूतन तने एवं प्रकंद खाये जाते हैं। *हेलमिंथोस्टेकिस जिलेनिका* का भोजन के रूप में उपयोग उत्तर प्रदेश का अति पिछड़ा वर्ग करता है। *टेरिस* तथा *इक्वीसिटम* की प्रजातियों एवं *ब्लेचनम ओरिएंटेल* के प्रकंद एवं पत्तियों को मलेशियां, चीन एवं फिलीपींस में भोजन के रूप में उपयोग में लाते हैं।

जल संशोधक के रूप में : कुछ पर्यावरणविद् एवं शोधार्थियों के शोध अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि पर्णोद्भिद भारी धातुओं के अच्छे शोषक होते हैं। एक खोज के अनुसार *साल्वीनिया नेटेंस* गंदे प्रदूषित जल से कापर (Cu) के उन्मूलन में अत्यधिक सहायक है। इसका प्रयोग हिंदुस्तान कापर लि०, आइ० सी० सी० घाटसिला, बिहार के ऊत्सर्जित दूषित जल से कापर उन्मूलन हेतु सफलता पूर्वक किया गया। एक अन्य खोज के अनुसार *साल्वीनिया मोलेस्टा* का प्रदूषित जल के शोधन संबंधी उपयोग के बारे में अनेकों शोधार्थियों ने जिक्र किया है।

जैव प्रदर्शक के रूप में : ऐसा विदित है कि पर्णोदिभदों में धातुशोषकता अच्छी होती है। माउंट सेंट हेलेना में *इक्वीसिटम्* मरकरी के उच्च सांद्रण वाले स्थानो में ही उगते हैं। एक अन्य खोज के अनुसार *इक्वीसिटम आरवेंस* जिंक के बढ़ते सांद्रण

वाले स्थानों में पाए जाते हैं। मलेशिया में *ग्लीचीनिया लिनिएरिस* टिन की बहुलता वाले स्थानें में मिलता है। ब्रिटेन में *ड्रायोप्टेरिस* लेड एवं जिंक प्रगालकों द्वारा उत्सर्जित धातुओं की बहुलता वाले स्थानों में मिलता है। ब्रिटेन में *टेरीडियम एक्वीलिनम* सीजियम V एवं स्ट्रामियम V की बहुलता वाले स्थानों में पाये जाते हैं। *टेरिस विटाटा* को सड़क यातायात प्रदूषण के मापने में प्रयोग किया जा सकता है।

रंजक के रूप में : पर्णोद्भिदों का उपयोग रंजक के रूप में बहुत समय पहले से होता आ रहा है। हवाई में *ओडोंटोसोरिया चाइनेंसिस* के प्रकंद के कार्टेक्स का उपयोग लाल रंग के रंजक बनाने में होता है। *टेरीडियम एक्वीलिनम* पूरे विश्व में रंजक पौधे के रूप में जाना जाता है। *इक्वीसिटम सिलवेटिकम* के ताजे या सूखे तने का उपयोग भूरा एवं पीला रंजक बनाने में किया जाता है। *लाइकोपोडियम अल्पिनम* के बीजाणु का उपयोग लकड़ी के सामानों को रंगने वाले रंजक बनाने में करते हैं।

रेशे के रूप में : विश्व के अनेको भागों में पर्णोदिभदों का उपयोग रेशे के रूप में किया जाता है। भारत में इसका प्रयोग प्रमुखता से टोकरियों को सजाने में किया जाता है। *एडिएंटम पिडेटम* एवं *पिटीरोग्रामा ट्राइएगुलेरिस* के डंठलों से काली डिजाइन की जाती है। *टेरिडियम* के प्रकंद से बुनाई में भूरे रंग की एवं *वुडवर्डिया फिम्ब्रिएटा* के तने से लाल रंग की चित्रकारी करते हैं। *डाइक्रेनोप्टेरिस लिनिएरिस* के तनों का उपयोग चटाई, मछली जाल, कुर्सी तल, टोपी, टोकरी, बेल्ट एवं कोष्ठ (Pouch) बनाने में करते हैं। *लाइकोपोडियम* के डंठलों, प्रकंदो या पूरे पौधे पर पाये जाने वाले रेशों से मछली जाल, टोपी, टोकरी इत्यादि बनाते हैं।

फ्लेवर, सुगंध एवं तेल के रूप में : *एडिएंटम कैपिलस–वेन्रिस* को पेय पदार्थ में फ्लेवर देने में प्रयोग करते हैं। टिंक्चर बालों के टॉनिक एवं अल्कोहलिक पेय पदार्थो के निर्माण में प्रयोग होता है। *पॉलीपोडियम वुल्गेर* का प्रयोग तम्बाकू में फ्लेवर देने में करते हैं। *एंजियोप्टेरिस इवेक्टा* एवं *पॉलीपोडियम फाइमेटोड्स* अपने सुगन्धित तैलीय पदार्थ के कारण दक्षिणी उपद्वीपों में गरी को सुगंध देने में प्रयोग किये जाते हैं। *लैस्टेरिया क्रिस्टा* साबुन के निर्माण में प्रयोग होता है।

वाणिज्य में : *एडिएंटम लुनुलेटम, एडिएंटम वेनुरटम* एवं *एडिएंटम कैपिलस–वेन्रिस* को पैरोसास (Paroshass) व्यवसायिक नाम से हैदाराबाद व्यवसायिक जोन में लगभग 70 रू. प्रति किग्रा. बेचा जाता है। *एडिएंटम लुनुलेटम* को हंसाराजा एवं हमसपादी के व्यवसायिक नाम से भी जाना जाता है। *एक्टीनोप्टेरिस रेडियाटा* का व्यापार मदुराइ जोन में मेईकाल के नाम से करते हैं।

जैव उर्वरक के रूप में : आकार में छोटा, जलीय एवं मच्छर फर्न के नाम से विख्यात *एजोला*, नीलरहित शैवालों को रखने के कारण दक्षिण एशिया का महत्वपूर्ण पौधा बन गया है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा ये भूमि की उर्वराशक्ति को बढ़ाते हैं तथा भविष्य में यह जैव उर्वरक के विकल्प के रूप में प्रमुखता से उभर सकते हैं।

बागवानी में : पर्णोद्भिदों का उपयोग उद्यानों की शोभा बढ़ाने में एवं घरों में सजावट के लिए इंडोर पौधों के रूप में करते हैं। *एडिएंटम* एवं *नेफ्रोलेपिस* की प्रजातियों के प्रपर्ण प्रमुख रूप से पुष्पगुच्छ आदि के लिए प्रयुक्त हो रहे हैं।

पर्णोद्भिद इस सृष्टि में पायी जाने वाली जैव-विविधता में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वैसे तो यह व्यवहारिक रूप से उद्योग जगत में उतना प्रभावशाली स्थान नहीं रखते लेकिन भविष्य में कुछ क्षेत्रों विशेषकर औषधियों, भोज्य पदार्थो, जैव उर्वरक एवं प्रदूषण की निगरानी करने में एक विकल्प के रूप में उभर सकते हैं। परंतु विडंबना यह है कि इन दिनों बढ़ती मानव गतिविधियों विशेष रूप से वनों के कटाव तथा प्राकृतिक आपदाओं के कारण बहुतेरी प्रजातियां संकटग्रस्त हो रही हैं। एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में पर्णोदिभदों की कुल प्रजातियों की लगभग 10 प्रतिशत् संकटग्रस्त हैं। वर्तमान में इन संकटग्रस्त प्रजातियों का संरक्षण हमारी प्राथमिकता है जिससे कि हम अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए इस अमूल्य पर्णोद्भिद संपदा को सुरक्षित रख सकें।

———

एजोला – एक बहूपयोगी जलीय पर्णांग

बृजेश कुमार एवं हरीश चन्द्र पाण्डे
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

एजोला एक जलीय पर्णांग है यह एजोलेसी परिवार का एकल वंशीय सर्वव्यापी पौधा है, जो सम्पूर्ण विश्व में पाया जाता है। पूरे विश्व में इसकी कुल 7 प्रजातियां पायी जाती हैं, वहीं भारत में इसकी केवल दो प्रजातियां *एजोला इम्ब्रीकेटा* व *एजोला पिन्नाटा* पायी जाती हैं। इस पर्णांग को इसके सामान्य नामों जैसे मास्क्यूटो फर्न, डकबीड फर्न, फेयरी मॉल, आदि नामों से भी जाना जाता है। (छायाचित्र : जलीय पर्णांग – एजोला)

एजोला शब्द ग्रीक भाषा का शब्द है जो दो शब्दों एजो और ओलिओं से मिलकर बना है, जिसका अर्थ ''सूखे द्वारा मृत'' होता है। सम्भवतः इसे यह नाम इसकी जल की कमी के प्रति तीव्र संवेदनशीलता होने के कारण दिया गया।

जलीय पर्णांग – एजोला

एजोला एक स्वतंत्र प्लावक पर्णांग है, जो तालाबों, नदियों, झीलों तथा लाल पोखरों आदि में बड़ी प्रचुरता से पाया जाता है। यह जल की सतह पर अपने गुलाबी – हरे रंग के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है। यह दिखने में मॉस गैमीटोफाइट के समान होता है और जल की सतह पर फैला रहता है। इसका अवयस्क पौधा नीले–हरे रंग का होता है, जो वयस्क होने पर लाल रंग का हो जाता है।

एजोला का पौधा छोटा होता है, तथा जड़, तना एवं पत्तियों में बंटा रहता है। इसका तना समानान्तर एवं मुक्त शाखित होता है। इसकी निचली सतह से अनेक अपस्थानिक जड़ें निकलती हैं, जो जल में डूबी रहती हैं। तना पत्तियों से पूरी तरह ढका रहता है। इसकी पत्तियां शल्कों की तरह होती हैं, तथा एक दूसरे से एकान्तर क्रम में लगी रहती हैं। इन घनी पत्तियों के बीच छोटे-छोटे स्थान होते है, जिनमें वायु भरी होती है, जिससे इसे तैरने में सहायता मिलती है। पत्तियां छोटी होती हैं एवं दो कोष्ठों में बँटी रहती हैं। इसका पृष्ठ कोष्ठ हरा, वायवीय एवं मांसल होता है, इसकी कोशिकाओं में प्रकाश–संश्लेषी वर्णक पाये जाते हैं। इस कोष्ठ के अन्दर अनेक कोष्ठीकायें होती हैं जिनमें श्लेष्म भरा होता है। इन कोष्ठीकाओं में अनेक पतली तन्तु के समान संरचनायें बिखरी हुयी पायी जाती हैं। यह तन्तु समान संरचनायें नीले हरित शैवाल होता है, जिसे हम *एनाविना एजोली* के नाम से जानते हैं। जबकि अधर कोष्ठ पतला एवं रंगहीन होता है, एवं जल में डूबा रहता है।

एजोला का जीवन चक्र

एजोला में जनन मुख्यतः कायिक प्रवर्धन विधि द्वारा होता है, जिसमें प्रत्येक शाखा के आधार पर मौजूद विलगन परतों से कोशिकायें विखण्डित होकर नये पादपों को जन्म देती हैं। इस विधि द्वारा प्रजनन अनुकूल परिस्थितियों में होता है, एवं काफी तीव्र गति से होता है, सामान्य से लगभग तीन गुना तीव्र।

इसके अतिरिक्त एजोला प्रतिकूल परिस्थितियों में लैंगिक विधि द्वारा भी जनन करता है। यह एक विषम बीजाणुक पर्णांग है, जिसमें दो तरह के बीजाणु, गुरू बीजाणु एवं लघु बीजाणु पाये जाते हैं। ये बीजाणु अलग-अलग

बीजाणु धानियों में विकसित होते हैं, जिन्हें क्रमशः लघु बीजाणु धानी एवं गुरु बीजाणु धानि कहते हैं। ये बीजाणु धानियां अलग-अलग बीजाणु फलिकाओं में पायी जाती हैं, ये बीजाणु फलिकायें दिखने में असमान होती हैं। लघु बीजाणुफलिका आकार में वड़ी होती है, वहीं गुरु बीजाणु फलिका का आकार छोटा होता है।

लघु बीजाणुधानियों में 16-32 लघु बीजाणु पाये जाते हैं। ये बीजाणु मिलकर 3-10 पिण्ड समान जटिल संरचना का निर्माण का निर्माण करते हैं, जिसे मैसुली कहते हैं। इन मैसुली के पूर्ण रूप से विकसित होने पर अनेक कशाभिक पुमणुओं का जन्म होता है, यही पुमणु आगे चलकर निषेचन प्रक्रिया में भाग लेते हैं।

गुरु बीजाणु धानी में केवल एक ही गुरु बीजाण्ड का पूर्ण विकास होता है। यह बीजाण्ड परिपक्व होने पर जल के अन्दर अंकुरित होकर प्रोथैलस का निर्माण करता है, जिसमें आगे चलकर स्त्रीधानी का विकास होता है। इस स्त्रीधानी में एक अण्ड कोशा होती है, जिसे कशाभिक पुमणु निषेचित करता है। निषेचन के फलस्वरूप भ्रूण का निर्माण होता है, जो विकसित होकर वयस्क बीजाणुद्भिद् पादपकाय का निर्माण करता है।

नील-हरित शैवाल एनाबिना एजोली

एनाबिना एजोली एक प्रोकैरियोटिक नील-हरित शैवाल है, जो एजोला के पृष्ठ कोष्ठ में मिलने वाले श्लेष्म कोष्ठों में पाया जाता है। यह दिखने में मोती की माला के सदृश लड़ियोनुमा संरचना की तरह लगता है। इन संरचनाओं को ट्राइकोम या फिलामेन्ट कहते हैं, प्रत्येक ट्राइकोम एक श्लेष्मीय आवरण से घिरा रहता है। प्रत्येक ट्राइकोम अनेक गोल एवं अण्डाकार कोशिकाओं का बना होता है। ये कोशिकायें एक दूसरे से सिरे पर जुड़ी रहती हैं। ट्राइकोम में सामान्यतः तीन प्रकार की कोशिकायें पायी जाती हैं–

(अ) कायिक कोशा :– ये सामान्य कोशिकायें होती है, इनकी कोशा भित्ति पतली होती है, इसके भीतर कोशा द्रव्य भरा होता है, जिसमें प्रकाश संश्लेषी वर्णक फाइटोसायनिन एवं क्लोरोफिल पाये जाते हैं।

(ब) एकाइनीट :– ये परिवर्तित कायिक कोशिकायें होती हैं, जिनका निर्माण विषम परिस्थितियों में होता हैं। इनकी कोशा भित्ती मोटी होती है एवं इसमें काफी मात्रा में संचित भोज्य पदार्थ पाया जाता है।

(स) हेटरोसिष्ट : – ये विशाल बड़ी ढोलकनुमा कोशिकायें होती हैं जो प्रायः अन्तर्निविष्ट होती हैं, परन्तु कभी-कभी ये शीर्षस्थ स्थित पर भी पायी जाती हैं। प्रत्येक कोशिका के सिरों पर दो ध्रुवीय छिद्र होते है। अनेक प्रयोगों में यह ज्ञात हुआ है कि इन कोशिकाओं में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता पायी जाती है जो वायुमण्डल की मुक्त अक्रिय नाइट्रोजन को उसके यौगिकों जैसे अमोनिया में बदल देते हैं।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण

एनाबिना एजोली वायुमण्डल की मुक्त निष्क्रिय नाइट्रोजन अणुओं को विकर नाइट्रोजिनेज की सहायता से अमोनिया में परिवर्तित कर देता है, अमोनिया का प्रयोग बाद में विभिन्न नाइट्रोजनी कार्बनिक अणुओं जैसे प्रोटिन, विकर, अमीनों अम्लों आदि के निर्माण में होता है।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण की इस प्रक्रिया में कुल 12 ए. टी. पी.ऊर्जा अणु खर्च होते हैं। ए. टी. पी. ऊर्जा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा प्राप्त होती है।

एजोला एवं एनाबिना एजोली के बीच सहजीवी सम्बन्ध

सहजीवी सम्बन्ध ऐसा सम्बन्ध है, जिसमें पादप/जीव जातियां जीवित रहने के लिए एक-दूसरे पर आश्रित होती हैं। पादपों में सहजीविता का सबसे सामान्य उदाहरण लाइकन है जिसमें शैवाल एवं कवक परस्पर एक साथ रहते हैं। शैवाल कवक को भोजन देता है इसके बदले में कवक शैवाल को जल एवं आवश्यक पोषक तत्व देता है। सहजीविता के अन्य उदाहरणों में लेग्यूमिनेसी कुल के पौधों की जड़ों में राइजोबियम जीवाणु का पाया जाना, हरितोद्भिद् *एन्थोसिरॉस* के थैलस में नॉस्टॉक एवं *साइकस* की कोरालॉयड जड़ों में एनाबिना नील हरित शैवालों का पाया जाना आदि हैं।

इसी क्रम में एजोला एवं एनाबिना भी आपस में पारस्परिक सहजीविता प्रदर्शित करते हैं। जिसमें एजोला एनाबिना

को आश्रय देता है, एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण हेतु आवश्यक ऊर्जा उपलब्ध कराता है। इसके बदले में एनाबिना एजोला को नाइट्रोजन उपलब्ध कराता है, जो उसकी वृद्धि में सहायक होती है।

सहजीविता का यह सम्बन्ध काफी पुराना है, विश्व में पायी जाने वाली एजोला की सभी प्रजातियों में एनाबिना एजोली का पाया जाना इनके सम्बन्धों की मजबूती बताता है।

एजोला के उपयोग :

(अ) धान एवं अन्य फसलों के लिये जैव उर्वरक के रूप में –

एजोला के जैव उर्वरक के रूप में प्रयोग करने के लिये धान की फसल सर्वाधिक उपयुक्त होती है, क्योंकि दोनों ही जल भराव की दशा में अच्छी वृद्धि करते हैं। एजोला का धान की फसल में जैव उर्वरक के रूप में प्रयोग सबसे पहले चीन एवं वियतनाम वासियों के द्वारा किया गया था। एजोला को कृषि के क्षेत्र में जैव उर्वरक के रूप में प्रयोग को कई देशों द्वारा जिनमें भारत, फिलीपीन्स, थाईलैण्ड, यू. एस. एस., श्रीलंका आदि शामिल, है, ने मान्यता दी है।

एजोला के जैव उर्वरक के रूप में तीन तरीकों द्वारा प्रयोग किया जा सकता है–

(क) मोनोक्रापिंग – इस विधि में एजोला को मुख्य फसल को बोने से पहले ही खेतों में उगा कर उसे खेतों में दबा दिया जाता है, जिससे मृदा की उर्वरता बढ़ जाती है। इस विधि में एक समस्या यह आती है कि धान के पौधों के पूर्ण विकसित होने तक नाइट्रोजन की उपलब्धता ठीक ढंग से नहीं हो पाती है।

(ख) इण्टरक्रापिंग – इस विधि को द्वयउपजी विधि भी कहते हैं, एजोला को धान की फसल के साथ साथ उगाया जाता है, जिससे शुरुआती वृद्धि को छोड़कर शेष समय नाइट्रोजन की उपलब्धता बनी रहती है।

(ग) मिक्सड क्रापिंग – इस विधि में पहले से कल्चर किये गये या प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले एजोला को एकत्र कर के खेतों में मुल्चिंग प्रक्रिया द्वारा दबा दिया जाता है, जिससे मृदा में नाइट्रोजन की उर्वरता बढ़ जाती है, तथा उसके पश्चात धान के पौधों को रोप कर उसके साथ-साथ एजोला को भी उगाया जाता है जिससे नाइट्रोजन की उपलब्धता बराबर बनी रहती है, जो कि फसल के परिपक्व होने तक फसल का पोषण करती है।

एजोला की इस उपयोगिता को विभिन्न वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा सिद्ध किया गया है। परीक्षणों में यह पाया गया है कि एजोला को धान की फसल के साथ उगाने पर उसकी उत्पादकता में 14-40 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है। मिक्सड क्रापिंग विधि द्वारा एजोला का प्रयोग जैव उर्वरक के रूप में करने पर मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा 50 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।

(ब) मृदा की उर्वरता एवं अन्य मृदीय गुणों को बढ़ाने में –

एजोला में नाइट्रोजन, फासफोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, आदि तत्वों की मात्रा सामान्य से अधिक होती है : नाइट्रोजन 2.5-3.5, फासफोरस 0.15-1.00, पोटेशियम 0.25-5.50, कैल्शियम 0.45-1.25, मैग्नीशियम 0.25-0.50, सल्फर 0.20-0.75, सिलिका 0.15-3.50, सोडियम 0.15-1.25, क्लोरिन 0.50-0.75, एल्युमिनियम 0.04-0.50, आइरन 0.04-0.50, मैंगनीज 60-2500, कॉपर 2-250, जिंक 25-750 ।

एजोला का हरी खाद या जैविक खाद के रूप में प्रयोग करने पर इसमें पाये जाने वाले तत्वों के मृदा में मिल जाने से मृदा की उर्वरता में काफी वृद्धि हो जाती है, जिसके फलस्वरूप मृदा में कई रासायनिक एवं भौतिक परिवर्तन होते है जिससे मृदा में जीवाणुविक क्रियायें तीव्र हो जाती हैं। इससे मृदा की जल ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि होती है, तथा भूमि काफी पैदावार वाली हो जाती है।

विभिन्न प्रयोग में यह पाया गया है कि यदि ताजे एजोला को 12, 18 टन/है. की दर से मृदा के साथ मिलाया जाता है तो उसकी जल संग्रहण क्षमता एवं अमोनियम, नाइट्रोजन, कैल्शियम, मैग्नीशियम आदि तत्वों की मात्रा में काफी वृद्धि हो जाती हैं। आजकल विभिन्न देशों में एजोला की हरी खाद को इसके प्रचलित नये नाम 'एजो-फर्ट' से भी जाना जाता है।

(स) पालतू पशुओं के चारे के रूप में –

एजोला में प्रोटिन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन्स, अमीनो अम्ल आदि काफी अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। शुष्क भार विश्लेषण के आधार पर विभिन्न यौगिकों की मात्रा इस प्रकार है : राख 10.00, वसा 3.0-3.5, प्रोटिन 20-25, घुलनशील शर्करा 3.0-3.5, स्टार्च 6.0-6.5, क्लोरोफिल 'ए' 0.25-0.50 ।

इस प्रकार स्पष्ट है उपयोगी आवश्यक यौगिकों की अधिक मात्रा होने के कारण एजोला को विभिन्न पालतू पक्षी एवं जानवरों जैसे सुअर, बकरी, गाय, भैंस, मछली, मुर्गी आदि को चारे के साथ एक पूरक आहार के रूप में दिये जाने पर, प्रशिक्षणों में यह पाया गया कि जानवरों में 10-30 प्रतिशत तक की भार में वृद्धि होती है, उसी प्रकार दूध देने वाले पशुओं में 10-32 प्रतिशत तक की दूध उत्पादन की वृद्धि पायी गयी है।

(द) मनुष्यों द्वारा आहार के रूप में –

एजोला में विभिन्न पोषक तत्वों की समुचित मात्रा मिलने के कारण कुछ देशों जैसे–जापान, चीन, फिलीपीन्स आदि में इसे आहार सामान्यतः सूप या सलाद, के रूप में प्रयोग किया जाता है।

(च) मच्छरों के फैलाव को रोकने/नियन्त्रित करने में –

एजोला जल स्रोतों की सतह पर एक मोटी परत के रूप में फैल जाता है, और मच्छरों (एनाफेलीस एवं क्यूलेक्स) के जनन एवं वृद्धि की प्रक्रिया को रोक देता है। जिससे मच्छरों के फैलाव को रोकने में मदद मिलती है। विभिन्न परीक्षणों में यह पाया गया है कि जल-स्रोतों जैसे तालाब, झील, नदी, आदि की सतह पूरी तरह से एजोला द्वारा ढकी होने पर मच्छरों की जनसंख्या वृद्धि में 90 प्रतिशत तक की कमी पायी गयी है।

(छ) दूषित जल के शुद्धिकरण में–

एजोला में फाइटोरिमीडियेशन की प्रक्रिया द्वारा दूषित स्रोतों से भारी धातुओं जैसे – कॉपर, आइरन, निकिल जिंक इत्यादि को दूर करने की क्षमता पायी जाती है। एजोला को यदि लेम्ना के साथ मिलाकर कल्चर किया जाता है तो यह काफी हद तक प्रदूषकों (विशेषकर भारी धातुओं) को दूर कर, जल को साफ करता है।

(ज) जैव गैस उत्पादक के रूप में–

एजोला अवशेष को गोबर के साथ मिलाकर उसका उपयोग बायो गैस उत्पादन के लिये करने पर उत्पादित मीथेन गैस की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

(झ) खरपतवार के नियंत्रण में –

एजोला की परत को विभिन्न प्रकार के खरपतवार जैसे यूट्रीकुलेरिया, इर्कोनिया, सेजीटेरिया, सिप्रस, कारा नीटेला, हाइग्रोफिला आदि के वृद्धि नियंत्रक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

(य) मॉडल पादप के रूप में –

आज विश्व भर में हो रहे विभिन्न जैव तकनीकी परीक्षणों में एजोला को माडल पादप के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। इसका प्रमुख कारण इसमें पाये जाने वाले नील हरित शौवाल की जीनिक संरचना में नाइट्रोजन जीन का पाया जाना है। इस जीन के कारण ही इस शैवाल में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता का विकास हुआ है।

एजोला इस पृथ्वी के लिए ईश्वर द्वारा प्रदत्त एक प्राकृतिक वरदान है, लेकिन अभी इसका व्यापक रूप से प्रचार प्रसार न हो पाने के कारण इसे उचित पहचान नहीं मिल पायी है। अतः हमें इस दिशा क्ई सार्थक कदम उठाने होंगे जिससे यह जन सामान्य कृषकों के बीच लोकप्रियता हासिल कर सके।

———

भारत में सिंबीडियम की प्रजातियों का उपयोग एवं संरक्षण

राजीव गोगोई एवं सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

सिंबीडियम (Cymbidium) आर्किडेसी कुल का प्रमुख वंश है। इसके सदस्य अपने अति आकर्षक पुष्पों जो कि आकार में वृहद एवं दीर्घायु होते हैं के लिए जाने जाते हैं। इन्हीं गुणों के कारण ये वाणिज्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

वंश सिंबीडियम की खोज 1799 मे स्वार्ट्ज ने की थी। वर्तमान में इस वंश की विश्व मे लगभग 44 प्रजातियां ज्ञात हैं जो कि उत्तर में पश्चिमोत्तर भारत से लेकर चीन एवं जापान तक, दक्षिण मे मलेशिया द्वीप पुंज से लेकर उत्तरी एवं पूर्वी आस्ट्रेलिया तक पायी जाती हैं। कुछ प्रजातियों जैसे कि *सिंबीडियम एलोयफिलम* को छोड़कर इनकी अधिकांश प्रजातियां सामान्यतः उंचाई वाले स्थानों (विशेषकर 1000 मी.) में मिलती हैं। उत्तरी भारत से यह हिमालय पर्वतीय क्षेत्र में निम्न उंचाई वाले क्षेत्रों (700 मी.) से लेकर 2,500 मी. तक उंचाई पर पाए जाते हैं। इनमें से अनेको हिमालयन प्रजातियां पूर्व में म्यान्मार एवं दक्षिण पूर्वी चाइना में भी मिलती हैं।

वर्तमान भारतवर्ष में सिंबीडियम की लगभग 25 प्रजातियां पायी जाती हैं जो कि पूर्वी हिमालय, उत्तरी पूर्वी राज्यों, उत्तरी पश्चिमी भारत एवं प्रायद्वीपीय भारत में प्राकृतिक रूप से मिलती हैं। इसकी सर्वाधिक 20 प्रजातियां अरूणाचल प्रदेश में मिलती हैं वहीं पर सिक्किम 19 प्रजातियों के साथ दूसरा सबसे बड़ा राज्य है (तालिका-1)

सिंबीडियम प्रजातियां सामान्यतः स्वपोषी, स्थलीय, अधिपादपीय अवस्था में या चट्टानों पर पायी जाती है। *सिंबीडियम मैकोराइजॉन* एकमात्र ऐसा सदस्य है जो कि मृतोपजीवी है। इसके पौधे पुष्पन समय को छोड़कर पूर्णतः मृदा तल के नीचे दबे होते हैं। इस वंश के पौधे प्रचुर शारीरिक विविधता प्रदर्शित करते हैं। कुछ प्रजातियों की पत्तियां आकार में बड़ी होकर लताओं का निर्माण करती हैं। अधिकांश प्रजातियों की जड़ें मोटी (8 मि. मी.) होती हैं जो कि मोटी स्पंज वाली सफेद विलामेन द्वारा ढकी होती हैं। इनके तने सीधे खड़े हुए फूल कर के आभासी कंद का निर्माण करते हैं जो कि प्रायः चपटे एवं तने के आधार की तरफ लघुकृत होते हैं। नूतन आभासी कंद लघु प्रकंदों पर वार्षिक रूप से आच्छादित होते हैं। प्रत्येक नूतन आभासी कंद पर 3-12 द्विशाखित पत्तियां आरोहित होती हैं। *सिंबीडियम मैकोराइजॉन* की पत्तियां शल्कों में परिवर्तित

सिं० इरीडिवाइडिस

सिं० टिग्रिएनम

सिं० लोइएनम

सिं० ट्रसिएनम

होती हैं। पुष्प डंठल आवरणों द्वारा ढका होता है। इनके पुष्पक्रम अशाखित, उर्ध्व या लटके हुए होते हैं। प्रायः एक या दो पुष्पक्रम आभासी कंद के आधार से लगे होते हैं। *सिंबीडियम लैंसीफोलियम* में पुष्पक्रम का उद्‌भव आभासी कंद के केन्द्रीय पर्णसंधि से होता हैं।

सिंबीडियम के पुष्प सामान्यतः 3-5 सेमी. के होते हैं। प्रत्येक पुष्प एक अधोवर्ती जायांग एवं सूक्ष्म पुष्प डंठल पर स्थित होता है जिनको कि एक दूसरे से अलग करना अत्यन्त कठिन है। प्रत्येक पुष्प पर एक पृष्ठ वाह्यदल, दो पार्श्व वाह्यदल एवं दो स्वतंत्र दल होते हैं जो कि स्तम्भ पर फैले या ढके हुए होते हैं। अधर स्तम्भ के आधार के पास लटका होता है। स्तम्भ शिखर की ओर सशक्त रूप से पंखयुक्त होते हैं। इसके पुंकेशर दो पोलिनिया रखते हैं। वर्तिका चिपचिपी एवं पुंकेशर के ठीक पीछे लगी होती है।

प्रस्तुत लेख मे सिंबीडियम प्रजातियों के उपयोगों एवं संरक्षण के बारे में उल्लेख किया गया है :

सिंबीडियम प्रजातियों का बागवानी में उपयोग : पूरे विश्व में इनकी अनेकों संकर प्रजातियां विकसित की गयी हैं जिनकी पुष्प बाजार मे अच्छी मांग है। इन संकर प्रजातियों के अतिरिक्त इनकी अनेको प्रजातियां जैसे *सिं. डेवोनिएनम, सिं. इर्बनिएम, सिं. एलिगेन्स, सिं. गेमिएनम, सिं. हुकेरिएनम, सिं. इरीड्‌वाइडिस, सिं. लोइएनम, सिं. मैक्रेराइजॉन, सिं. मास्टर्साई* आदि आर्किड उत्पादकों के बीच लोकप्रिय हैं।

सिंबीडियम प्रजातियों का औषधि के रूप में उपयोग : इनकी अनेको प्रजातियां औषधि रूप में प्रयोग की जा रही हैं। उत्तरी भारत में *सिं. मैक्रेराइजॉन* के राइजोम का उपयोग श्वेद उत्तेजक (diaphoretic) ज्वर को कम करने में (febrifuge) एवं फोड़े के इलाज में करते हैं। *सिं. एन्सीफोलियम* का उपयोग आयुर्वेदिक दवाओं में तेल जो कि ट्यूमर के इलाज में प्रयुक्त होता है के अवयव के रूप में करते हैं। इसको अदरक के साथ मिलाकर बने चूर्ण का घोल बनाकर पीने से उल्टी, डायरिया, ऑखों की कमजोरी, मूर्च्छा रोग एवं लकवा आदि रोगों में आराम मिलता है।

सिंबीडियम की भारतीय प्रजातियों पर संकट एवं संरक्षण : भारत वर्ष में सिंबीडियम की पायी जाने वाली 25 प्रजातियों में से *सिं. कोचलिएर, सिं. दयानम, सिं. डेवोनिएनम, सिं. एरिथ्रिएम, सिं. इंसिग्ने, सिं. टिग्रिएनम, सिं. इर्बनिएम* आदि को विरल (rare) एवं *सिं. ह्वाइटी* एवं *सिं. हुकेरिएनम* को अतिसंकटग्रस्त (endangered) तथा *सिं. इरीड्‌वाइडिस* को संकटग्रस्त (threatened) माना गया है। सिंबीडियम की प्रजातियों पर मडराये संकट को देखते हुए भारतीय

वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता एवं इसके परिमण्डल, राजकीय वन अनुसंधान संस्थान, ईटानगर, टी. बी. जी. आर. आई जैसे अनेको संस्थान इनके संरक्षण के लिए पर्याप्त कदम उठा रहे हैं तथा अपनी संरक्षण गतिविधियों में शामिल कर रहे हैं। इन्ही तथ्यों को ध्यान में रखते हुए भारतीय सर्वेक्षण; पूर्वी परिमंडल द्वारा *सिं. डेवोनिएनम, सिं. इर्बनिएम, सिं. एरिथ्रियम, सिं. इरीड्वाइडिस, सिं. लैंसीफोलियम, सिं. लोइएनम, सिं. मैकोराइजॉन, सिं. मास्टर्साई, सिं. साइनेन्से, सिं. ट्रेसिएनम, सिं. टिग्रिएनम* आदि प्रजातियों का संरक्षण परिसर के आर्किडेरियम तथा प्रायोगिक उद्यान बड़ापानी में किया जा रहा है।

तालिका–1 : सिंबीडियम वंश का भारत में वितरण

प्रजातियां	अरुणाचल प्रदेश	असम	मेघालय	नागालैंड	मणिपुर	मिजोरम	त्रिपुरा	सिक्किम	प्रायद्वीपीय भारत	उ. प्र.
सिं. एलोयफिलम	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+
सिं. बाइकालर	+	–	–	–	–	–	–	+	+	+
सिं. कोचलिएर	+	–	–	+	–	–	–	+	–	–
सिं. सिप्रीफोलियम	+	–	+	+	+	+	–	+	–	+
सिं दयानम	+	+	–	–	–	–	–	+	–	–
सिं डेवोनिएनम	+	–	+	–	–	+	–	+	–	+
सिं. इर्बनिएम	+	–	–	+	+	+	–	+	–	+
सिं. एलिगेन्स	+	+	+	+	+	+	–	+	–	+
सिं. एरिथ्रिएम	–	–	–	–	–	–	–	+	–	–
सिं. एन्सीफोलियम	+	–	+	–	–	+	–	+	–	–
सिं. गेमिएनम	+	–	–	–	–	–	–	+	–	–
सिं. ग्वेरिगाई	+	–	–	–	–	–	–	–	–	–
सिं. हुकेरिएनम	+	+	–	–	–	+	–	+	–	+
सिं. इंसिग्ने	–	–	+	–	+	–	–	–	–	–
सिं. इरीड्वाइडिस	+	–	+	+	+	+	–	+	–	+
सिं लैंसीफोलियम	+	+	+	–	+	+	–	+	–	–
सिं. लोइएनम	+	–	+	+	–	–	–	–	–	+
सिं. मैक्रोराइजॉन	+	+	+	+	–	+	–	+	–	+
सिं. मास्टर्साई	+	+	+	+	+	+	–	+	–	–
सिं. मुनरोनिएनम	+	–	+	–	–	–	–	+	–	–
सिं. पेरिसाई	+	–	–	–	–	–	–	–	–	–
सिं. साइनेन्से	+	–	+	–	–	–	–	–	–	–
सिं ट्रेसिएनम	–	–	+	–	–	–	–	+	–	–
सिं. टिग्रिएनम	–	–	–	+	+	–	–	–	–	–
सिं. हवाइटी	–	–	–	–	–	–	–	+	–	–

भारत के ''ज्वेल आर्किड''

अभिषेक भट्टाचार्जी, एच० जे० चौधरी एवं दीनेश्वर कुमार साह
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

ज्वेल आर्किड वास्तव में आर्किड वंश का आभूषण हैं। इसे ज्वेल आर्किड इसके खूबसूरत पत्तों के कारण कहा जाता है जो संगमरमर जैसे चमकदार रंग-बिरंगे तथा रेखांकित होते हैं। ये रेखाएं पत्तों में एक समान जालाकार आकृति के रूप में अल्पना की तरह सजी होती हैं। पत्ते चमकदार होने के कारण अलग अलग कोण से देखने पर भिन्न भिन्न रंगों का आभास उत्पन्न करते हैं। ज्वेल आर्किड, आर्किड वंश के किसी खास समूह में नहीं आते बल्कि इसकी बाह्य संरचना के कारण इसे एक खास समूह में रखा जाता है। इस समूह के पौधे शाकिय तथा कोमल होते हैं। इन आर्किडों के प्रकंद तने के समान दिखते हैं तथा तना सामान्यतः समकोण तथा सीधा विकसित होता है। इसमें विशेष प्रकार के परागधानी होते हैं। इस समूह के सदस्यों में बाह्य तौर पर पत्तों, प्रकंद (rhizome), लेबलम (labellum), कलम् (column) और पोलीनेरीयम (pollinarium) के आधार पर विविधता देखी जा सकती है। ये मुख्यतः गर्म आर्द्र उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन में पाए जाते हैं जहाँ ये वृक्ष की छाया, नम जंगली भूमि या सड़ी गली पत्तियों के मध्य विकसित होते हैं। ये खुले घास के मैदानों में सामान्यतः नहीं होते हैं। वर्गीकरण के दृष्टिकोण से इन्हें उपजाति स्पाईरन्थोयडी (Spiranthoideae), संवर्ग क्रेनिचिडी (Cranichideae) तथा उपसंवर्ग गुडिएरिनी (Goodyerinae) में रखा गया है। भारत में इसकी 23 जातियां, 7 वंशों में पायी जाती हैं जो एनहेनरिया गोपालन (Aenhenrya Gopalan), एनक्टोचीलस ब्लूम (Anoectochilus Blume), किरोस्टाइलीस ब्लूम (Cheirostylis Blume), गुडीएरा आर० बी० (Goodyera R. Br.) ओडोन्टोचीलस ब्लूम (Odontochilus Blume), रोमबोडा लिन्ड० (Rhomboda Lindl.) और ज्युक्साईन ब्लूम (Zeuxine Blume) हैं, इसकी 7 जातियां भारत की स्थानिक हैं।

निम्न तालिका भारत में ज्वेल आर्किड की पत्तियों की सज्जा, उनके वितरण तथा वर्त्तमान स्थिति (1977 IUCN Red List of Threatened Plants) को दर्शाती हैं।

पौधे का वैज्ञानिक नाम	पत्तियों की सज्जा	भारत में भौगोलिक वितरण	संरक्षित स्थिति
एनहेनरिया रोटन्डीफोलिया (ब्लाट०) सेथ० कुमार और एफ० एन रास्म० Aenhenrya rotundifolia (Blatt.) Sath. Kumar & F. N. Rasm.	वर्णशिराल (Marmorate)	केरल, तमिलनाडु। भारत का स्थानिक	विलुप्त/संकटग्रस्त Extinct/ Endangered
एनोक्टोचीलस ब्रेविलेब्रिस लिण्ड० Anoectochilus brevilabris Lindl.	जालिकारूपी (Reticulate)	अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम	अनिश्चित Indeterminate
एनोक्टोचीलस इलेटस लिण्ड० Anoectochilus elatus Lindl.	जालिकारूपी	केरल, तमिलनाडु। भारत का स्थानिक	–
एनोक्टोचीलस नरसिम्हणि सुमथि एवं अन्य Anoectochilus narasimhanii Sumathi et al	जालिकारूपी	अण्डमान और निकोबार। भारत का स्थानिक	–
एनोक्टोचीलस निकोबारिकस एन० पी० बालाकर० और चक्र० Anoectochilus nicobaricus N. P. Balakar. & Chakr.	जालिकारूपी	अण्डमान और निकोबार। भारत का स्थानिक	संकटग्रस्त *

गुडीएरा हेमस्लेयाना

एनोक्टोचीलस रोक्सबर्गी (वाल०) लिण्ड० Anoectochilus roxburghii (Wall.) Lindl.	जालिकारूपी	अरूणाचल प्रदेश, असम, हिमाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोराम, नागालैंड, पंजाब, उत्तराखण्ड, सिक्किम, पश्चिम बंगाल	–
एनोक्टोचीलस टेट्राप्टेरस हुक० एफ० Anoectochilus tetrapterus Hook.f.	जालिकारूपी	मणिपुर। भारत का स्थानिक	सुमेद्य Vulnerable
किरोस्टाइलीस फ्लेबेल्लाटा (ए० रिच०) वाइट Cheirostylis flabellata (A. Rich.) Wight	जालिकारूपी	कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु	–
किरोस्टाइलीस पारर्विफोलिया लिण्ड० Cheirostylis parvifolia Lindl.	जालिकारूपी	महाराष्ट्र, तमिलनाडु	–
किरोस्टाइलीस सीडेनफाडेनिआना सेथ०, कुमार और एफ० एन० रास्म० Cheirostylis seidenfadeniana Sath. Kumar & F. N. Rasm.	जालिकारूपी	केरल भारत का स्थानिक	–
गुडीएरा बाइफ्लोरा (लिण्ड०) हुक० एफ० Goodyera biflora (Lindl.) Hook. f.	जालिकारूपी	अरूणाचल प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड	–
गुडीएरा हेमस्लेयाना किंग और पेंटल० Goodyera hemsleyana King & Pantl.	जालिकारूपी	अरूणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल	–
गुडीएरा हिस्पिडा लिण्ड० Goodyera hispida Lindl.	जालिकारूपी	अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, उड़ीसा, सिक्किम, पश्चिम बंगाल	–
गुडीएरा रिकर्वा लिण्ड. Goodyera recurva Lindl.	जालिकारूपी	अरूणाचल प्रदेश, असम, मेघालय	अनिश्चित
गुडीएरा रीपेन्स (एल०) आर. बी. Goodyera repens (L.) R.Br.	जालिकारूपी	अरूणाचल प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, पंजाब, सिक्किम, उत्तराखण्ड, पश्चिम बंगाल	
गुडीएरा स्लेक्टेनडालिआना रिचेन.एफ. Goodyera schlecbtendaliana Rchb. f.	धब्बायुक्त/चित्तीदार Blotched/ Spotted	अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, सिक्किम, पश्चिम बंगाल	–
गुडीएरा विट्टाटा (लिण्ड०) बेन्थ० एक्स हुक० एफ० Goodyera vittata (Lindl.) Benth.ex Hook. f.	मध्यशिरा पट्टियुक्त Band on Midvein	अरूणाचल प्रदेश, सिक्किम, पश्चिम बंगाल	

औडोन्टोचीलस लेनसीओलेटस (लिण्ड०) ब्लूम Odontochilus lanceolatus (Lindl.) Blume	मध्यशिरा पट्टियुक्त	अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैंड, सिक्किम, पश्चिम बंगाल	–
रोमबोडा लेनसीओलाटा (लिण्ड०) ओरमेरोड Rhomboda lanceolata (Lindl.) Ormerod	मध्यशिरा पट्टियुक्त	मेघालय, नागालैंड, सिक्किम, पश्चिम बंगाल	–
रोमबोडा लांगीफोलिया लिण्ड० Rhomboda longifolia Lindl.	जालिकारूपी	सिक्किम	–
ज्युक्साईन गुडिएरॉयडिस लिण्ड० Zeuxine goodyeroides Lindl.	मध्यशिरा पट्टियुक्त	अरूणाचल प्रदेश, असम, नागालैंड, सिक्किम, पश्चिम बंगाल	–
ज्युक्साईन नर्वोसा (वाल० एक्स लिण्ड०) ट्राईमेन Zeuxine nervosa (Wall. ex Lindl.) Trimen	मध्यशिरा पट्टियुक्त	अण्डमान और निकोबार, अरूणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, नागालैंड, उड़ीसा, सिक्किम, पश्चिम बंगाल	–
ज्युकसाईन पलक्रा किंग और पेंटल० Zeuxine pulchra King & Pantl.	मध्यशिरा पट्टियुक्त	अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, सिक्किम। भारत का स्थानिक	विलुप्त/संकटग्रस्त Extinct\ Endangered

ज्वेल आर्किड की कुछ प्रजातियों का उपयोग कई देशों में सब्जी के रूप में भी किया जाता है परन्तु आर्थिक रूप से इनका उपयोग ज्यादातर सजावट के लिए होता है। ज्वेल आर्किड पर्यावरण की दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। बदलता पर्यावरण और बढ़ता प्रदूषण इनके लिए घातक सिद्ध हो रहा है। भूस्खलन, जंगल की आग, झूम कृषि, जंगलों की कटाई इत्यादि ऐसे कारण हैं जो इसके सुन्दर संसार को नष्ट कर रहे हैं।

ज्वेल आर्किड को अगर समय रहते संरक्षित नहीं किया गया तो वह दिन दूर नहीं जब यह इतिहास की विषय वस्तु हो जाएगी। अतः इस अमूल्य ज्वेल आर्किड को वैज्ञानिक तरीके जैसे एक्स सीटू प्रणाली, प्राकृतिक वासस्थान का संरक्षण तथा ऊत्तक संवर्धन विधि द्वारा बचाया जा सकता है।

———

कैक्टस आर्किड

सुशील कुमार सिंह एवं विवेक नारायण सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

कैक्टस आर्किड एक कौतूहल पैदा करने वाला नाम, दो भिन्न समूहों जो कि परस्पर विपरीत लक्षण रखते हैं से मिलकर बना है। इसका वैज्ञानिक नाम ईपीफिल्लम् आक्सीपिटेलम् (Epiphyllum oxypetalum) है। यह कैक्टस समूह का सदस्य है जिसके पुष्पों की सुन्दरता आर्किड कुल के सुन्दर पुष्पों को भी मात देती है इस कारण इसे सामान्य बोलचाल की भाषा में कैक्टस आर्किड कहते हैं तथा यह बागवानी के क्षेत्र में एक विशेष पहचान रखता है।

रात्रिकाल में खिलने वाले इस पौधे के सुन्दर पुष्प श्वेत वर्ण के, 12-20 सेमी. व्यास के, भीनी सुगन्ध वाले होते हैं। इस पौधे की आकारकी व वर्गिकी का अध्ययन करने से ज्ञात हुआ कि यह पौधा कैक्टेसी कुल के ईपीफिल्लम वंश का ऐसा सदस्य है जिस पर कांटे नहीं होते। ग्रीक भाषा में ईपीफिल्लम शब्द का अर्थ है, पत्ती के उपर, अर्थात् एक साधारण व्यक्ति की दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि पौधे की पत्तियों के अग्रभाग से पुष्प निकले हों जो कि एक आश्चर्यजनक बात है। वास्तव में इस कुल के सदस्यों में पत्तियों का सर्वथा अभाव होता है तथा पौधे के उपरी तने चपटे, सिरो पर लहरदार, देखने में बिल्कुल पत्तियों के सदृश्य होते हैं तथा इसकी मुख्य शिरा के अग्रभाग से पुष्प निकलते हैं।

वंश ईपीफिल्लम् मेक्सिको, वेनेजुयेला, ब्राजील, एशिया महाद्वीप व अमेरिका के कैलीफोर्निया प्रांत में पाया जाता है। इस वंश में कुल 19 प्रजातियां हैं जो रात्रिकाल मे खिलती हैं। इसके अतिरिक्त, इनके पुष्पों की सुन्दरता के कारण अनेको संकर प्रजातियां भी बनायी गयी हैं। इसके सदस्य नाइट ब्लूमिंग व क्वीन ऑफ नाइट के नाम से भी जाने जाते हैं।

ईपीफिल्लम आक्सीपिटेलम् का पौधा खड़ा या झुका हुआ, अत्यधिक शाखित होता है। मुख्य तना 1-6 मी० तक लम्बा, त्रिकोणीय, सिरों पर चपटा होता है, द्वितीयक तना चपटा, 30 सेमी. तक लम्बा, 10-12 सेमी. चौड़ा, 3-5 मिमी. मोटा व किनारों पर हल्का कटा फटा होता है। सहपत्र (Bractioles) पतले व 10 मिमी. लम्बे होते हैं। बाह्य परिदल (Outer tepals) लम्बे, नुकीले, 8-10 सेमी. लम्बे हल्के लाल रंग के होते हैं। आंतरिक परिदल (Inner tepals) संख्या में अधिक, लेन्स जैसे, सिरों पर नुकीले, 8-10 सेमी० लम्बे व 2-5 सेमी० चौड़े, श्वेत वर्ण केहोते हैं। पुंकेसर हल्का हरा–सफेद, पतला व कमजोर सा होता है। वर्तिका हल्की हरी-सफेद, .4 मिमी० मोटी, पंखुडियों से लम्बी व सिरे पर बहुपालित होती है। इसका फल तर्कुवत् 8-12 सेमी० लम्बा, गुलाबी–लाल रंग का कोणवत् होता हैं।

इपीफिल्लम् आक्सीपिटेलम् बागवानी हेतु एक महत्वपूर्ण पौधा है जो मई-जून माह में सुगन्धित पुष्प देता है। इसके पुष्प रात्रिकाल में अल्प समय के लिये ही खिलते हैं परंतु इन आकर्षक पुष्पों को बन्द जार में प्रशीतक (फ्रीज) में रखने से एक माह तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इसकी गन्ध मे बेन्जाईल सैलिसेट एक प्रमुख अवयव है। इसे सूर्य का हल्का प्रकाश पसन्द है। छाया में रखने से पुष्प देर से खिलते हैं। प्रारम्भिक वसंत ऋतु में अतिरिक्त प्रकाश उपलब्ध होनें से कलियों के विकास को प्रोत्साहन मिलता है। वैसे इसके लिए 12-28° सेग्रे० का तापमान अनुकूल है, 10° सेग्रे० से नीचे का तापमान हानिकारक है एवं ताप अधिक होने की स्थिति में नमी बढ़ाकर व हवा के उचित निस्तारण द्वारा संतुलन बनाया जा सकता है। हल्की अम्लीय मिट्टी व उसमें कार्बनिक पदार्थो की उचित मात्रा इसे अनुकूल पोषण प्रदान करती है। बागवानी में सरल एवं अपने सुन्दर आकर्षक पुष्पों के कारण यह घरों एवं उद्यानों की शोभा बढ़ाने वाले पौधों की श्रेणी में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

———

रोडोडेन्ड्रान्स – रोचक पौधों का एक समूह

एल० इबेमहल चनू एवं विवेक नारायण सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

हरे भरे सदाबहार पादप व मनोहारी पुष्पों के धारक *रोडोडेन्ड्रान* वंश के सदस्य, पुष्पी पादपों की श्रेणी में विश्व में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। लगभग 1000 प्रजातियों वाले इस वंश की स्थापना महान दार्शनिक लीनियस ने अपनी पुस्तक स्पिसीज प्लैन्टेरम (1753) में की थी। ग्रीक भाषा में रोडो शब्द का अर्थ है, गुलाब व डेन्ड्रान का अर्थ है वृक्ष, अर्थात् गुलाब का वृक्ष क्योंकि रोडोडेन्ड्रान के पुष्प गुलाब की तरह ही आकर्षक होते हैं। यह इरिकेसी (Ericaceae) कुल का ऐसा सदस्य है जो अत्यधिक विस्तृत व विविधता से परिपूर्ण है, तथा उत्तरी गोलार्ध के अधिकतर भागों (शुष्क क्षेत्रों को छोड़ कर) में पाया जाता है। दक्षिणी गोलार्ध में इसका विस्तार एशिया व आस्ट्रेलिया महाद्वीपों में है। हिमालयी क्षेत्रों में इसके जातियों की सर्वाधिक विविधता मिलती है। यह उत्तराखण्ड से लेकर नेपाल तक व सिक्किम से लेकर यूनान व सिचुआन तक पाया जाता है। कुछ उष्णकटिबंधीय प्रजातियां दक्षिण-पूर्वी एशिया व आस्ट्रलिया में भी मिलती हैं। उत्तरी अमेरिका व यूरोप में इनका विस्तार अपेक्षाकृत कम है। दक्षिणी अमेरिका व अफ्रिका में इनकी उपस्थिति संदिग्ध है।

भारत में *रोडोडेन्ड्रान* की लगभग 72 जातियां, 20 उपजातियां व 19 प्रभेद पाये जाते हैं। अरूणाचल प्रदेश में रोडोडेन्ड्रान की सर्वाधिक 61 जातियां, 17 उपजातियां व 12 पभेद मिलती हैं जबकि असम में 27 जातियां, 11 उपजातियां व 10 प्रभेद, हिमाचल प्रदेश में 1 जाति, जम्मू कश्मीर में 3 जातियां, मणिपुर की पहाड़ियों में 5 जातियां, 2 उपजाति व 3 प्रभेद, मेघालय में 2 उपजातियां व 2 प्रभेद, मिजोरम में 3 जातियां, 1 उपजाति, नागालैण्ड में 2 जातियां 3 उपजातियां व 1 प्रभेद, तथा सिक्किम में 27 जातियां, 11 उपजातियां व 10 प्रभेद, तथा तमिलनाडु में 1 जाति पायी जाती हैं।

रोडोडेन्ड्रान एक अत्यधिक विविधता वाला वंश है। इसकी जातियों का स्वभाव शाक, वृक्ष, झाड़ी व अधिपादपीय सभी प्रकार का होता है। इनकी प्रजातियां सदाबहार से पर्णपाती होती हैं। यह लम्बाई में 5-10 सेमी० से लेकर 28-30 मी० तक होते हैं। पत्तियां 1 सेमी० से लेकर 50 सेमी० तक (100 सेमी० रोडोडेन्ड्रान साइनो-ग्राण्डे में) लम्बी होती है। *रोडोडेन्ड्रान जाइगेन्सियम्* (R. giganteum) आकार में सबसे बड़ा व अधिपादपीय *रोडोडेन्ड्रान निवेल* (R. nivale) सबसे छोटे आकार की जाति है। *रोडोडेन्ड्रान अर्बोरियम* लगभग सभी वानस्पतिक क्षेत्रों में पाया जाता है। *रोडोडेन्ड्रान निलागिरिकम* एक मात्र ऐसी जाति है जो केवल दक्षिण भारत में पायी जाती है। रोडोडेन्ड्रान्स की यह विविधता उनके वासस्थान में भी देखने को मिलती है। यह नदियों के किनारे, कच्छभूमि, कटक, वल गलियारों, भृगु, चट्टानों, और गोलारम खुली चारागाहों, निकुंज पर्वत के शीर्ष पर, कभी वृक्ष पर अधिपादपीय अवस्था में समुद्रतल से 600 मी० की ऊँचाई वाले उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों से लेकर 4,900 मी० या अधिक की ऊँचाई वाले शीत क्षेत्रों में पाये जाते हैं। परन्तु 2,700 मी० से 4,000 मी० की ऊँचाई पर इनकी अधिकतर जातियां पायी जाती हैं।

रोडोडेन्ड्रान की पत्तियां गुच्छ रूप में पायी जाती हैं। इनमें पुष्पक्रम स्तवक (फेसिकल) या कोरम्बोस तरह का होता है। पुष्प सब–जयगोमोरफिक, सहपत्र आशुपाती, पुंकेसर की संख्या 5-8 (10) संपुट 5-20, वाल्व पद विदारक होते हैं। रोडोडेन्ड्रान में पुष्प ग्रीष्म काल में मार्च से जुलाई के बीच आरोहित होते हैं। पुष्प देखने में आकर्षक परन्तु सामान्यतः गन्धहीन होते हैं। कुछ प्रजातियां जैसे *रोडोडेन्ड्रान एग्वर्थी, रोडोडेंड्रान्स ग्रिफिथियानम्, रोडोडेंड्रान्स मडेनी, रोडोडेंड्रान्स नुटेली, रोडोडेंड्रान्स स्टिनाउलम्* आदि के पुष्प सुगन्ध वाले होते हैं। भारत में *रोडोडेन्ड्रान* की अनेकों जातियां दुर्लभ व संकटग्रस्त श्रेणी की हैं। ऐसी कुछ जातियों के स्वभाव, संरक्षण स्थिति व प्राप्ति स्थल निम्नवत् है।

1. *रोडोडेंड्रान्स बैलेई (R. baileyi)* : क्षुप, दुर्लभ, सिक्किम, भूटान, तिब्बत।
2. *रोडोडेंड्रान्स बिएनिएनम् (R. beanianum)* : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, म्यानमार।

3. *रोडोडेंड्रान्स बूथी (R. boothi)* : क्षुप, संकटापन्न, अरूणाचल प्रदेश, भूटान, चीन।
4. *रोडोडेंड्रान्स बूलू (R. bulu)* : क्षुप, संकटापन्न, अरूणाचल प्रदेश, चीन।
5. *रोडोडेंड्रान्स कैलोस्ट्रोटम्* उपजाति *रिपेरियम्* (*R. Calostrotum* subsp *riparium*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, चीन, म्यानमार।
6. *रोडोडेंड्रान्स कम्पाइलोगाइनम्* (*R. campylogynum*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, चीन, म्यानमार।
7. *रोडोडेंड्रान्स सिफैलेन्थम* (*R. cephalanthum*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, चीन, म्यानमार।
8. *रोडोडेंड्रान्स सिनाबेरिनम्* उपजाति जैन्थोकोडॉन (*R. cinnabarinum* subsp. *xanthocodon*) : क्षुप, संकटापन्न, अरूणाचल प्रदेश, भूटान, चीन।
9. *रोडोडेंड्रान्स कन्सिनोइडिस* (*R. concinnoides*) : क्षुप, सीमित व संकटग्रस्त, अरूणाचल प्रदेश।
10. *रोडोडेंड्रान्स डलहौजी प्रभेद राब्डोटम* (*R. dalhousiae* var. *rhabdotum*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, भूटान, चीन।
11. *रोडोडेंड्रान्स डेन्ड्रीकोला* (*R. dendricola*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, चीन, म्यानमार।
12. *रोडोडेंड्रान्स एग्वर्थी* (*R. edgeworthii*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, सिक्किम, प० बंगाल, भूटान, चीन, म्यानमार।
13. *रोडोडेंड्रान्स इलियोटी* (*R. elliotii*) : लघु वृक्ष, सीमित व संकटग्रस्त, मणिपुर, नागालैण्ड।
14. *रोडोडेंड्रान्स फार्मोसम्* भेद इन्एक्वेली (*R. formosum* var. *inequale*) : क्षुप, सीमित व संकटापन्न, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड।
15. *रोडोडेंड्रान्स हुकेरी* (*R. hookeri*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, भूटान।
16. *रोडोडेंड्रान्स जोन्सटोनिएनम्* (*R. johnstoneanum*) : क्षुप, सीमित व संकटग्रस्त, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर व मिजोरम।
17. *रोडोडेंड्रान्स कासोएन्स* (*R. Kasoense*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, चीन।
18. *रोडोडेंड्रान्स केन्द्रिकी* (*R. kendrickii*) : लघु वृक्ष या क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, भूटान, चीन।
19. *रोडोडेंड्रान्स मकाबिएनम्* (*R. macabeanum*) : वृक्ष सीमित व दुर्लभ, मणिपुर व नागालैण्ड।
20. *रोडोडेंड्रान्स मडेनी* उपजाति *क्रेसम* (*R. maddenii* subsp. *crassum*) : क्षुप, दुर्लभ, मणिपुर, भूटान, चीन, म्यानमार, वियतनाम।
21. *रोडोडेंड्रान्स* मडेनी् उपजाति *मडेनी* (*R. maddenii* subsp. *maddenii*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, सिक्कम, भूटान चीन।
22. *रोडोडेंड्रान्स मेगाकैलिक्स्* (*R. megacalyx*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, चीन, म्यानमार।
23. *रोडोडेंड्रान्स मेजिरेटम (R. megeratum)* : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, चीन, म्यानमार, तिब्बत।
24. *रोडोडेंड्रान्स मेकोन्जेन्स* (*R. mekongense*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, चीन।
25. *रोडोडेंड्रान्स नेरीफ्लोरम्* उपजाति *फेड्रोपम्* (*R. neriiflorum* subsp. *phaedropum*) : क्षुप, संकटापन्न, अरूणाचल प्रदेश, भूटान, चीन, म्यानमार।
26. *रोडोडेंड्रान्स* निवेल *(R. nivale)* : क्षुप, अधिपादप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, भूटान, चीन, नेपाल।
27. *रोडोडेंड्रान्स नुटाली (R. nuttallii)* : वृक्ष या अधिपादप, क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, भूटान, चीन, म्यानमार।
28. *रोडोडेंड्रान्स* पैपिलेटम् *(R. papillatum)* : क्षुप, या लघु वृक्ष, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, सिक्किम, भूटान, नेपाल।

29. *रोडोडेंड्रान्स पेमाकोएन्सिस (R. pemakoensis)* : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, चीन।
30. *रोडोडेंड्रान्स पेन्डुलम* (*R. pendulum*) : दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, सिक्किम, भूटान, चीन, नेपाल, तिब्बत।
31. *रोडोडेंड्रान्स पोकोफोरम* भेद पोकोफोरम (*R. pocophorum* var. *pocophorum*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, चीन।
32. *रोडोडेंड्रान्स प्रूनीफलोरम* (*R. pruniflorum*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, म्यानमार।
33. *रोडोडेंड्रान्स सन्तापावी* (*R. santapaui*) : क्षुप, अधिपादप, संकटग्रस्त एवं सीमित, अरूणाचल प्रदेश।
34. *रोडोडेंड्रान्स सुबनसिरेन्स* (*R. subansiriense*) : क्षुप या वृक्ष, संकटग्रस्त एवं सीमित, अरूणाचल प्रदेश।
35. *रोडोडेंड्रान्स सक्कोथी* (*R. succothii*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, भूटान।
36. *रोडोडेंड्रान्स टनस्टाइलम* (*R. tanastylum*) : क्षुप या वृक्ष दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, चीन, म्यानमार।
37. *रोडोडेंड्रान्स टेफ्रोपेप्लम* (*R. tephropeplum*) : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, चीन, म्यानमार।
38. *रोडोडेंड्रान्स ट्राईफ्लोरम्* (*R. triflorum*) : क्षुप, दुर्लभ एवं सीमित, मणिपुर।
39. *रोडोडेंड्रान्स वेटछियानम* (*R. veitchianum*) : क्षुप, दुर्लभ, मिजोरम, मणिपुर, नागालैण्ड, लाओस, म्यानमार, थाइलैंड।
40. *रोडोडेंड्रान्स वॉटाई* (*R. wattii*) : क्षुप, संकटग्रस्त एवं सीमित, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर।
41. *रोडोडेंड्रान्स जैन्थोस्टेफानम (R. xanthostephanum)* : क्षुप, दुर्लभ, अरूणाचल प्रदेश, सिक्किम, चीन, म्यानमार।

रोडोडेन्ड्रान के उपयोग :

विश्व के अधिकतर भागों में *रोडोडेन्ड्रान* अपने आकर्षक पुष्पों के लिये उगाये जाते हैं। इनकी अनेकों संकर जातियां हैं जिनको बगीचों की सुन्दरता बढ़ाने में प्रयोग करते हैं। *रोडोडेन्ड्रान* की जातियां पशुओं के लिये विषैली होती हैं। *रो० बार्बाटम* मछलियों के लिये बिषैला है। इसकी लकड़ी ईंधन के रूप में प्रयोग की जाती हैं। रोडोडेन्ड्रान की पत्तियां औषधि एवं इत्र निर्माण में प्रयुक्त होती हैं। *रोडोडेन्ड्रान आर्बोरियम्* की लकड़ी हल्की व नरम होने के कारण इससे डिब्बे, तश्तरी, औजारों की मुठिया बनाने व इमारतों में काम आती है। इसका पुष्प दस्त व पेचिस में लाभकारी हैं। *रो० कम्पैनुलेटम्* की पत्तियां पुरानें जोड़ो के दर्द में उपयोगी हैं। *रो० पेन्टिकम* की लकड़ी प्याला, चम्मच, कलछुल, याक सैडिल बनाने में प्रयोग की जाती है। *रो० पोनटिकम्* की पत्तियां और पुष्पों में नशीला गुण है ये गठिया व जोड़ों के दर्द में उपयोगी हैं साथ ही कीटनाशक के रूप में भी उपयोगी है। नरेटी पर मछलीका काटा अटकने से *रो० आर्बोरियम्* के दलपुंज सूखा या ताजा खिलाते हैं। इसकी सुन्दरता व उपयोग के कारण यह कई राज्यों का राजकीय प्रतीक भी है। *रो० पोन्टिकम्* कश्मीर का राजकीय पुष्प व *रो० आर्बोरियम्* सिक्किम व उत्तराखण्ड का राजकीय वृक्ष है। *रो० अर्बोरियम्* नेपाल का राष्ट्रीय पुष्प है।

प्राकृतिक एवं कृत्रिम सकंटों जैसे भूस्खलन, जंगली आग, बांधों के निर्माण एवं शहरीकरण, वनों के अवैध कटान आदि के कारण *रोडोडेन्ड्रान* की जातियां कम होती जा रही हैं। इन सुन्दर, विशिष्ट वृक्ष समूह के पौधो के संरक्षण की आज नितांत आवश्यकता है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इनके सरक्षंण के लिए हमारे देश में कई विश्वविद्यालयों एवं सरकारी प्रतिष्ठानों द्वारा अनेकों कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पूर्वी परिमंडल में भी *रोडोडेन्ड्रान* की पूर्वोत्तर भारत में पायी जाने वाली जातियों के सरंक्षण के लिए एक परियोजना चलायी जा रही है और अनेकों जातियों का ऊत्तक संवर्धन विधि द्वारा संरक्षण किया जा रहा है।

———

रोडोडेन्ड्रान आर्बोरियम् प्रभेद सिनामोमम

रोडोडेन्ड्रान ग्लाउकोफाइलम

रोडोडेन्ड्रान एग्वर्थी

रोडोडेन्ड्रान डलहौजी प्रभेद राब्डोटम

रोडोडेन्ड्रान कम्पाइलोकरपम्

रोडोडेन्ड्रान केसी

भारत में मोरेसी कुल की प्रजातियाँ (वंश *फीकस* लि. के अतिरिक्त) तथा आर्थिक उपयोगिताएं

गौतम कुमार उपाध्याय, सुनील कुमार श्रीवास्तव एवं अनीस अहमद अन्सारी
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

मोरेसी लिंक (Moraceae Link) कुल को साधारणतः मलबेरी या शहतूत कुल से भी जाना जाता है। विश्व में मोरेसी कुल के 38 वंश तथा 1100 प्रजातियां जो अधिकतर उष्ण-कटिबन्धीय व उपोष्ण वन एवं कुछ शीतोष्ण क्षेत्र में पायी जाती हैं। भारत में मोरेसी कुल के लगभग 11 वंश तथा 137 प्रजातियां मिलती हैं। उनमें से अधिकांश फीकस (Ficus) वंश से लगभग 100 प्रजातियाँ, आर्टोकार्पस *(Artocarpus)* की दस, मोरस् *(Morus)* की छह, मैकलुरा (Maclura) की छह, स्ट्रेबुलस् *(Streblus)* की पाँच, डार्सटीनिया *(Dorstenia)* व ब्राउसोनेशिया *(Broussonetia)* की तीन एवं मिलीशिया *(Milicia)*, सोरोसिया *(Sorocea)*, कैस्टिला *(Castilla)* तथा एन्टिएरिस *(Antiaris)* वंश की एक प्रजाति भारत में पायी जाती हैं। साधारणतः ये सभी प्रजातियां मैदानी क्षेत्रों से मध्यवर्ती ऊँचाई वाले क्षेत्रो में समुद्र तल से 1500 मीटर की ऊचाई पर पायी जाती हैं। मोरस सिररााटा *(Morus serrata)* पश्चिमी हिमालय तथा डार्सटीनिया इंडिका *(Dorstenia indica)* दक्षिण के पठार में 3000 मीटर की ऊँचाई पर मिलती है।

फ्लोरा ऑफ इंडिया (Flora of India) परियोजना के अन्तर्गत मोरेसी कुल के (वंश फीकस लि के अतिरिक्त) पुनरीक्षण के दौरान इस कुल का आँकलन किया गया जिसमें लगभग 10 वंश, 37 जातियों और चार उपजातियाँ के बारे में जानकारी सामने आयी है। उनमें से 22 प्रजातियाँ जंगल में पायी जाती हैं तथा शेष अन्य जातियों को रोपित किया जाता है। कुछ जातियाँ ऐसी भी हैं जैसे कैस्टिला इलास्टिका (*Castilla elastica*), मिलीशिया एक्सेलसा (*Milicia excelsa*) जो भारत में कभी रोपित की जाती थीं परन्तु अभी वह लुप्त हो चुकी है या इसका रोपण नहीं किया जा रहा है।

मोरेसी कुल की प्रजातियों को साधारणतः उनके आशुपाती अनुपर्ण, दूधीय आक्षीर (Latex) तथा संयुक्त फल (Compound fruit) से पहचान की जाती है। सामान्य तौर पर ये पेड़ या झाड़ी के रुप में होते हैं। इसकी कुछ प्रजातियाँ शाकीय भी होती हैं। साधारणतः इस कुल के वृक्ष सदाबहार या पर्णपाती वनों में पाये जाते हैं। ये उभयलिंगाश्रयी या एकलिंगाश्रयी होते हैं। पत्ते अच्छिन्नकोर, गहरी दरारयुक्त या कभी हस्ताकार पालीयोंयुक्त होते हैं। पत्तियाँ सामान्यतः एकान्तर क्रम में, या कभी-कभार विपरीत क्रम में व्यवस्थित होती हैं। पुष्पक्रम विभिन्न प्रकार के तथा पुष्प एकलिंगी होते हैं। मोरस वंश में नर और मादा पुष्प निलंबी (pendulous) कैटकिन, जबकि मैकलुरा तथा ब्राउसोनेशिया वंश में मादा पुष्पक्रम एक गोलाकार संरचना के रूप में संग्रहित होते हैं। डार्सटीनिया वंश में पुष्पवृंत तथा पुष्पक्रमदंड पृष्ठाकार दिशा में सिकुड़ कर एक गोल पटलाकार आकृति का रूप ले लेते हैं जिनमें नर व मादा पुष्प संग्रहित रहते हैं। पुष्प मुख्य रूप से सूक्ष्म होते हैं जिनमें परिदल (Perianth) की संख्या चार होती है जो दो दलों में व्यवस्थित होते हैं। पुंकेशर 4-8 तक, स्त्रीकेसर 1-2 होते हैं। फल साधारणतः संयुक्त होते हैं जिनमें ऐकीन या अष्ठिन (Drupes), फुलधानी (Placenta) की सतह पर जुडे रहते हैं।

भारत में सफेद शहतूत (*Morus alba*) की खेती रेशम उत्पादन के लिए की जाती है। इसकी पत्ती रेशम कीट के लिए खाद्य स्रोत होती है। हांलाकि मैकलुरा तथा ब्राउसोनेशिया वंश के प्रजातियों के पत्ते भी रेशम उत्पादन में व्यवहृत होते हैं। पेपर मलबेरी (*Broussonetia papyrifera*) की छाल में मौजुद रेशा पेपर उत्पादन के लिए प्रयोग किया जाता है, जबकि इसका पत्ता चारा के रूप में भी उपयोग होता है। आर्टोकारपस लकुचा, आर्टोकारपस हेटेरोफाइलस तथा स्ट्रेबुलस् आसपर की पत्तियाँ भी चारे के रूप में गाय और बकरियों को खिलायी जाती हैं। अधिकतर आर्टोकारपस तथा मोरस् वंश के फल काफी स्वादिष्ट होते हैं और सारे भारत में इसे बड़े चाव से खाया जाता हैं। एन्टिएरिस टाक्सीकेरिया (*Antiaris toxicaria*) आर्टोकारपस लकुचा (*Artocarpus lacucha*), आर्टोकारपस चामा (*Artocarpus chama*) तथा

मोरस मैक्रुरा (*Morus macroura*) की लकड़ी काफी मजबूत होती है जिससे उसको फरनीचर बनाने के काम में प्रयोग करते हैं। केरल में एन्टिएरिस टाक्सीकेरिया के पेड़ को पवित्र वृक्ष के रुप में लोग उसकी पूजा भी करते हैं और डार्सटीनिया कन्ट्राजरवा (*Dorstenia contrajerva*) व डार्सटीनिया बाहीएनसिस् (*Dorstenia bahiensis*) को सजावटी काम के लिए घरों में भी लगाते हैं। इस कुल के पौधों में आर्टोकार्पीन मैकलुरीन, फाईटोलेक्सीन, बेन्जोफुरानस् तथा स्ट्रेबीनस् जैसे रासायनिक द्रव्य पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त मोरेसी कुल के फलों का प्रयोग विश्वविद्यालय मे स्नातक व स्नातकोत्तर की कक्षाओं के वनस्पति प्रयोगात्मक परीक्षाओं में भी किया जाता है।

मोरेसी कुल की आर्थिकोपयोगी प्रजातियाँ

क्र. सं.	प्रजातियों का नाम	वास-स्थान	भौगोलिक विस्तार	उपयोगिताएं (पौधे का भाग)
1.	*एन्टिएरिस टाक्सीकेरिया* (पर्स.) लेच्छ.	जंगली	डैक्कन पठार पूर्वीघाट व अण्डमान द्वीपसमूह	प्रेब्रीफ्युज, डीसेंट्री (बीज) तने की अन्दर की छाल से चावल के बोरे बनाए जाते हैं।
2.	*आर्टोकारपस चामा* रोक्सब. एक्स बुक.-हाम.।	जंगली	उत्तर-पश्चिम व उत्तर-पूर्वी भारत	खाद्योपयोगी फल, लकड़ी (फरनीचर), पत्तियाँ चारे में ऊपयोगी हैं
3.	*आर्टोकारपस एल्टीलिस* (पारकिनसन) फोसबर्ग	रोपित	सारे भारत में	जड़ से दस्त व पेंचिस के निदान, फल खाने में व पत्तियां चारे में उपयोगी हैं।
4.	*आर्टोकारपस गोमेजियानस* वाल एकस ट्रेकुल	जंगली	पश्चिमी घाट व अण्डमान द्वीपसमूह	खाद्योपयोगी फल, लकड़ी (फरनीचर), पत्तियाँ चारे में प्रयोग की जाती हैं। इसकी कोमल जड़ों को स्वाद के लिए सुपारी के साथ भी खाते हैं।
5.	*आर्टोकारपस हेटेरोफाइलस* लेम.	रोपित व जंगली	सारे भारत में	जड़ दस्त रोकने में, फल खाने व लेक्जेटिव के रूप में; पत्तियाँ चारे, त्वचा रोग, अस्थमा एवं अल्सर के निदान में, बीज डारइयुरिटिक के रूप में उपयोगी हैं।
6.	*आर्टोकारपस हिरसुटस* लेम	जंगली	डैक्कन पठार से स्थानिक	पत्तियाँ घाव भरने में, फल खाने में व लकड़ी फरनीचर बनाने में उपयोगी हैं।
7.	*आर्टोकारपस लकुचा* रोक्सब. एक्स बुक.-हाम.	जंगली	उष्ण-कटिबन्धीय वन, हिमालय तथा अण्डमान द्वीपसमूह	छाल सुपारी की तरह चबाने में, लकड़ी फरनीचर बनाने में, पत्तियाँ चारे में एवं फल खाने में उपयोगी हैं।
8.	*आर्टोकारपस टीस्मैनी* मीक्	जंगली	निकोबर द्वीपसमूह	तने की आक्षीर से (Bird-lime) चिडियां को फसाने में तथा लकड़ी फरनीचर में उपयोगी हैं।
9.	*ब्राउसोनेशिया पैपीरीफेरा* ल'हैरीट. एक्स भेन्ट.	रोपित	उत्तर-पश्चिम व उत्तर-पूर्वी भारत	फल खाने में, बीज डाइयुरिटिक व टॉनिक, पत्तियाँ चारे व रेशम के कीड़ों का खाद्य स्रोत, पाचन में तथा डाइफोरेटिक, छाल एक्जिमा के निदान व पेपर उत्पादन में उपयोगी हैं।
10.	*डार्सटीनिया कन्ट्राजरवा* लि.	रोपित	केरल	इस पौधे के सत से ज्वर कम करने तथा तम्बाकू को सुगन्धित करने के अतिरिक्त इसको सजावट में भी प्रयोग करते हैं।

11.	*डार्सटीनिया बाहीएनसिस्* फीस्च. व सी.ए.मे.	रोपित	केरल	सजावट में उपयोगी हैं।
12.	*मैकलुरा अण्डमानिका* (हुक. एफ.) सी.सी. बर्ग	जंगली	अण्डमान द्वीपसमूह	लकड़ी का फरनीचर में प्रयोग व जलाने में उपयोगी हैं।
13.	*मैकलुरा कोचिन्चाइनेन्सीस* (लाउर.) कार्नर	जंगली	उष्ण-कटिबन्धीय वन व हिमालय	फल खाने में, लकड़ी से पीला रंग निकलता है तथा घरों की दीवार बनाने में उपयोगी हैं।
14.	*मैकलुरा पामीफेरा* सी.के.स्कीनीड़	रोपित	देहरादून (उत्तराखंड)	लकड़ी से फरनीचर बनाने में व टैनिन तथा रंग निकालने में उपयोग किया जाता हैं।
15.	*मैकलुरा स्पाइनोसा* (वील्ड.) सी. सी. बर्ग	जंगली	दक्षिण व उत्तर-पूर्वी भारत	इसकी लकड़ी से औजार के हत्थे व सजावटी सामान बनाने में व जलाने में प्रयोग करते हैं।
16.	*मोरस अलबा* लि	रोपित	सारे भारत में	इसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ो का खाद्य स्रोत हैं तथा भेड़ बकरी के चारे के रूप में प्रयोग होती है। फल लेक्जेटिव तथा छाल परगेटिव व पेट के कीड़े मारन में उपयोग की जाती है।
17.	मोरस इंडिका लि.	रोपित	सारे भारत में	पत्तियाँ रेशम के कीड़े का खाद्य श्रोत हैं और बकरी के चारे के रूप में उपयोगी है।
18.	*मोरस सेरराटा* रोक्सब.	जंगली	उपोष्ण हिमालय	पत्तियाँ चारे के रूप में तथा लकड़ी फर्नीचर बनाने के काम आती है।
19.	*मोरस मैक्रूरा* मीक.	रोपित व जंगली	उत्तर-पश्चिम व उत्तर-पूर्वी भारत तथा अण्डमान द्वीपसमूह	फल खाने में, लकड़ी फर्नीचर तथा लेटेक्स घाव भरने में उपयोगी है।
20.	मोरस नीग्रा लि.	रोपित	कर्नाटक, तामिल नाडु, पश्चिमबंगाल	फल लेक्जेटिव व खाने में तथा छाल परगेटिव के रूप में उपयोगी हैं।
21.	*मोरस रुब्रा* लि.	रोपित	कर्णाटक, तामिल नाडु, पश्चिमबंगाल	फल खाद्योपयोगी।
22.	*स्ट्रेबुलस् आसपर* लाउर.	जंगली	सारे भारत में विशेषकर उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र	फल खाद्य में, पत्तियाँ चारे में, पतली टहनियां दातुन में तथा पायरिया के निदान में उपयोगी हैं। इसकी जड़ से दस्त व पेचिस का इलाज करते हैं तथा लेटेक्स में एन्टीसेप्टिक गुण पाया जाता है।
23.	*स्ट्रेबुलस् इंडिकस्* (बीऊरो) कार्नर	जंगली	मेघालय	फल खाने में तथा लकड़ी फर्नीचर बनाने में प्रयोग की जाती है।

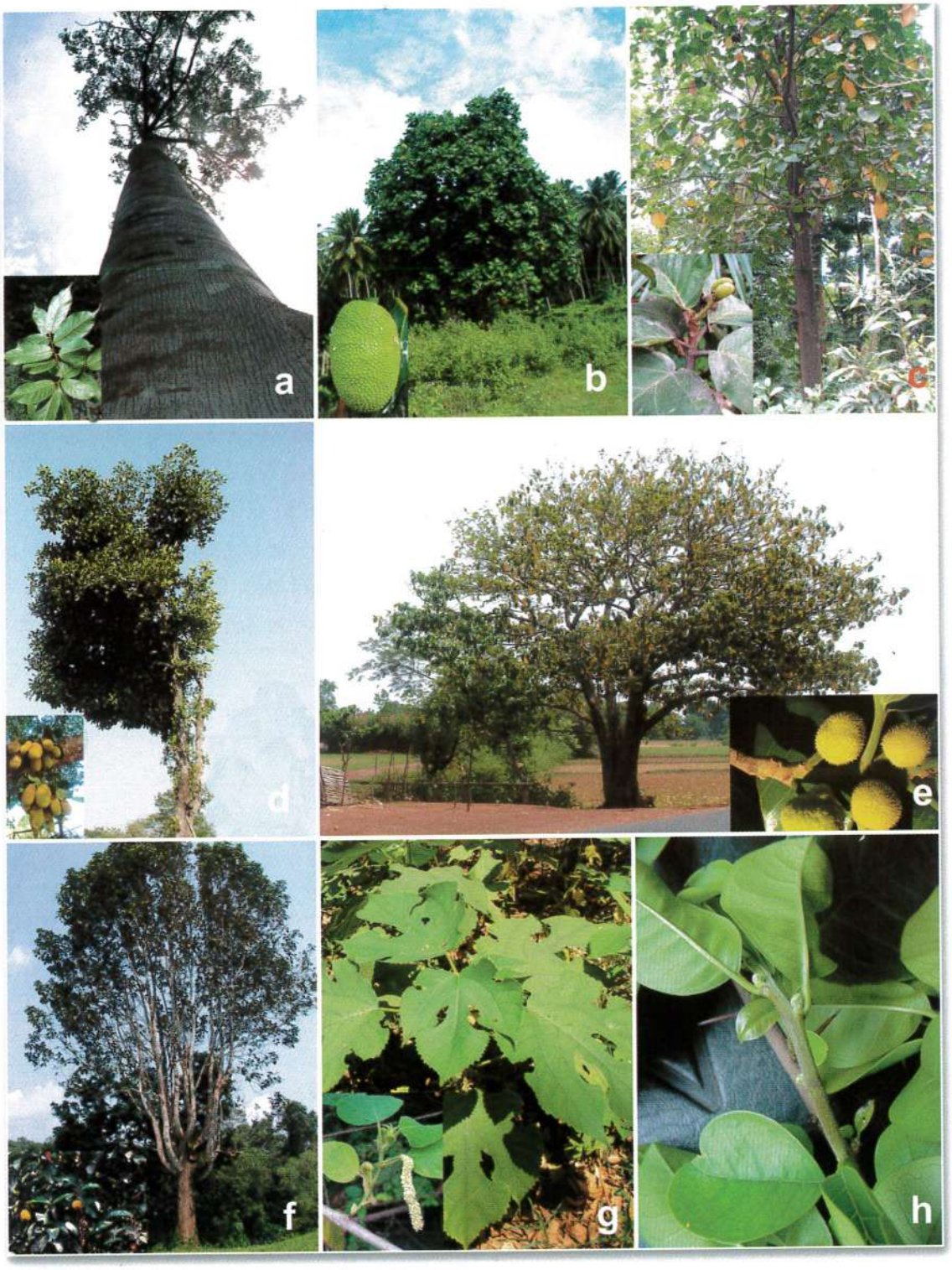

प्लेट 1. a. एन्टिएरिस टाक्सीकेरिया; b. आर्टोकारपस एल्टीलिस (पारकिनसन); c. आर्टोकारपस चामा; d. आर्टोकारपस हेटेरोफाइलस; e. आर्टोकारपस लकुचा f. आर्टोकारपस हीरसुटस; g. ब्राउसोनेशिया पैपीरीफ़ेरा; h. मैकलुरा कोचिन्चाइनेन्सीस।

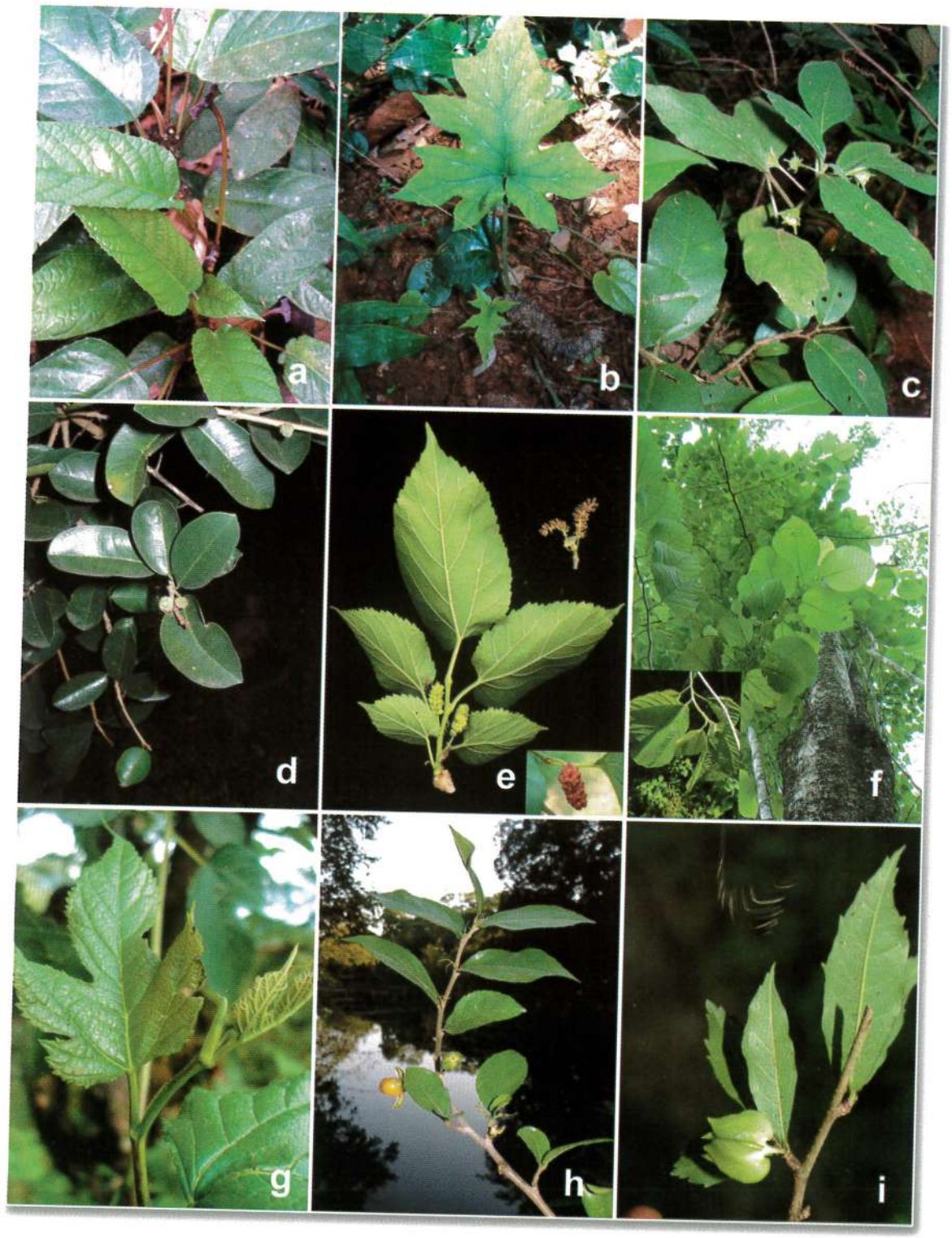

प्लेट 2. a. डार्सटीनिया बाहीएनसिस्; b. डार्सटीनिया कन्ट्राजरवा; c. डार्सटीनिया इंडिका; d. मैकलुरा स्पाइनोसा; e. मोरस अलबा; f. मोरस मैक्रूरा; g. मोरस इंडिका; h. स्ट्रेबुलस् आसपर; i. स्ट्रेबुलस् टेक्सौइडिस।

1. कटहल (*Artocarpus heterophyllus*) के कच्चे फल सें व्यंजन प्रस्तुत करती एक महिला 2. कटहल का पका हुआ फल बेचते हुए एक दुकानदार 3. ब्रेडफ्रूट (*Artocarpus altilis*) से बनती सबजियाँ 4. कटहल के बीज का खाद्य के रूप में उपयोग 5. कटहल की पत्ती में लिपटी इडली (कर्नाटक में) 6. कटहल की लकड़ी पर नक्कासी

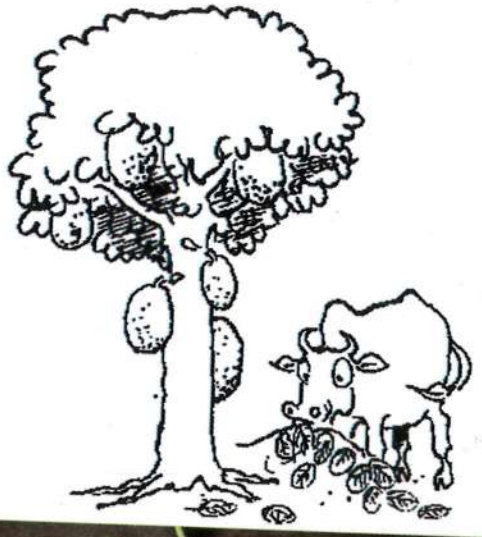

7

8

9

10

11

12

7. कटहल के पत्तों का चारा के रुप में उपयोग 8. *आर्टोकारपस हिरसुटस* की लकड़ी से बनी नाव 9. गमले में *डार्सेटिनिया कन्ट्राजरवा* का सजावटी उपयोग 10. शहतूत (*Morus alba*) के फल का खाद्य के रुप में उपयोग 11. शहतूत (*Morus alba*) के पत्ते पर रेशम कीट 12. स्ट्रेबुलस् आसपर (*Streblus asper*) के पत्ते खाती एक बकरी

नोट : चित्र 3, 6, 7, 8, 9, और 11 (इंटरनेट की सौजन्य से)

पेडीकुलेरिस वंश का विशिष्ट अनुकूलन व उत्तर जीविता

आरती गर्ग एवं सौरभ सचान

केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

किसी भी स्थान पर पाया जाने वाला वनस्पतिजात अथवा जन्तुजात उस स्थान की वातावरणीय दशाओं का द्योतक होता है। किसी भी जीव जाति को जीवित रहने के लिए उसे स्वयं में वहाँ के वातावरणीय दशाओं के अनुकूल परिवर्तन अवश्य ही लाने पड़ते हैं अन्यथा उस जन्तु अथवा पादपजात को उस स्थान पर अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए एक अव्यक्त खतरा उत्पन्न हो जाता है, जिसे वातावरणीय दबाव कहा जाता है। वनस्पति शास्त्र में इस प्रकार के अध्ययन वास्तव में पादप क्रिया विज्ञान की एक शाखा स्ट्रेस फिजियालॉजी के अन्तर्गत किए जाते हैं।

प्रस्तुत अभिपत्र में अनुकूलन की दृष्टि से सर्वोत्तम, एक ऐसे ही कुल स्क्रोफुल्लेरेसी (Scrophulariaceae) के वंशज पेडीकुलेरिस (*Pedicularis* L.) की भौतिक, कायिक व जननिक विशिष्टताओं का उल्लेख किया गया है। पेडीकुलेरिस एक वार्षिक शाक है, जो कि सामान्यतः हिमालय के विभिन्न अल्पाइन, हिमाच्छादित व दुर्गम (Alpine, snowcovered & inaccessible) प्रभागों में पाया जाता है जहाँ पर सामान्य जन-जीवन व वनस्पति विरले ही मिलता है। पेडीकुलेरिस एक विस्तृत वंश है। इसकी विविध जातियाँ भूमितल से भिन्न-भिन्न ऊँचाइयों पर पायी जाती हैं, उदाहरणार्थ: भूमितल से 1000 मीटर पर पेडीकुलेरिस बाईफिडा (*P. bifida* Buch-Ham ex D. Don, चित्र-१), 2400 मीटर पर पेडीकुलेरिस पंकटेटा (*P. punctata* Decne, चित्र-२), 4550 मीटर पर पेडीकुलेरिस बाईकारन्यूटा (*P. bicornuta* Kl. ex Kl. & Garcke, चित्र-४), तथा लगभग 4500 से 5000 मीटर की ऊँचाई पर पेडीकुलेरिस लैचनोग्लोसा (*P. lachnoglossa* Hook. f.) आदि मिलती है।

विश्व भर में इसकी लगभग आठ सौ (800) जातियाँ तथा भारतवर्ष से लगभग 83 जातियाँ ज्ञात हैं जिसमें 44 जातियाँ क्रमशः पूर्वी हिमालय, 26 जातियाँ पश्चिमी तथा 11 जातियाँ इनके मध्यवर्ती प्रभागों में वितरित रहती है। इसके अतिरिक्त इसकी दो जातियाँ पेडीकुलेरिस पैरोटिटाई व पेडीकुलेरिस जिलैनिका (*P. perottettii* Benth. & *P. zeylanica* Benth.) नीलगिरि श्रृंखला में समस्थानिक हैं।

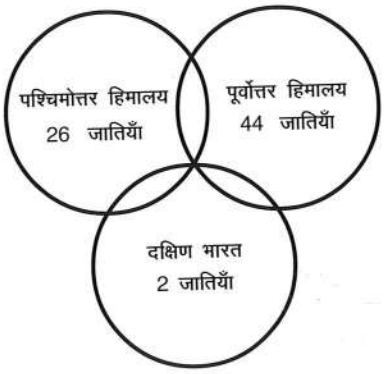

पेडीकुलेरिस वंश में वानस्पतिज्ञों द्वारा अनेकों भौतिक व कायिक विशिष्टतायें देखी गई हैं। जो इसे वातावरण के विपरीत प्रभावों (drastic effects) को निष्क्रिय करने में समर्थ बनाती हैं जैसे :

मूल : इसकी जड़ों में अल्प मात्रा में हरित लवक मिलता है। इसके अतिरिक्त इसमें अर्ध-परजीविता (Hemi-parasitism) की अद्भुत क्षमता होती है जिसके कारण यह अपने आवासीय क्षेत्र के आस-पास उगने वाले कुछ विशिष्टीकृत कुलों जैसे - रैननकुलेसी (Ranunculaceae), लेग्यूमिनोसी (Leguminosae), रोजेसी (Rosaceae), पोलीगोनेसी (Polygonaceae), साइप्रेसी (Cyperaceae), व पोएसी (Poaceae), इत्यादि के पड़ोसी पौधों के साथ चूषकांग (Haustorial connections) द्वारा भूमिगत साहचर्य स्थापित कर लेता है व उससे सभी आवश्यक आहार व उपापचयी द्रव (alkaloids) अवशोषित कर लेता है तथा भूमि से दृढ़ता पूर्वक सम्बद्ध हो जाता है और वातावरणीय विषम परिस्थितियों में भी समूल नष्ट नहीं होता है।

स्तम्भ : इसका तना लम्बा, मजबूत, अत्यन्त लचीला व प्रत्यास्थ होता है। इस प्रकार यह वायु व जल के कर्षण बल (Drag force) को निरस्थ कर तेज वायु के झोकों में भी टूटने से बच जाता है।

पत्ती : पत्तियाँ दीर्घ (Pinnatifid) अथवा दीर्णतर-पिच्छाकार (Pinnatisect) कटी-फटी, अछिन्न कोर तथा प्रायः पतली लम्बी व लचीली होती है जिसके कारण इन पर वायु अथवा जल का बिन्दुवत दबाव (Point force) नहीं पड़ता है और ये टूटने से बच जाती है।

पुष्प : पुष्प प्रायः रंगीन, पूर्ण व जाइगोमार्फिक (Zygomorphic) होते है बाहय दल पुंज एक नलिकावत (tubular) संरचना बनाता है। दलपुंज हुड (Hood) व लैबियम (Labium) नामक दो भागों में विभाजित रहता है। लैबियम अथवा (Lower lip) दलपुंज का निचला भाग जिह्वाकार होता है तथा दलपुंज का ऊपरी भाग हुड अथवा गैलिया (Galea) कहलाता है। इसी गैलिया के आधारीय भाग से पुंकेसर (Androecium) व स्त्रीकेसर (Gynoecium) एक विशिष्ट विन्यास (specific arrangement) में सम्बद्ध रहते हैं।

गैलिया की संरचना में अनेकों विविधताएँ देखी गयी हैं जो इसको एक वार्गिक लक्षण (Taxonomic Character) प्रदान करती हैं। जैसे कि इसकी अधिकतर जातियों में प्रायः गैलिया हँसियाकार (Sickle shaped) ही होता है परन्तु - पेडीकुलेरिस पोरेक्टा (*P. porrecta* Wall ex Benth., चित्र-३), पेडीकुलेरिस ग्रेसाइलिस (*P. gracilis* Wall. ex Benth.), पेडीकुलेरिस रिजेलियाना (*P. regeliana* Prain), आदि कुछ विशिष्ट जातियों में ये गोलाकार व बेलनाकार भी होता है, जैसे - पेडीकुलेरिस टेन्विरोस्ट्रिस (*P. tenuirostris* Benth.), पेडीकुलेरिस डिफ्यूसा (*P. diffusa* Prain), पेडीकुलेरिस बाईकारन्यूटा (*P. bicornuta* Kl. ex Kl. & Garcke, चित्र-४) इत्यादि।

इस प्रकार पेडीकुलेरिस वंश का यह विशिष्ट वर्धी स्वरूप इसे अनुकूलन की दृष्टि से दृढ़ता एवं उत्तर जीविता प्रदान करता है।

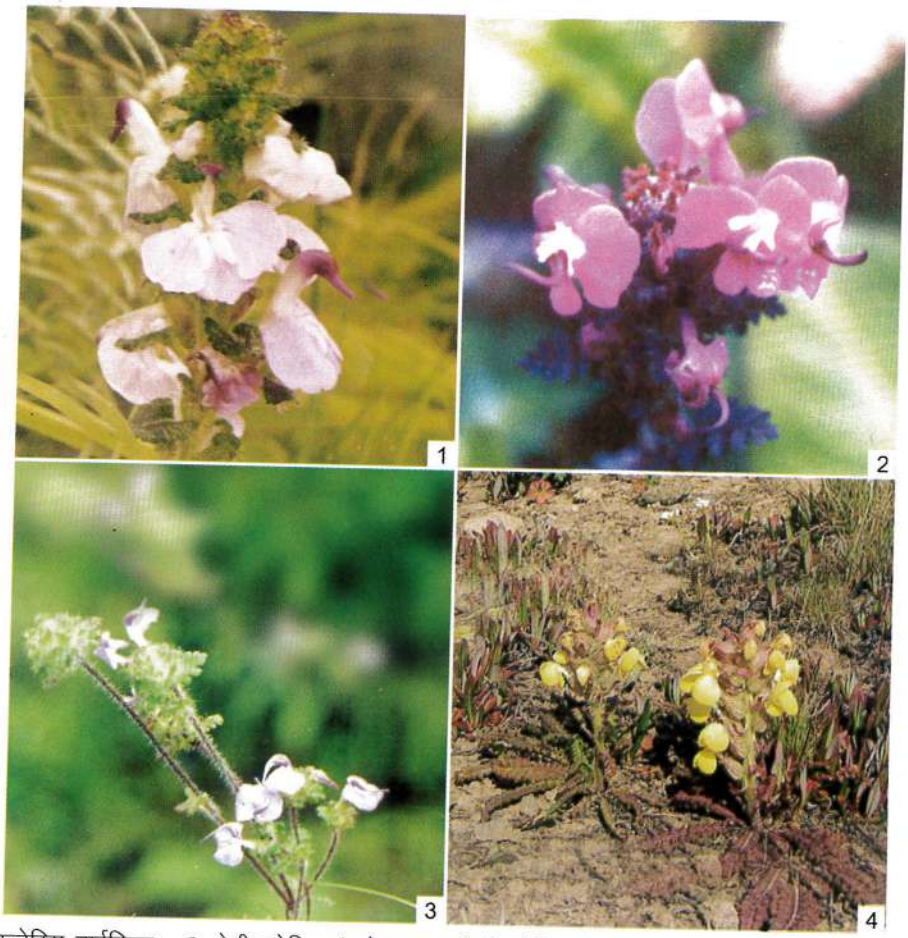

1. पेडीकुलेरिस बाईफिडा 2. पेडीकुलेरिस पंकटेटा 3. पेडीकुलेरिस पोरेक्टा 4. पेडीकुलेरिस बाईकारन्यूटा

सिक्किम हिमालय की *पोटेन्टिला* (*Potentilla* L.) की कुछ रोचक व सुन्दर जातियाँ

ए. ए. अन्सारी एवं ए. के. साहू
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,गांतोक/कोलकाता

रोजेसी कुल के *पोटेन्टिला* (*Potentilla*) वंश की संसार में लगभग 500 जातियां पाई जाती हैं। इन का विस्तार विशेषकर ठंडे तथा बर्फीले क्षेत्रों में होता है। भारत में इसकी 59 जातियाँ व 22 प्रजातियाँ पाई जाती हैं जो मुख्य तौर पर हिमालय के समशीतोषण व हिमाद्रि क्षेत्रों में मिलती हैं। इन के अतिरिक्त कुछ जातियों का विस्तार छोटानागपुर के पश्चिमी पठारी क्षेत्र, भारत के अयनवृत्त क्षेत्र, दक्षिण प्रायद्वीप के नीलगिरी पहाड़ी क्षेत्रों आदि में भी है।

सिक्किम हिमालय में *पोटेन्टिला* की 34 जातियाँ व 17 प्रजातियाँ पाई जाती हैं जो सामान्यतः 1500 से 5500 मी. की ऊँचाई पर उगती हैं। पौधे अधिकतर बारह मासी शाकीय होते हैं। बहुत कम व विरल ही झाडीदार होते हैं। पत्तियाँ अधिकांश जमीन से निकलती है तथा गुलाब के फूल की पंखुड़ियों की तरह सजे रहते हैं। तने की कुछ एक पत्तियाँ भी होती हैं। पत्तियाँ चक्रवृद्धि, मिश्रित व संयुक्त होती हैं। इन के फूल आम तौर पर पीले होते हैं, कभी कभी सफेद तथा बिरले ही लाल अथवा बैंगनी भी होते है। फल व बीज बहुत छोटे व अनेक संख्या में होते हैं। फूल आने का समय अधिकतर जातियों में जून से लेकर अक्टूबर तक होता है।

सिक्किम हिमालय में पाई जाने वाली कुछ रोचक व सुन्दर *पोटेन्टिला* की जातियों का संक्षिप्त विवरण निम्न है।

1. *पोटेन्टिला कोरिएन्ड्रीफोलिया* (*Potentilla coriandrifolia*) 2900-4570 मी. की ऊँचाई के मध्य पायी जाती है। पौधे गुलाब के फूल की आकृति के होते हैं तथा 15 से. मी. तक लम्बे होते हैं। पत्तियाँ मुख्यतः जमीन स्तर से निकलती हैं जो 2-16 से. मी. लम्बी होती है तथा उनके किनारे गहरे कटावदार व पत्रक पतले पतले होते हैं। फूल अधिकांश पीले होते हैं पर कभी कभी ये सफेद (छवि-1) अथवा लाल रंग के भी होते हैं। फूलने व फलने का समय जून से सितम्बर है।

2. *पोटेन्टिला फ्रुटिकोसा* (*Potentilla fruticosa*) सामान्यतः 2500-4000 मी. ऊँचाई पर मिलती है। सीधा झाड़ीनुमा पौधा लगभग 1 मी. तक लम्बा होता है। पत्तियाँ मुख्यतः तने से निकलती हैं। पत्रक 2 या 3 जोड़े होते हैं व इन की लम्बाई 3 मि. मी. से 2 से. मी. तक होती है। फूल हमेशा पीले रंग के ही होते हैं। फूलने व फलने का समय जून से अक्टूबर है। (छवि-2)

3. *पोटेन्टिला ल्युकोनेटा* (*Potentilla leuconata*) 3600-4880 मी. की ऊँचाई पर मिलती है। पौधे समतल यानी जमीन के समानान्तर होते हैं, इनकी लम्बाई 10-45 से. मी. होती है। अधिकतर पत्तियाँ जमीन से निकलती हैं और 4-22 से. मी. लम्बी होती हैं। पत्रक 6-18 जोडी तक होती हैं जिनकी लम्बाई 5 मि.मी. से 3 से मी. होती है। फूल हमेशा पीले ही होते हैं। फूलने व फलने का समय जुन से अक्टूबर है। (छवि-3)

पोटेन्टिला ल्युकोनेटा को चीन में औषधि के रूप में उपयोग किया जाता है। भारत तथा अन्य देशों में *पोटेन्टिला लिनिएटा* "बजरंदती" औषधि के रूप में बहुत ही प्रचलित है जिसका प्रयोग में दाँतों के मंजन बनाने आदि में होता है।

4. *पोटेन्टिला सौन्डरसियाना* (*Potentilla saundersiana*) 3600-5490 मी. की ऊँचाई पर मिलती है। पौधे गुलाब के फूल की आकृति के होते हैं जिन की लम्बाई 8-30 से. मी. तक होती है। पत्तियों की लम्बाई 2-8 से. मी. होती है, जो मुख्यतः जमीन स्तर से निकलती हैं। पत्रक सामान्यतः 5 होते हैं, कभी कभी 3 अथवा 7 तक होते हैं जिन की लम्बाई 5 मि. मी. से 2.5 से. मी. तक होती है। फूल सदा पीले होते हैं। फूलने य फलने का समय जून–सितम्बर। (छवि-4)

इन के अतिरिक्त सिक्किम हिमालय में इस वंश की निम्नलिखित जातियाँ पाई जाती हैं।

5. *पोटेन्टिला आरगाईरोफिला* (*Potentilla argyrophylla*)
6. *पोटेन्टिला एरिस्टेटा* (*Potentilla aristata*)
7. *पोटेन्टिला आर्टिकुलेटा* (*Potentilla articulata*)
8. *पोटेन्टिला बाइफ्लोरा* (*Potentilla biflora*)
9. *पोटेन्टिला बाइफरका* (*Potentilla bifurca*)
10. *पोटेन्टिला ब्रायोआडिस* (*Potentilla bryoides*)

11. *पोटेन्टिला कैलिजिनोसा* (*Potentilla caliginosa*)
12. *पोटेन्टिला कन्टिगुआ* (*Potentilla contigua*)
13. *पोटेन्टिला कम्म्युटेटा* (*Potentilla commutata*)
14. *पोटेन्टिला क्युनिएटा* (*Potentilla cuneata*)
15. *पोटेन्टिला क्युनिफोलिया* (*Potentilla cuneifolia*)
16. *पोटेन्टिला इरियोकारपा* (*Potentilla eriocarpa*)
17. *पोटेन्टिला गलेब्रियसक्युला* (Potentilla glabriuscula)
18. *पोटेन्टिला ग्रिफिथियाई* (*Potentilla griffithii*)
19. *पोटेन्टिला हेमसलियाना* (*Potentilla hemsleyana*).
20. *पोटेन्टिला हाइपरगाइरिया* (*Potentilla hypergyrea*)
21. *पोटेन्टिला क्लीनियाना* (*Potentilla kleiniana*)
22 *पोटेन्टिला लीनिएटा* (*Potentilla lineata*)
23. *पोटेन्टिला माइक्रोफिला* (*Potentilla microphylla*)
24. *पोटेन्टिला फेस्टीवा* (*Potentilla festiva*)
25. *पोटेन्टिला मोनैन्थस* (*Potentilla monanthes*)
26. *पोटेन्टिला नेपालेन्सिस* (*Potentilla nepalensis*)
27. *पोटेन्टिला नीविया* (*Potentilla nivea*)
28. *पोटेन्टिला पानीग्राहियाना* (*Potentilla panigrahiana*)
29. *पोटेन्टिला पेडन्कुलेरिस* (*Potentilla peduncularis*)
30. *पोटेन्टिला पोलिफाइला* (*Potentilla polyphylla*)
31. *पोटेन्टिला सुनडाइका* (*Potentilla sundaica*)
32. *पोटेन्टिला सिरीसिया* (*Potentilla sericea*)
33. *पोटेन्टिला सुपिना* (*Potentilla supina*)
34. *पोटेन्टिला टाटसिएनलुएंसिस* (*Potentilla tatsienluensis*)

पोटेन्टिला की अधिकतर जातियाँ बहुत ही सुन्दर व आकर्षक होती हैं जिनकी स्थानीय तौर पर उद्यान तथा घरों में सुन्दरता के लिए लगाया जा सकता है। अपनी इस धरोहर व विरासत को संरक्षण प्रदान करना हम सब का कर्तव्य है। पर्यटन उद्योग से जहाँ आर्थिक लाभ व विकास होता है वही वनस्पति सम्पदा तथा इस तरहकी जातियों को जो अधिकतर हिमालय के ऊँचाई वाले मनोरम व पर्यटकीय क्षेत्रों में पाई जाती है, के नष्ट व लुप्त होने का खतरा भी बना रहता है। अतः जरूरत इस बात की है पौधों की जानकारी शैलानियों व आम लोगों को प्रदान कर उनमें संरक्षण के प्रति जागरूकता पैदा की जाय।

फर्नीचर, टोकरियाँ, हस्तशिल्प और दवाईयाँ आदि। बेंत के फर्नीचार भारतवर्ष में दूसरी शताब्दी से ही बनाए जाते हैं। इस्ट-इण्डिया कम्पनी के भारत आगमन के बाद बेंतों का निर्यात यूरोप में होने लगा और इंलैण्ड और नीदरलैण्ड में ये फर्नीचर काफी प्रतिष्ठित बन गए। बाद में अंग्रेजी तरीके के बेंत-फर्नीचर जर्मनी, स्पेन तथा अमेरिकन उपनिवेशों में भेजे जाने लगे। अपनी खूबसूरती, हल्केपन तथा टिकाऊपन के कारण ये फर्नीचर कभी भी फैशन के दौर से बाहर नहीं होते और इनका स्थान घर और बाजार सभी जगहों में बरकरार है। इनकी कुछ महत्वपूर्ण प्रजातियों तथा उनके प्रमुख उपयोगों का विवरण तालिकाबद्ध है जिससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि ये बेंत हमारे लिए कितने उपयोगी और मूल्यवान हैं, जिनके संरक्षण और सवर्धन में ही हमारी बुद्धिमानी तथा भलाई है।

तालिका

	प्रजाति का नाम	स्थानीय नाम	प्रकृति	तने का व्यास (से.मी.) पर्ण आवरण सहित	पर्ण आवरण रहित	उपयोग	वितरण
1.	**कैलेमस ऐकैन्थोस्पेथस**	जाति, तस्सर् इसोंग	मजबूत पुंजमय आरोही बेंत	3-5	1.5-2	फर्नीचर, टोकरियाँ, पोलो-छड़ी, पुलों के केबिल	असम अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, सिक्किम
2.	**कैलेमस प्लैजिलम**	राडियांग, रामान्ग, थोऊ	झुरमुट स्वरूप बेंत	3-5	2-3	फर्नीचर, टोकरी उद्योग,फल खाने योग्य तथा पत्तियों का इस्तेमाल तृणभित्ति निर्माण में	असम, मेघालय, पश्चिम बंगाल, नागालैण्ड, अरूणाचलप्रदेश,सिक्किम
3.	**कैलेमस ग्रैसिलिस**	चुली बेंत, रिमि	पुंजमय, पतले लम्बे आरोही बेंत।	1-2	0.5-1	फर्नीचर, हस्तकला उद्योग, प्रपट्टीकरण, सजावटी वस्तुओं के निर्माण में, फल खाने योग्य	मेघालय, असम, अरूणाचल प्रदेश
4.	**कैलेमस गुरूबा**	–	पुंजमय, पतले आरोही बेंत	2-5	0.8-1	फर्नीचर, हस्तकला उद्योग और टोकरी निर्माण	असम, मेघालय, पश्चिम बंगाल
5	**कैलेमस इनरमिस**	तकत	आरोही बेंत	4-6	2.5-4.5	कुर्सियों के मजबूत ढ़ाँचे तथा फर्नीचर, पुलिस-छड़ी	सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश
6.	**कैलेमस खासिएनस**	तकत	आरोही बेंत	4-6	2.5-4.5	फर्नीचर और हस्तशिल्प उद्योग	अरूणाचल प्रदेश, असम, मेघालय
7.	**कैलेमस लैटिफोलियस्**	तकत	पुंजमय आरोही बेंत	3-4.5	2.5-3.5	फर्नीचर, हस्तशिल्प और टोकरी उद्योग	पश्चिम बंगाल, असम, सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर, नागालैंड
8.	**कैसेमस लेप्टोस्पैडिक्स**	लिजेई, जेईंग	पुंजमय, छोटे बेंत	1.2-2	1-1.2	फर्नीचर, हस्तशिल्प और टोकरी उद्योग	असम, सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल, मेघालय, मणिपुर, नागालैण्ड
9.	**कैलेमस नामबारिएन्स**	होकुआ	छोटे, पुंजमय	2-4	1-1.5	फर्नीचर, हस्तशिल्प	असम, अरूणाचल प्रदेश
10.	**कैलेमस टिन्यूईस**	जाति	पुंजमय, पतले बेंत	1-2	0.8-1	फर्नीचर, हस्तशिल्प और बुनाई कार्यों में, नए कोपल खाद्य	असम, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैंड

11. **कैलेमस स्यूडो टिन्यूईस**	–	पतले, मजबूत, आरोही बेंत	1.5-2.5	1-2	फर्नीचर, चटाईयाँ, चालन आदि, नए कोपल खाद्य	असम, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु
12. **कैलेमस लौंगिसिटस**	आलि मसजित, उधोम बेंत, जंगली बेंत	मजबूत आरोही बेंत	3-4	2-3	पके फल खाद्य, पत्तियाँ तृणभित्ति निर्माण में उपयोगी	दक्षिण अंडमान
13. **कैलेमस रीडी**	–	पुंजमय, पतले आरोही बेंत	1.1-1.3	0.6-0.8	उच्च गुणवत्ता वाले फर्नीचरों के निर्माण और भ्रमण छड़ी के लिए सूखे बीज के पाउडर अल्सर के इलाज में उपयोगी	केरल, कर्णाटक
14. **कैलेमस विमिनेलिस**	हासालि बेंत, किरिग बेंत, कोरक बेंत, बागी बेंत	झुरमुटनुमा आरोही बेंत	2.5-3	1-1.5	सर्वाधिक उपयोगी बेंत, भ्रमण-छड़ी, पोलो छडी, छाते का हत्था और फर्नीचर के लिए अत्युत्तम	बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, आंध्र-प्रदेश, सिक्किम, त्रिपुरा, अंडमान
15. **कैलेमस ट्रैवेन्कीरिकस**	–	झुरमुटनुमा आरोही बेंत	0.8-1.0	0.5-0.7	कुर्सियों की सीट, सजावटी वस्तुओं आदि के लिए, नर्म-कोमल पत्तियों का इस्तेमाल पित्तदोष, कान दर्द तथा कृमि निवारण में	केरल, तमिलनाडु
16. **कैलेमस रोतान्ग**	पेराम्बु, बेताम्बु, बेताम्पु	झुरमुटनुमा आरोही बेंत	0.8-1.6	0.4-1.2	फर्नीचर, मजबूत, टोकरी, चटाई आदि निर्माण में, पत्तियों का क्वाथ दस्त के इलाज में लाभकारी	आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु केरल
17. **कैलेमस अंदमानिकस**	मोटा बेंत	पुंजमय, मजबूत आरोही बेंत	8-10	4-5	फर्नीचर, पोलो-छड़ी,पुलों के केबिल आदि में, तनों में जमा पानी पीने योग्य	अंडमान और निकोबार द्वीप-समूह
18. **डेमोनोरॉप्स जेनकिनसियानस**	राडियांग बेंत	पुंजमय, मजबूत	2-4	1.5-2	फर्नीचर, मजबूत टोकरी, पुल	असम, मेघालय पश्चिम-बंगाल, सिक्किम,
19. **डेमोनोरॉप्स कुर्जियानस**	–	मजबूत आरोही बेंत	4-6	3-5	छाते के हैंडिल, टोकरी, वैनिश, डाई तथा फर्नीचर की रंगाई और दवाईयों में	दक्षिण अंडमान
20. **कोरथाल्सिया लेसिनिओसा**	लाल बेंत	ऊँचे आरोही, 4-5 तने के समूह वाले बेंत	2-3	1.5-2	फर्नीचर फ्रेम में, लट्ठों के वाहन में झोपड़ी निर्माण तथा चारे के रूप में	अंडमान और निकोबार द्वीप समूह
21. **प्लेकटोकोमिया हिमालयाना**	तेहरी बेंत, रूनुल बेंत, रानो बेंत	पुंजमय, ऊँचे आरोही बेंत	2-4	1.5-3.5	छाते के हैंडिल, और चाय तथा कंकरीट ढ़ोने वाली मजबूत टोकरियों के लिए, तथा भित्ति निर्माण में	सिक्किम, पश्चिम बंगाल अरूणाचल प्रदेश।

द्विनारियल (डबल कोकोनट) का भारतीय वनस्पति उद्यान में संरक्षण

शिव कुमार एवं गिरिजा शंकर गिरि
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

भारतीय वनस्पति उद्यान में द्विनारियल के वृक्ष के संरक्षण के बारे में जानने से पूर्व इसके खोज, वासस्थान, उपलब्धता, आलोप होने के कारण, गुण (उपयोगिता) इत्यादि की जानकारियों से प्रारम्भिक परिचय होना अति आवश्यक हो जाता है। द्विनारियल (डबल कोकोनट) के बारे में सर्वप्रथम जानकारी सन 1768 ई० में यूरोप के समुद्री नाविकों द्वारा देखे जाने के उपरान्त प्रकाश में आया। उन्होंने समुद्र सतह पर दूर से दिखने वाले तैरते-उतराते वस्तु को किसी के डुबने के अंदेशे से उसके बचाव हेतु पास पहुँचे और एक आश्चर्य चकित कर देने वाले उस अजीब आकृति को स्त्री के निचले भाग (नितम्ब) के जैसे कहा। साथ ही यह भी अनुमान लगाया कि यह अवश्य ही समुद्र के गर्भ में उगने वाले किसी पौधे का फल या बीज है। बाद में कई लोकोक्तियाँ मशहूर हुई। जैसे किसी ने इसे आदम एवं इव के बाग में उगने वाले किसी वृक्ष का फल बतलाया एवं जिसे यह उपलब्ध हो जाता उसे भाग्यशाली समझा जाता। सिर्फ यही नहीं, समुद्रतट पर बसने वाले कवीलों के सरदार का यह फरमान जारी हुआ करता था कि इस तरह का कोई फल या बीज अगर किसी को प्राप्त हो तो उसे उन्हें अतिशीघ्र भेंट करना होगा। ऐसा नहीं करने वालों का सर कलम करवा दिया जाता था। कालान्तर में इसका वैज्ञानिक शोध प्रारम्भ हुआ तथा मालद्वीप, जो भारतबर्ष के दक्षिण में अवस्थित है वहाँ से प्राप्त होने पर यह समझा गया कि मालद्वीप ही इसका वास्तविक वासस्थान हैं। इसलिए इसे लोडोसिया मालद्वीविका वनस्पतिक नाम से पुकारा जाने लगा। परन्तु वास्तविक वासस्थान का पता और गहन अध्ययन के उपरान्त यह लगा की यह तो अफ्रिका के सिसेलिस देश के 100 से अधिक द्वीपों में से सिर्फ दो छोटे द्वीपों क्रमशः परासलिन तेवं ब्रुइस का निवासी है। सिर्फ यहीं नहीं इसके वृक्षों की उपस्थिति कभी दो अन्य द्वीपों जैसे सेंटपीयरे (चाँवेसॉरिस) तथा इले-रोण्डे (परासलिन) पर भी हुआ करता था। तदुपरान्त, इसे रेड डाटा बुक के विलोपित हो रहे पौधों की सूची में उल्लेखित किया गया तथा बृहत पैमाने पर संरक्षण का कार्य प्रारम्भ किया गया। सिसेलिस के अनेक द्वीपों पर वृक्षारोपण, जंगल की आग पर काबू पाने वाले नियंत्रण दल की स्थापना तथा विशेष कानून बनाकर लागू किया गया। फलस्वरूप, आज इसका वृक्ष सिसेलिस के अन्य दो द्वीपों जैसे माहे तथा सिलहॉउटे पर भी है तथा सिसेलिस में सबसे पुराने जीवित वृक्ष की अनुमानित उम्र 350 वर्ष है।

आज द्विनारियल के वृक्ष को उष्णकटिबंध देशों में सौंदर्यीकरण हेतु बहुतायत से लगाया जा रहा है। ह्यूमस जनित, अम्लीय तथा बरसाती जंगल के शुष्क गीले मिट्टी में यह वृक्ष भली भाँति बढ़ता है तथा सूखे ढलान, पथरीला या अपरदन सूखे मिट्टी में वृक्ष का बढ़ना काफी कम होता है। इसके अतिरिक्त, पौधे की ऊँचाई, पत्तों, फलों एवं बीजों के आकार एवं बढ़ने का समयकाल विभिन्न परिस्थितिक घटकों जैसे प्रकाश-संश्लेषण, तापमान, वर्षा, अम्लीयता तथा मिट्टी के प्रकार, वृक्षों के बीच की दूरी के कारण भिन्न होता है।

द्विनारियल का वास्तविक नाम ''लोडोसिया'' लोडोयकस के लैटिन ''लॉइस'' शब्द जिसे फ्रांस के पन्द्रहवें राजा लॉइस के सम्मान में रखा गया। यह एरेकेसी कुल का एकमात्र वंशज है। इसके पर्याय नाम क्रमशः बोरेसस सोनेरॉटी कोकॉस मालदीविका, लोडोसिया कैंलीपीग, लोडोसिया सेकेलेरम तथा लोडोसिया सोनेरॉटी एवं विभिन्न देशों में सामान्य बोल-चाल की भाषा में इसे क्रमशं हिन्दी में द्विनारियल, अरबी में नारगीला बाहरी, चाईनीज में है ए-ऐ-जी, अंग्रेजी में डबल कोकोनट, सी कोकोनट तथा सिसेलिस नट, फ्रेंच में कोको-डी-मेर एवं कोकोटीयर डेस सिसेलिस, जर्मन में सिसेलेन पॉम, इटेलियन में कोको डी मालद्वीप तथा टरकिस में डेनिज हिन्डीस्तान सो भीजी तथा मालद्वीप में इसे मालद्वीप कोकोनट या थावाह कॉसी और कभी-कभी इसे कोको फेसे, सी बीन एवं सूखे बीज के नाम से भी जाना जाता हैं।

द्विनारियल के वास्तविक वासस्थान सिसेलिस से मालद्वीप (जहाँ से वैज्ञानिकों ने प्रथम बार देखने के बाद लोडोसिया मालद्वीविका नाम रखा) तक पहुँचना आज भी रहस्यमय बना हुआ है। ऐसी परिकल्पना है कि इसका विस्तार

1

2

3

4

5

6

7

1. वृक्ष के शीर्ष पर पर्णगुच्छा के विभिन्न अंगों का निरीक्षण तथा इनसेट में द्विशाखित पर्ण शीर्ष 2. परिपक्व हो रहे पर्ण एवं पर्णवृंत 3. पर्णवृंत विन्यास एवं पर्णदाग 4. मादा पुष्प-क्रम तथा फूलों का आड़े-तिरछे विन्यास 5. आधार से ऊपर तने पर पुराना पर्णदाग 6. सूखे बीज का अग्र एवं पृष्ठ दृश्यै 7. आधे कठोर बीजावरण से निर्मित कमंडल जिसे बहुतायत संन्यासियों द्वारा व्यवहार में लाया जाता है

समुद्र के रास्ते, समुद्रीय खारे जल एवं उसमें उत्पन्न लहरों की सहायता से हुआ होगा। परन्तु इसके जीवित फल एवं बीज का वजन (अधिकतम भार क्रमशः 42 तथा 30 किलोग्राम तक आँका गया है।) इतना अधिक होता है कि यह समुद्र के सतह पर तैर नहीं सकता सिवाय सूखे बीज के जिसमें कोई अंकुरण क्षमता नहीं होती। साथ ही समुद्र के खारे जल में घूलित लवण बीज की अंकुरण क्षमता को नष्ट कर देता है। शायद इसी कारण यह सिसेलिस के सिर्फ दो द्वीपों पर ही खोज के प्रारम्भिक काल में पाया गया था।

यह एक पृथक लिंगी, एकल, दृढ़, सदाहरित, बहुवार्षिक एवं महाकाय ताड़ वृक्ष है जिसके शीर्ष पर पर्णावली (पत्तियों का गुच्छा) चक्राकार अवस्था में शृंखलाबद्ध होती हैं। इसका तना लगभग 76.2 से० मी० व्यास, सीधा, वेलनाकार, काँटारहित पर्णदाग के साथ लगभग 34 मीटर तक ऊँचा होता है। पत्तियाँ दृढ़, हथेली या पंखे के आकार का जिसके फैलाव का व्यास लगभग 10 मीटर तथा पर्णवृंत की लम्बाई लगभग 4 मीटर तक होती हैं। पत्ती निकलने के समय रोएं से अच्छादित नलिका कोश से ढका तथा लम्बा होता है। वयस्क होने पर पर्ण पंखे के जैसा 7 से 10 मीटर लम्बा तथा 4.5 मीटर चौड़ा, पर्णखण्ड 4 से 10 से०मी० चौड़ा, किनारे खुले एवं द्विशाखित शीर्षभाग प्रायः लटकता रहता है।

नर एवं मादा पुष्पक्रम अलग-अलग वृक्षों पर बहुतायत मांसल शूक (स्पाइक), एक या एक से अधिक सहपत्र या सोथ जो बाद में काष्ठ जैसा हो जाता है, विकसित होता है। पुष्पक्रम के विकसित होने का सामान्य समय काल 11 से 45 वर्ष होंता है। तथा वृक्ष 150 वर्षो तक लगातार पुष्पक्रम विकसित कर सकता है। नर पुष्पक्रम कैटकिन के जैसा विश्व में अन्य पुष्पक्रमों की तुलना में लम्बाई में सबसे बड़ा (1 से 2 मीटर), सामान्यतः अंतस्थ एवं एकल, कभी-कभी दो या तीन की संख्या में होता हैं। सभी पुष्प दृढ़ चर्म जैसे सहपत्रों से ढके हुए चक्राकार ढंग से व्यवस्थित होते हैं। प्रत्येक नर पुष्प में एक दलपुंज जिसमें तीन खण्ड होते हैं एवं हर एक फूल में लगभग 18 से 22 पुंकेसर होते हैं।

शाखारहित मादा पुष्प-क्रम की लम्बाई लगभग 1 से 2 मीटर जिसमें एक पुष्प आड़े-तिरछे दण्ड पर आंशिक रूप में पुष्प प्याले में घुसा हुआ, तीन बाह्यदल एवं तीन पुष्पदल के साथ विकसित होता है। सामान्यतः युक्तांडपी में एक संयुक्त स्त्रीकेसर, तीन अंडप, एक या तीन वर्तिका तथा उर्ध्ववर्ती अंडाशय होता है। नर पुष्प-क्रम जैसा ही मादा पुष्प-क्रम अन्य ताड़ से विशाल होता है। इसमें परागण विभिन्न प्रकार के कीट मधुमक्खी एवं अन्य कीटों धोंधा गेको (चिपकली) के अतिरिक्त वायु एवं वर्षा के माध्यम से होता हैं। एक पूर्ण विकसित फल 40 से 50 से० मी० लम्बा, अण्डाकार, कभी-कभी नुकीला तथा अधिकतम वजन 42 किलोग्राम जिसमेः सामान्यतः एक बीज तथा असामान्य अवस्था में 2 से 4 बीज हो सकते हैं। फल का बाह्य त्वचा मांसल, चिकना तथा रेशायुक्त मध्यफल भित्ति कड़े सपाट नट (बीज) को चारों ओर से ढका रहता हैं। इसके जीवित बीज विश्व भर के समस्त पादप समुदाय के बीजों में सबसे बड़ा एवं वजनदार होता है तथा अब तक इसका अधिकतम वजन 30 किलोग्राम तक आँका गया है। बीज के पूर्ण विकसित होने में 6 से 7 वर्ष का समय लगता हैं। पूर्ण विकसित बीज का भ्रूणकोष सामान्यतःनारियल के जैसे कड़ा एवं सफेद होने के बजाय जेली की तरह, मीठा एवं स्वादिष्ट होता है। भ्रूण बीज के दोनों खण्डों के मध्य में अवस्थित होता है। फल के वृक्ष से अलग होने के बाद, बाह्य त्वचा को स्वाभाविक रूप में अलग होने में लगभग 6 महीना, अंकुरण में एक वर्ष तथा उसके पश्चात् धरातल के ऊपर एक पत्ते के बनने (विकसित होने) में एक वर्ष का समयकाल लगता है। इस तरह एक पूर्ण स्वस्थ विकसित फल से सामान्य अनुकूल परिस्थितिक अवस्था में प्रथम पत्ते के विकसित होने में कुल समयावधि लगभग 2.5 (ढाई) वर्ष लगता है। अंकुरण के समय तापमान 24 से 32 डिग्री से० ग्रेड होना चाहिए। अंकुरण के उपरान्त निकलने वाले बीजपत्रक नालिका वृंत को ''सिंकर''कहते हैं। जिसकी सामान्य लम्बाई 4 मीटर तक होती है जो पहले धीरे धीरे जमीन के अन्दर तथा पुनः धरातल से ऊपर आने में लगभग एक वर्ष का समय लेता है। भैली डी मेए में सिंकर की अधिकतम लम्बाई 10 मीटर तक आँका गया हैं। यह काफी क्षणभंगुर होता है तथा वृक्ष का आधार तैयार करते हुए तना बनाने की प्रक्रिया के पूर्व किनारे से फटता है। तत्पश्चात्, प्रथम पत्ता को बननें मे लगभग एक वर्ष का समय लगता है।

उपयोगिता :

1. आदिकाल से द्विनारियल के बीजों की दुर्लभता एवं इसमें औषधीय गुणों के कारण बहुमूल्य समझा जाता तथा राजघरानों में रखना उनके धन-धान्य होने का परिचायक रहा है।

2. इसके कठोर बीजावरण से प्याला, कटोरा तथा अन्य प्रकार के वस्तुओं के निर्माण करने के उपरान्त साधारण रूप में नक्काशिँया कर या उसके ऊपर सोने-चाँदी तथा बहुमूल्य रत्न से सजाकर प्रयोग किया जाता रहा है।

3. मालद्वीप में इसके मीठे जल मछली एवं भात के साथ खाते समय पीना अत्यधिक पसन्द करते हैं।

4. भ्रूणकोष शक्तिवर्धक तथा विष नाशक होता है एवं घातक ज्वर को ठीक करने के साथ-साथ अन्य बिमारियों जैसे उदरशूल, लकवा, चिंता, मधुमेह, इत्यादि के उपचार में इसका सेवन किया जाता रहा है।

5. प्रजाति वनस्पति विज्ञान के अनुसार इसके बीजावरण का उपयोग एशिया में एक महत्वपूर्ण जड़ी-बूटी औषधि जैसे स्थानीय लोंगों द्वारा ''प्रबल उत्तेजक''(कामोद्दीपक) के रूप में वृहत पैमाने पर उपयोग किया जाता रहा है।

वृक्ष के विलुप्त होने का कारण

द्विनारियल के वृक्षों का सिसेलिस से विलोपित होने के कारण कुछ इस प्रकार हैं :

* जंगल की आग एवं बढ़ते पर्यटन से इसके वासस्थान का क्षतिग्रस्त होना।

* फलों के पूर्ण विकसित होने से पहले व्यवसायिक स्तर पर उपयोग।

* फलों के पूर्ण विकसित होने में अत्यधिक समयकाल का लगना।

* जीवित बीजों के अंकुरण होने एवं पौध तथा वृक्ष तैयार होने में कमी होना।

* समुद्र के खारे (लवणयुक्त) जल से बीजों की अंकुरण क्षमता का नष्ट होना।

वृक्ष का भारतीय वनस्पति उद्यान में संरक्षण

इस अद्भुत् विशालकाय एवं सर्व गुण सम्पन्न वृक्ष, जिसकी संख्या सामान्य से काफी कम हो चुकी है, को संरक्षण हेतु सन् 1894 ई० में इसके एक पौध को भारतवर्ष के रायल वनस्पति उद्यान (जिसे आज भारतीय वनस्पति उद्यान के नाम से जाना जाता है) में एक विशिष्ट प्रकार के अष्टकोण विशाल ताड़ गृह के मध्य में लगाया गया था। आज 114 वर्ष बाद भी वह पौधा, वृक्ष के रूप में स्वस्थ एवं जीवित अवस्था में इस उद्यान में संरक्षित है। पौध तथा वृक्ष को उष्णकटिबंध बरसाती वन जैसा वातावरण प्राप्त हो इसके लिए विशाल ताड़ गृह में समय-समय पर विभिन्न प्रकार के पौधों को जो विभिन्न भोगोलिक क्षेत्रों में होते हैं लगाया गया। यह क्रम अभी भी जारी है। इस प्रकार उक्त ताड़ गृह में लगभग 100 से अधिक प्रकार के ताड़ जिसमें से कुछ अपने वासस्थान पर संकटग्रस्त अवस्था में है। जैसे ऐरेका नागानसिस, ऐरेंगा एंगलेरी, एस्ट्रोकेरीयम मैक्सीकेनम, बेनटिकिया नीकोबारीका, कैलामस अण्डामैनिकस, लिकुला पेल्टाटा, लिमिस्टोना जेन्कीन्सीयाना, ऑरविग्नय कीहुने, रोपेलोबल्लासटे अगस्टा को लगाया गया। इसके अतिरिक्त अन्य पौधों के साथ-साथ वर्डनेस्ट फर्न जैसे ऐसप्लेनियम नाइडस, सिलेजिनेला, रोफीडोफोरा डायकरसिवा, सायकस सरसिनेलिस, सायकस रम्फाई, मिस्टिका फरेगरेन्स एवं अन्य पौधों को लगाया गया। आवश्यकतानुसार सूर्य की रोशनी अन्दर प्रवेश करे एवं अन्दर का तापमान एवं आर्द्रता में अतिशीघ्र बढोतरी एवं पतन न हो, दो प्रकार की लताओं जैसे एन्टीगोनॉन लेप्टोपस एवं पोराना पैनीकूलाटा को लगाया गया है। वृक्ष प्राप्त अनुकूल वातावरण में पूर्ण-रूपेण स्वस्थ है जिसकी उँचाई सिसेलिस में अवस्थित 34 मीटर वाले वृक्ष की तुलना में अभी सिर्फ एक तिहाई भाग (12 मीटर) का है।

सन् 2006 में एक पुष्पक्रम के निकलने के बाद यह ज्ञात हुआ कि यह वृक्ष एक मादा वृक्ष है जिसके तने का व्यास लगभग 1.0 मीटर हैं। शीर्ष पर एक सदाहरित पर्ण गुच्छा जिसमें कुल 13 पत्ते चक्रकार अवस्था में व्यवस्थित है। पर्ण वृंत की लम्बाई 1.45 से 4.0 मीटर तथा पूर्ण विकसित पर्ण आधार की चौड़ाई 1.27 मीटर है जिसके मध्य 30 से० मी० का एक चीरा है। एक वयस्क पत्ता पंखा जैसा है, जिसकी लम्बाई 1.5 से 7.0 मीटर तथा चौड़ाई 2.5 से 3.5 मीटर आँका गया है। पर्ण खण्डों के खुलने के बाद उसकी चौड़ाई 4.0 से 10.0 से० मी० तथा द्विशाखित शीर्ष भाग सदा लटकता रहता है। सन् 2006 में विकसित एक पुष्पक्रम जिसकी लम्बाई 78.3 से० मी०, जिस पर पाँच पुष्प आड़े-तिरछे पुष्पदण्ड पर हुए। सन् 2007 में तीन पुष्पक्रम जिसकी लम्बाई क्रमशः 86.36 से० मी० (6 पुष्प के साथ), 101.60 से० मी० तथा 104.15 से० मी० (प्रत्येक में 9 पुष्प के साथ) विकसित हुए। सन् 2008 में एक पुष्प-क्रम जिसकी लम्बाई 102.0 से० मी० जिस पर आठ पुष्प विकसित हुए। सभी पुष्प-क्रम जुलाई से अगस्त के महीने में विकसित हुए। इन पुष्पों से फल या बीज अभी तक इसलिए नहीं बन पाया क्योंकि परागण हेतु यहाँ कोई नर वृक्ष नहीं है।

———

संजीवनी – मिथक या सत्य?

प्रशान्त केशव पुसालकर एवं संजय उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

संजीवनी, हिंदू महाकाव्य 'रामायण' में उल्लेखित एक रहस्यमय वनस्पति है, जिसके बारे में यह कहा जाता है कि इसमें ''मरणासन्न व्यक्ति को जीवन प्रदान करने का'' अद्भुत गुण मौजूद था। हिन्दू पुराणों में ऐसी सिर्फ दो चीजों का उल्लेख मिलता है, एक समुद्रमंथन से प्राप्त ''अमृत' और दूसरी ''संजीवनी बूटी''। आदि काल से लोग इस वनस्पति की खोज में लगे हुये हैं, परन्तु अथक प्रयासों के बाद भी इस वनस्पति का अस्तित्व एक रहस्य बना हुआ है। सदियों से चली आ रही इस वनस्पति की खोज आज भी चल रही है। उत्तराखण्ड राज्य सरकार द्वारा हाल ही में घोषित ''संजीवनी खोज दस्ता''और बाबा रामदेव के पातंजलि योग पीठ द्वारा ''संजीवनी समूह की दो वनस्पतियों की खोज का दावा'' इसी की कड़िया हैं। अनेक दावों के बावजूद ''संजीवनी'' एक अनसुलझा रहस्य है। तो फिर क्या है संजीवनी का सच? क्या यह एक काल्पनिक पौधा है या सत्य? प्रस्तुत लेख का उद्देश्य इसी बारे में विस्तृत चर्चा करना है।

संजीवनी :– इस वनस्पति का उल्लेख महर्षि वाल्मीकि की रामायण में आता है, जो कि भगवान विष्णु के सातवें अवतार प्रभु श्री राम जी की जीवनकथा है। इस कथा में महर्षि वाल्मीकि ने हिमालय के वनों एवं वनौषधियों का उल्लेख किया है। इसके अनुसार हिमालय में ऋषभ और कैलाश पर्वतों के बीच सर्वाधिक औषधीय वनस्पतियों से आच्छादित एक पर्वत था। जिसमें चार औषधीय वनस्पतियों का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। ये वनस्पतियां मृतसंजीवनी (मरणासन्न व्यक्ति को जीवन देने वाली बूटी), विशल्यकरणी (शारीरिक दर्द से मुक्ति देने वाली बूटी), सुवर्णकरणी (जिसके उपयोग से घाव भर जाते तथा त्वचा का रंग खिल जाता) एवं सन्धानी या संधानकरणी (जिसके प्रयोग से टूटी हुई हड्डियां जुड़ जाती) के नाम से विख्यात थी। इस पर्वत को ''औषधीय पर्वतेन्द्र''तथा ''महोदय'' के नाम से जाना जाता था, जिसे कालान्तर में द्रोणागिरी के नाम से जाना गया। कथा के अनुसार लंका युद्ध के दौरान जब लंकाधिपति रावण के पुत्र इंद्रजीत द्वारा उपयोग की गयी अमोघ शक्ति के प्रहार से श्रीराम जी के अनुज लक्ष्मण जी मूर्च्छित हो गए थे, तब उनके प्राण बचाने के लिए लंका के वैद्य सुषेण जी के कहने पर हनुमान जी इस वनस्पति को हिमालय पर्वत की द्रोणागिरी नामक अति उच्च पहाड़ी से लाये थे। इसके इस्तेमाल से ही लक्ष्मण जी के प्राण बचाये जा सके थे।

भारतवर्ष में एक ऐसा भी तबका है जो संजीवनी को एक काल्पनिक वनस्पति मानता है और इसके अस्तित्व को नकार देता है। तो क्या संजीवनी सही में एक काल्पनिक वनस्पति है? और अगर संजीवनी का अस्तित्व है तो फिर कहां है संजीवनी? किसी भी अनसुलझे रहस्यों को एक सिरे से नकार देना योग्य उत्तर नहीं है, और इसके बारे मे किसी नतीजे पर पहुंचने से पहले हमें कुछ पहलुओं पर ध्यान देना जरूरी है।

क्या संजीवनी विलुप्त हो गयी है?

इस संभावना को नकारा नहीं जा सकता। अगर संजीवनी ''एकस्थलीय सीमित क्षेत्रीय (Point endemic) वनस्पति थी, जो कि द्रोणागिरी पर्वत पर ही सीमित थी तो भूस्खलन, बर्फस्खलन (Avalanche, landslides) जैसी नैसर्गिक आपदाओं में इसके अधिवास के खत्म होने के साथ ही इसका विलुप्त होना स्वाभाविक है। साथ ही इस बात को भी खारिज नहीं किया जा सकता कि संजीवनी द्रोणागिरी पर्वत के सिर्फ उसी हिस्से में पायी जाती थी जो हिस्सा हनुमान जी उठाकर लंका लाये थे और ऐसी किसी भी वनस्पति, जो कि हिमालय के अति उच्च पहाड़ियों पर हिमपात वाले विशिष्ट ठण्ड अधिवास में पायी जाती है, उसका लंका के समुद्रतट पर गरम तापमान वाले प्रदेश में ज्यादा समय तक जीवित रहना असंभव है। ऐसे में उसका विलुप्त होना कोई आश्चर्यचकित करने वाली बात नहीं है।

कुछ कथाओं के अनुसार लक्ष्मण जी के ठीक होने के बाद हनुमान जी द्रोणा पर्वत के उस हिस्से को फिर से उसी स्थान पर रखकर आये थे। पर रामायण में इसका कोई उल्लेख नहीं है। यहां इस बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है कि द्रोणागिरी पर्वत के आसपास रहने वाले लोग जो द्रोणागिरि पर्वत को भगवान मानते हैं, हनुमान जी की पूजा नहीं

करते क्योंकि उनका मानना है कि हनुमान जी द्रोणागिरि पर्वत का एक हिस्सा ले गए थे। साथ ही में द्रोणागिरी पर्वत की पूजा में औरतों को इसलिए सम्मिलित नहीं किया जाता क्योंकि कथा के अनुसार एक वृद्धा स्त्री ने हनुमान जी को द्रोणागिरी पर्वत का रास्ता बताया था।

संजीवनी का सच : संजीवनी का सच जानने के लिए हमें इसके बारे में प्रचलित कुछ बातों पर विस्तृत तथा तर्कसंगत दृष्टि से प्रकाश डालना जरूरी है।

1. क्या संजीवनी के बारे में सिर्फ सुषेण वैद्य ही जानते थे?

शायद हां! अगर संजीवनी तथा उसके उपयोग की विधि सुषेण वैद्य को ही ज्ञात थी तो इस बात की पूरी संभावना है कि औषधीय वनस्पतियों के ज्ञानवर्धन के लिये कुछ समय सुषेण वैद्य ने हिमालय में गुजारा होगा और इसी दौरान उन्होंने संजीवनी की खोज की होगी।

2. सुषेण वैद्य ने संजीवनी का ज्ञान किसी और को क्यों नहीं प्रदान किया?

जैसा की हम जानतें हैं कि पुरातन काल में गुरु शिष्य की परंपरा के अनुसार गुरु अपनी खास विद्या सिर्फ अपने सबसे प्रिय व बुद्धिमान शिष्य को ही प्रदान करते थे। यह संभव है कि सुषेण वैद्य को ऐसा कोई शिष्य मिला ही न हो या फिर उस शिक्षा को प्रदान करने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गयी हो। इस बारे में कोई भी निष्कर्ष तभी निकाला जा सकता है जब हमें सुषेण वैद्य के जीवन के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त हो। इस विषय में संबंधित अधिक स्पष्टीकरण इस लेख के आखिरी हिस्से में दिया गया है।

3. क्या संजीवनी सिर्फ द्रोणागिरी पर्वत पर ही पायी जाती थी?

इसका उत्तर हम ''हां'' या ''ना'' इन दोनों तरीकों से दे सकते हैं। हो सकता है कि संजीवनी ''एकस्थलीय सीमित क्षेत्रीय वनस्पति'' रही हो, जो सिर्फ द्रोणागिरी पर्वत पर ही पायी जाती हो। या इसके हिमालय की दूसरी पहाड़ियों पर होने के बारे में सुषेण वैद्य को पता ही न हो। यह भी हो सकता है कि सुषेण वैद्य को इसके द्रोणागिरी के अलावा अन्यत्र होने के बारे में जानकारी हो भी, परंतु अन्य जगहों की तुलना में यह द्रोणागिरी पर बहुतायत में पाई जाती हो, इसलिये उन्होंने सिर्फ द्राणागिरी का उल्लेख किया हो।

4. क्या संजीवनी एक वनस्पति न होकर वनस्पतियों का समूह है?

इस संभावना को इसलिये खारिज किया जा सकता है क्योंकि रामायण में सुषेण वैद्य ने हनुमान जी को सिर्फ चमकने वाली बूटी लाने को कहा था, न कि चमकने वाली बूटियों का समूह।

5. हनुमान जी संजीवनी बूटी लाने की अपेक्षा, द्रोणागिरी का एक बड़ा हिस्सा क्यों उठा लाए?

प्रचलित कथा के अनुसार हनुमान जी संजीवनी की सही पहचान नहीं कर पाये और इसीलिए द्रोणागिरी पर्वत के एक बड़े हिस्से को उठाकर लंका ले आये जिस पर चमकने वाली वनस्पतियां मौजूद थीं। तो क्या द्रोणागिरी पर्वत पर एक से ज्यादा चमकने वाली वनस्पतियां मौजूद थी? इसके जवाब में हम यह भी कह सकते हैं कि शायद हनुमान जी ने संजीवनी की सही पहचान करने के बावजूद उस पूरे पहाड़ को ले जाने का निर्णय किया हो, क्योंकि सुषेण वैद्य के अनुसार दवा सिर्फ हरे ताजे पौधों से ही बन सकती थी और इसलिए लंका पहुंचने तक संजीवनी का ताजा रहना जरूरी था, या इंद्रजीत के द्वारा उस अमोघ शक्ति के पुनः उपयोग पर अगर संजीवनी की फिर से जरूरत पड़ती तो उसे लाने के लिये फिर से हिमालय न जाना पड़े, इसलिये वो पहाड़ का बड़ा हिस्सा उठा ले आये हों।

6. अगर संजीवनी में ''जीवन रक्षा'' का अद्‌भुत गुण मौजूद था तो उसके संरक्षण के उपाय क्यों नहीं किये गये?

संजीवनी, जो कि हिमालय की अतिउच्च दुर्गम पहाड़ियों पर हिमपात वाले ठंडे स्थानों में पायी जाती थी, उसके संरक्षण का एकमात्र उपाय था ''प्राकृतवास में संरक्षण'' (In-situ conservation)। अति उच्च हिमालय के विशिष्ट अधिवासों (habitat specific) में पायी जाने वाली वनस्पतियों को हिमालय के निचले (lower Himalaya) तथा मैदानी इलाकों में स्थित वनस्पति उद्यानों में (ex-situ conservation in Botanic Garden) संरक्षण करने के प्रयत्न आजतक सफल नहीं हो पाए हैं और उस समय प्राकृतवास के संरक्षण के बारे में सोचना असंभव लगता है।

7. क्या संजीवनी एक चमकने वाली वनस्पति थी/है?

निसर्ग में ऐसे अनेक जीव हैं जो ''जैव प्रकाश (bioluminescence)'' निर्मित करते हैं, तथा इसी की वजह से अंधेरे में चमकते हैं। रात के अंधेरे में चमकने वाले जुगनू इसकी जीती जागती मिसाल हैं। उच्च हिमालय में ऐसी चमकने वाली किसी भी पुष्पी प्रजाति (Angiosperms) का कोई उल्लेख नहीं मिलता, तो क्या चमकने वाली यह बूटी ''फफूंद (Fungi) या शैवाक (Lichen) समूह का सदस्य हो सकता है? विषुववृत्तीय वर्षा वनों में ''जैव प्रकाश'' निर्मित करने वाली फफूंदो की अनेक प्रजातियों की खोज हुयी है। परंतु अति उच्च हिमालय की पहाड़ियों पर इस सम्बन्ध में और अधिक अनुसंधान की जरूरत है।

क्या किसी चीज के चमकीले होने का, सिर्फ यही एक अर्थ है? अति उच्च हिमालय में यह अक्सर देखा गया है कि हिमपात के समय हिमकण या बर्फ रोंयेदार वनस्पतियों पर अटक जाती है, जो चांद की रोशनी में चमकती है और ऐसे में पौधे चमकीले लगते हैं। शायद इसी वजह से हनुमान जी को एक से अधिक पौधे चमकीले लगे हों, और वह संजीवनी की सही पहचान न कर पाये हों।

8. क्या संजीवनी में मृत व्यक्ति को जीवित करने का अद्‌भुत गुण था?

यह बात पूरी तरह से अविश्वसनीय लगती है, क्योंकि अगर ऐसा कोई पौधा मौजूद था तो फिर उसका प्रयोग एक ही बार क्यों किया गया? पुराणों में राक्षसों के संहार की अनेक कहानियां हैं, तो फिर उनको बचाने के लिए इसका इस्तेमाल क्यों नहीं हुआ? अगर यह भी कहा जाय कि इसके बारे में सिर्फ सुषेण वैद्य को ही जानकारी थी तो उन्होंने रावण के भाई, पुत्र या बड़े योद्धाओं जो लंका युद्ध के दौरान मारे गये थे उनको जीवित करने के लिए इसका इस्तेमाल क्यों नहीं किया? नैसर्गिक नियमों के अनुसार ''मृत्यु अटल सत्य है'' तो इस नियम को चुनौती देने वाली किसी वस्तु का अस्तित्व क्या सत्य हो सकता है? मृत व्यक्ति को जीवित करने वाली कोई भी वस्तु अगर काल्पनिक है तो फिर संजीवनी का सच क्या हो सकता है? क्या संजीवनी के सच के बारे में जानने के लिए हमें किसी और दिशा में सोचने की जरूरत है? शायद हां, और इसके बारे में निम्नांकित तर्क दिया जा सकता है।

इन्द्रजीत ने लक्ष्मण जी पर ऐसे तीर से प्रहार किया हो जिसकी नोंक अनजान और घातक जहर से युक्त थी, और इस जहर के प्रभाव को खत्म करने की शक्ति संजीवनी बूटी में थी।

अभी तक के सोचे गये विकल्पों में इस विकल्प में सबसे ज्यादा तथ्य लगता है। इसके अनेक कारण हैं–

1. जिस विशिष्ट जहर का इस्तेमाल इंद्रजीत ने अपने तीरों की नोंक पर किया था वह जहर किस चीज से बना था यह सिर्फ इंद्रजीत ही जानता था। साथ ही इस जहर का असर इतना घातक था कि इसका असर होने पर जान बचाना असंभव था और इसीलिए इसको ''अमोघ शक्ति'' कहा गया हो।

2. लक्ष्मण जी पर प्रहार करने के लिए इस्तेमाल किया गया जहर इंद्रजीत की खोज हो। इस जहर के शरीर पर होने वाले घातक परिणामों के लक्षणों को देखकर सुषेण वैद्य ने इसकी तोड़ संजीवनी में पायी थी, पर उन्हें खुद भी यह बात पता नहीं थी की वो जहर किससे बना था। इसलिये इंद्रजीत की मौत के साथ इस जहर का राज काल के सीने में दफन हो गया, और साथ ही उसके बाद ''संजीवनी'' के इस्तेमाल की जरूरत नहीं पड़ी। इस बात से यह भी स्पष्ट होता है कि रामायण से पहले और रामायण के बाद ''संजीवनी'' का उल्लेख क्यों नहीं हुआ?

3. जहर के प्रभाव से सक्ष्मण जी के शरीर पर जो प्राथमिक लक्षण देखे गए वो किसी भी ज्ञात जहर के प्रभावों से इतने भिन्न थे कि उसकी पहचान करना सुग्रीव के वैद्यों के लिये असम्भव था। श्री राम जी के सहयोगी राजा विभीषण जो कि इंद्रजीत के चाचा थे तथा उसके अस्त्रों से भली-भांति परिचित थे और शायद इंद्रजीत के विद्याभ्यास के दौरान इस जहर के प्रयोग, प्रभाव तथा सुषेण वैद्य द्वारा किये जाने वाले उपायों से वाकिफ थे। और इसीलिए उन्होंने श्रीराम जी को लंका से सुषेण वैद्य को बुलाने की सलाह दी हो।

4. प्रहार से घायल लक्ष्मण जी की हालत इतनी नाजुक थी कि उनको बचाने के लिए और उनकी गिरती हालत को स्थिर बनाए रखने के लिए सुषेण वैद्य द्वारा उन पर सतत् नजर रखना जरूरी था और इसीलिये सुषेण वैद्य हनुमान जी के साथ ''संजीवनी'' लाने हिमालय नहीं गए।

5. सुषेण वैद्य द्वारा हनुमान जी से यह कहना कि उन्हें संजीवनी सूर्योदय तक लानी होगी इस बात की ओर इशारा करता है कि लक्ष्मण जी के शरीर पर ऐसी किसी चीज का प्रभाव था जो धीरे-धीरे फैलती जा रही थी और ऐसे में एक निश्चित समय के भीतर (सूर्योदय से पहले) उसका सही उपचार नहीं किया जाता तो उनको बचाना मुश्किल था। प्रथम दृष्टि में यह बात किसी जहर के प्रभाव की ओर इंगित करती है।

हिमालय के औषधीय वनस्पतियों के *खजाने में पिक्रोराइजा कुरूआ, रूबिया मंजिष्ठ, नारडोस्टेकिस जटामांसी* जैसी अनेक प्रजातियां हैं जो स्थानीय लोगों के मतानुसार जहर के असर को खत्म करने के लिये उपयोग में लाई जाती हैं। पर इसकी सत्यता परखने के लिये गहन अनुसंधान की आवश्यकता है। सदियों से चले आ रहे ''संजीवनी'' के शोध अभियान में तीन वनस्पतियों का प्रमुख रूप से उल्लेख आता है।

1. *सिलेजीनेला ब्रायोप्टेरिस (Selaginella bryopteris)* : पर्णांग समूह की इस वनस्पति में अनेक औषधीय गुणों (पिलिया से राहत, प्रसवपीड़ा को कम करना तथा उष्माघात से मुक्ति, आदि) के बावजूद इस वनस्पति के संजीवनी होने पर इसलिये संदेह होता है कि यह वनस्पति हिमालय के साथ ही दक्षिण भारत में भी पायी जाती है तो फिर इसे लेने के लिये हनुमान जी इतनी दूर हिमालय क्यों जाते? वह तो दक्षिण भारत की पहाड़ियों से भी लाई जा सकती थी। जब सुषेण वैद्य को हिमालयी क्षेत्र की वनस्पतियों का इतना ज्ञान था तो अपने आस-पास के क्षेत्रों की वनस्पतियों का ज्ञान तो अवश्य होगा ही। न तो यह वनस्पति चमकती है और न ही इसमें ऐसा कोई अद्‌भुत गुण पाया गया है, जो मरने वाले व्यक्ति को जीवन दे सके। इसे ''संजीवनी'' के नाम से पहचान प्राप्त होने की सबसे बड़ी वजह यह है कि सूखने के बाद भी जल के सानिध्य में आने से यह पुनर्जीवित हो सकती है ।

दो और वनस्पतियां, जिसके संजीवनी होने का दावा हाल ही में हरिद्वार के पातंजलि योगपीठ द्वारा किया गया वह है *साउसुरिया गोसिपिफोरा (Saussurea gossypiphora)* एवं प्ल्यूरोस्पर्मम कॅन्डोली *(Pleurospermum candolii)*।

2. *साउसुरिया गोसिपिफोरा* : सूरजमुखी कुल की इस रोयेंदार वनस्पति को स्थानीय लोग ''कस्तुरा कमल'' के नाम से जानते हैं तथा उत्तराखण्ड में इसको पवित्र वनस्पति माना जाता है। 10-30 सेमी. ऊंची यह प्रजाति 4,000-5,400 मीटर की ऊंचाई पर भारत (जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम), चीन, नेपाल तथा भूटान में पायी जाती है।

3. *प्ल्यूरोस्पर्मम कॅन्डोली* : धनिया कुल की इस सगन्ध वनस्पति में पुष्प सहपत्र सफेद, दुधिया तथा हल्के पीले रंग के चमकीले किनारे वाले होते हैं। 10-40 सेमी. ऊंची यह प्रजाति 3,500-5,200 मीटर की ऊंचाई पर भारत (जम्मू काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड), पाकिस्तान, नेपाल तथा चीन में पायी जाती है।

ये दोनो प्रजातियां हिमालय की सीमित क्षेत्रीय वनस्पतियां है तथा हिमालय के स्थानीय लोगों के अनुसार इनका प्रयोग मूर्छित व्यक्ति को सचेत करने, श्वांस सम्बंधी बीमारी को ठीक करने और शारीरिक दर्द से छुटकारा पाने के लिये सदियों से करते आ रहे हैं। पर न ही ये वनस्पतियां संजीवनी के नाम से जानी जाती हैं और न ही इनमें संजीवनी के (तथाकथित) अद्‌भुत् गुण होने की पुष्टि हुई हैं। देश के अनेक वनस्पति विज्ञानियों ने इसके संजीवनी होने के दावों को पूरी तरह से खारिज कर दिया है। संजीवनी की खोज तथा उपर उल्लेखित वनस्पतियों के औषधीय गुणों की सत्यता की जांच पर अनुसंधान जारी है।

संजीवनी की खोज शायद इसलिए भी अधूरी है क्योंकि हमारी सोच सीमित है। अगर लेख में उल्लिखित विविध पहलुओं पर ध्यान देते हुये बहुविकल्पीय खोज और अनुसंधान करें तो एक दिन हम ''संजीवनी'' को प्राप्त करने में सफल हो जायेंगे।

———

एरेबिडाप्सिस थैलियाना–पादप जगत का *ड्रोसोफिला*

मनोज ई. हेम्ब्रम एवं बृजेश कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

आणविक जैव विज्ञान, विज्ञान की आधुनिकतम एवं नवीनतम शाखा है। विश्व भर में अनेक शोध संस्थानों में इस पर कार्य हो रहा है। आणविक जैव विज्ञान शाखा में जीवित कोशिकाओं के अन्दर पाये जाने वाले कोशिकांगों एवं केन्द्रक में मौजूद डीं. एन. एन, आर. एन. ए., प्रोटीन एवं अन्य अन्य वृहद कार्बनिक अणुओं आदि का अध्ययन किया जाता है।

इस शाखा में अनेक पादप प्रजातियों पर शोध कार्य चल रहा है। विशेषकर पादप कोशिकाओं में मौजूद डी. एन. ए. की आणविक संरचना को समझने का प्रयास किया जा रहा है। डी. एन. ए. अणुओं का आकार काफी वृहद होता है, और सामान्यतः यह कई छोटे-२ सक्रिय एवं अक्रिय हिस्सों में बंटा होता है। इसका सक्रिय हिस्सा जो किसी विशेष प्रोटीन की रचना या निर्माण के लिए उत्तरदायी होता है, जीन कहलाता है। किसी भी कोशिका की सम्पूर्ण जानकारी उसके डी. एन. ए. अणु में मौजूद जीनों पर निर्भर करती है। मसलन, किसी पौधे का आकार, रंग, गन्ध, सब कुछ, उसके जीनों पर निर्भर करता है।

यदि किसी पौधे की जीनिक संरचना को समझ लिया जाय तो उस कोशिका की सम्पूर्ण जानकारी हमें प्राप्त हो सकती है। इस जानकारी का प्रयोग हम जैव प्रौद्योगिकी द्वारा जीनों के अध्ययन एवं उसके उपयोग में कर सकते हैं। हम प्रयोगों में किसी पौधे में पाये जाने वाले उपयोगी जीन को किसी दूसरे पौधे के जीन के साथ जोड़कर किसी अच्छे परिणाम की आशा कर सकते हैं। उसी प्रकार हानिकारक जीनों को उस शृंखला से हटाकर अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु इसके लिये आवश्यकता है पादप कोशिकाओं की जीनय संरचना को समझने एवं उसका आधारी ऑकड़ा तैयार करने की। किसी पौधे का डी.एन.ए. अणु अत्यंत जटिल होता है और इसका डाटा बेस तैयार करने की प्रक्रिया भी काफी जटिल एवं खर्चीली है तथा इसमें समय भी काफी लगता है।

इस समस्या को हल करने के लिये वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे पादपों को आदर्श प्रतिरूप के रूप में चुना जिस पर आसानी से वैज्ञानिक परीक्षण किये जा सके एवं उनसे शीघ्र ही परिणाम प्राप्त किया जा सके।

पादप विज्ञान के क्षेत्र में पादप प्रारूपों का प्रयोग काफी पुराना है। दशकों पहले विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा पादप कायिकी एवं वृद्धि के अध्ययन के लिये पादप प्रारूपों जैसे *एवीना, जिया, मेज, क्लोरेला,* आदि का प्रयोग करके हार्मोनों एवं प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया का पता लगाया गया था। आणविक जैव विज्ञान शाखा में जीन की रचना एवं क्रियाविधि जानने के लिए कई पौधों, जैसे *जिया मेज, ओराइजा सटाइवा,* आदि को अपने प्रयोगों के लिये चुना गया और इन पर अनेक प्रायोगिक परीक्षण किये गये जिसके सकारत्मक परिणाम सामने आये ओर इनसे प्राप्त परिणामों को दूसरे अन्य कई पौधों पर प्रभावी ढंग से लागू किया गया है। आदर्श पादप प्ररूपों के इसी क्रम में ***ऐरेबिडाप्सिस थैलियाना*** का नाम आजकल एक आदर्श पादप प्रारूप के रूप में काफी गम्भीरता से लिया जा रहा है।

एरेबिडाप्सिस थैलियाना ब्रेसिकेसी कुल का वार्षिक, शाकीय पौधा है, जो मूलतः एक खर-पतवार के रूप में जाना जाता है। इस पौधे के ऊपर कई वैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण जीव विज्ञान सम्बन्धी शोध कार्य किये, इनमें जार्ज रेडाई का नाम काफी प्रमुखता से आता है। सन् 1980 के दौरान कई जैव-रसायन, पादप कार्यिकी एवं आनुवंशिकी के प्रयोग इस पौधे पर किये गये। इन परिणामों की सफलता एवं सार्थकता ने इस पौधे को समस्त आणविक जीव वैज्ञानिकों के बीच प्रसिद्ध कर दिया। क्योंकि इस पौधे पर जितने भी परीक्षण किये गये उसके परिणामों को अन्य पुष्पी पादपों के लिये भी विश्वसनीय पाया गया। इस कारण से इसे ''पादप जगत का *ड्रोसोफिला*'' भी कहा जाता है।

आंग्लभाषा में 'माऊस ईअर क्रेस' के नाम से प्रसिद्ध यह पौधा अपने निम्नांकित गुणों के कारण आणविक जैव विज्ञान में शोध कार्यो के लिये सर्वथा उपयुक्त है–

1. **लघु आकार** – इसका आकार छोटा होने के कारण इसे सुगमता पूर्वक अधिक संख्या में पादप वृद्धिकक्षों या शीत हरित गृहों मे उगाया जा सकता है।

2. **लघु जीवन-चक्र** –इसका जीवन-चक्र कम समय में पूर्ण हो जाता है, बीजों के अंकुरण से लेकर नये बीजों के निर्माण में केवल 6-8 सप्ताह का समय लगता है।

3. **सूक्ष्म बीज** – इसके प्रत्येक बीज का वजन 20 माइक्रो ग्राम होता है, और एक पौधे से लगभग 20,000 बीज प्राप्त किये जा सकते हैं। इन बीजों को सरलता से संग्रहित किया जा सकता है, एवं इससे बड़ी संख्या में पौधों को उत्पन्न किया जा सकता है। यह बीज पराजीनीय प्रोटीन फैक्ट्री के रूप में कार्य कर सकते हैं।

4. **आसान उत्परिवर्तन**–इसमें परीक्षणों के दौरान आसानी से रासायनिक या विकिरण उत्परिवर्तकों द्वारा उत्परिवर्तन कराया जा सकता है।

5. **आसान प्रायोगिक सामग्री** – आणविक जैव विज्ञान की तकनीकों का इस पर आसानी से प्रयोग किया जा सकता है।

6. **लघु जीनोम आकार** – इसका जीनोम 125 मेगा क्षार युग्मों से बना होता है। जीनोम किसी भी जीवधारियों की कोशिकाओं में उपस्थित आधारभूत गुणसूत्रों (n) के समूह में उपस्थित कुल जीन होते हैं। जो एकल पितृ या मातृ कोशिका ईकाई द्वारा रूप में प्राप्त किये जाते हैं।

ऐरेबिडाप्सिस जीनोम परियोजना –

एरेबिडाप्सिस थैलियाना की आणविक जीव विज्ञान के क्षेत्र में उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इसके जीनोम की संरचना को जानने एवं उसकी कार्य प्रणाली को समझने के लिये कई देशों की प्रयोगशालाओं, जिनमें बेल्जियम, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, नीदरलैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, आदि प्रमुख हैं, में अनेक परीक्षण किये गये। इन सब के सम्मिलित एवं अथक प्रयास से दिसम्बर 2000 में *ऐरेबिडाप्सिस थैलियाना* पहला पादप एवं तृतीय बहुकोशिकीय जीवधारी था जिसके जीनोम की सम्पूर्ण कड़ियों का निर्धारण किया जा चुका था। इस परियोजना में जीनोम के 115.4 मेगा क्षारयुग्मों अर्थात् 95 जीनोम को ही अनुक्रमित किया गया था जिसमें विशेष बात यह थी कि इस परियोजना में सारे यूक्रोमैटिन डी.एन. ए. को ही लिया गया था। यह डी. एन. ए. ऐसे आनुवंशिक पदार्थ होते हैं जिन्हें विशिस्ट अभिरंजकों द्वारा अंतरावस्ता (इन्टरफेज) के दौरान रंगा नहीं जा सकता है जबकि यह हिस्सा कई जीनों द्वारा घिरा रहता है।

ऐरेबिडाप्सिस थैलियाना के जीनोम में 25,498 जीन पाये गये जो विभिन्न प्रोटीनों के निर्माण के लिए उत्तरदायी होते हैं। यह संख्या कोशिकीय जीवधारियों की तुलना में छोटी है क्योंकि इसके जीनोम में लघु एवं अल्प गैर अनुदि इन्ट्रोन होते हैं।

किसी कोशिका के अन्दर प्रत्येक प्रोटीन अणु के निर्माण की प्रक्रिया उसके केन्द्रक में स्थित गुणसूत्रों पर व्यवस्थित डी.एन.ए. के एक खण्ड द्वारा कूट-अनुवादित होती है। जीनोम परियोजनाओं का मुख्य उद्देश्य है कि कई आदर्श प्ररूप पादपों द्वारा सम्पूर्ण डी. एन. ए. के अनुक्रम को प्राप्त किया जाये जिससे पादपों के अन्दर उपस्थित सभी प्रोटिनों अणुओं की पहचान की जा सके। इस प्रकार यदि प्रत्येक जीन का नियन्त्रण एवं प्रकार का पता चल जाये तो यह वैज्ञानिकों के लिए एक महत्वपूर्ण औजार सिद्ध होगा। इस क्रम में ''एरेबिडाप्सिस जीनोम अनुक्रम परियोजना'' एक महत्वपूर्ण परियोजना सिद्ध होगी।

एरेबिडाप्सिस थैलियाना (स्रोत –इन्टरनेट)

फूल से खुशबू खफा-खफा है.....

जगदीश लाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

आशा है आप सबकी हिन्दी फिल्म संगीत में रुचि अवश्य ही होगी और हाल में प्रदर्शित फिल्म ''जोधा-अकबर'' के गीत की ये पंक्तियां :

कहने को जश्न बहारां है, इश्क ये देख के हैरां है,
फूल से खुशबू खफा-खफा है गुलशन में.....

अवश्य ही सुनी होंगी। ऐसे ही एक फूल, जिससे खुशबू खफा-खफा है, के बारे में आपको बताते हैं।

फूल शब्द सुनते ही हम उसके पर्याय सुन्दरता एवं सुगन्ध में खो जाते हैं। परन्तु सुन्दरता के साथ यदि गंध हो और वह भी सड़े मांस जैसी तो आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। *स्टेपेलिया जाइजेनशिया* एक ऐसा ही पौधा है जिसके फूल बहुत बड़े और सुन्दर होते हैं परन्तु दुर्गन्ध से भरे होते हैं।

स्टेपेलिया जाइजेनशिया का पौधा एक सुन्दर फूल के साथ

स्टेपेलिया एक छोटा पौधा है जो कैक्टस जैसा दिखता है परन्तु वास्तव में यह मदार कुल *एस्कलेपीडिएसी* का बहुवर्षीय मांसल शाक है। इसमें पत्तियां नहीं होती तथा इसका तना 10 - 15 से.मी. लम्बा होता है। इसकी शाखायें चतुष्कोणीय और चपटी होती हैं जिसके किनारे पर छोटे-छोटे दाँत होते हैं। यह पौधा फूल रहित होने पर भी सुन्दर दिखता है तथा गमलों में आसानी से उगाया जा सकता है। इसमें 2 - 4 कलियां सितम्बर-नवम्बर महीनों में आती हैं और लगभग एक सप्ताह के पश्चात खिलती हैं। बस यही समय है जब देखने वाला रोमांचित हो उठता है और अनायास ही कह उठता है अरे वाह।

आइये, आपको पहले इसके सुन्दर और बड़े-बड़े फूलों के बारे में बतायें। कलियों का आकार पंचभुजी होता है और व्यास लगभग 7 से. मी. होता है। पूर्णतया खिलने पर पंखुड़ियों का पूरा फैलाव 28-30 से. मी.होता है। है यह आश्चर्य की बात, पौधे से बड़ा उसका फूल। पंखुडियों की सतह और किनारों पर 5 - 7 मि. मी. के रोयें होते हैं तथा सतह पर भूरे रंग की अधूरी रेखायें होती हैं जो इसकी सुन्दरता को और बढ़ा देती है। पुष्प जननांग का भाग गहरे बैगनी रंग का होता है। फूलों का जीवन काल केवल 2 - 3 दिनों का होता है।

स्टेपेलिया वंश का नामकरण लीनियस ने 1753 में एम्सटर्डम के एक डाक्टर जोहानेस बोडियस फान स्टेपल थियोफेस्टास (फादर आफ बाटनी) के भाष्यकार के सम्मान में किया था जिनकी मृत्यु वर्ष 1631 में हुई थी।

इस वंश की 75 जातियां हैं जो विश्व के गर्म देशों में पाई जाती हैं तथा कई देशों में इन्हें बाग-बगीचों में भी उगाया जाता है। भारत में इसकी दो जातियां पाई जाती हैं : *स्टेपेलिया जाइजेनशिया* तथा *स्टेपेलिया ग्रैन्डीफ्लोरा* जो क्रमशः पंजाब, तमिलनाडु आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र और तमिलनाडु में पायी जाती हैं।

कायिक जनन के माध्यम से इस पौधे को आसानी से उगाया जा सकता है। पौधे की शाखाओं को तोड़कर अलग से बालू में लगाने से शीघ्र ही इसमें जड़ें उत्पन्न हो जाती हैं और नये पौधे बन जाते हैं।

इस पौधे में परागण भी रोचक और अनोखा है। फूलों में सड़े मांस की गंध को भोजन की उपस्थिति समझ कर एक विशेष प्रकार की गहरे नीले रंग की बड़ी मक्खी जिसका नाम *काइसोमिया मेगासिफैला* है इसकी ओर आकर्षित होती है और फूल के जननांग वाले भाग के पास अपने लार्वा छोड़ती है और ऐसा करते समय कभी-कभी परागण हो जाता है। लार्वा भोजन की तलाश में इधर-उधर घूमते हैं परन्तु भोजन न मिलने के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है। ऐसे परागण को सैप्रोमाओफिली कहते हैं अर्थात गंध के धोखे से परागण की विधि, जिसमें पौधे को तो लाभ होता है परन्तु परागण के लिए आये कीट को कोई लाभ नहीं होता। परागण के बाद फूल गंधहीन हो जाता है।

साइजीजियम कुमीनी

मधुका लोंगिफोलिया

मुरैया कोएनीगी

ब्युटीया मोनोस्परमा

स्टीविया एण्डीना

वजाउल मफासिल (जोड़ों का दर्द) के यूनानी उपचार में प्रयोग की जाने वाली वनस्पतियाँ

रमेश कुमार एवं नईम अंसारी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

वजाउल मफासिल (रूमेटाइड आर्थराइटिस) विश्व में एक जटिल स्वास्थ्य सम्बन्धित रोग के रूप में उभर रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ों के अनुसार दुनिया की 0.8% आबादी इस रोग से ग्रसित है जो संसार पर पड़ने वाले गैरघातक भार का इक्त्तीसवां सबसे मुख्य कारण है।

वजाउल मफासिल मनुष्यों की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और खुशहाली पर प्रभाव डालता है। यह प्रायः मनुष्यों की आजादी छीन लेता है और उनके पारिवारिक सदस्यों तथा उनकी परवाह करने वालों के जीवन को तितर - बितर कर सकता है।

जन्जाबील : *जिन्जीबर ऑफिसीनेल*

आर्थराइटिस के शारीरिक लक्षणों में चलने पर जोड़ों मे दर्द, सूजन व दुखन और थकान शामिल हैं इन्हीं लक्षणों के कारण वजाउल मफासिल के पीड़ित शारीरिक रूप से बाकी जनसंख्या के मुकाबले में ज्यादा कमजोर होते हैं। इन्ही कारणों से और दूसरे रोग होने की सम्भावना बनी रहती है जैसे हृदय रोग, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, आंत कैंसर, वजन का बढ़ना, अवसाद और चिंता। वजाउल मफासिल के संक्रमणों से जीवन काल कम हो सकता है और इसके साथ मानसिक तनाव, अवसाद, क्रोध और चिंता भी जीवन का हिस्सा बन जाते हैं। कभी-कभी दर्द असहनीय हो जाता है और मनुष्य मानसिक संतुलन खो बैठने के साथ - साथ अपना स्वमान (सैल्फ इमेज) खो बैठता है।

असगंध : *विड्थेनिया सोम्निफेरा*

यूनानी चिकित्सा में इस रोग पर सबसे पहले किताब-उल-मफासिल नामक पुस्तक 460 ई पू बुकरात (हिप्पेकेटिस) द्वारा लिखी गयी थी। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में उन्नति होने के बावजूद चिरकालीन चरण में इसका कोई इलाज नहीं है।

आधुनिक अनुसंधान से मालूम होता है कि वजाउल मफासिल के चिरकालीन चरण में उसके जल्दी निदान और प्रबन्धन से रोग के परिणामों में कमी आ सकती है। औषधीकरण, शिक्षण, शारीरिक प्रतिक्रिया और शल्य चिकित्सा नीति अपनाने से काफी अन्तर लाया जा सकता है। इसके अलावा उपलब्ध एलौपैथिक चिकित्सा प्रणाली की दर्द निवारक स्टीराईड ओर कार्टिको स्टीराईड दवा लेने से जटिल दुष्प्रभाव होते हैं।

यूनानी चिकित्सा में रूमटाइड आर्थराइटिस के उपचार के लिए इलाज बिलगिजा (डाइटो थैरापी) इलाज बिद दवा (फारमेको थैरापी) और इलाज बिद तदबीर (रेजिमेंटल थैरापी) की सिफारिश की गई है।

यूनानी चिकित्सा में वजाउल मफासिल के उपचार में प्रयोग किये जाने वाली मुख्य वनस्पतियां निम्न प्रकार हैं।

यूनानी नाम	वनस्पतिक नाम	कुल	उपयोगी भाग
सुरंजान शीरी	*कोलचीकम आरिन्टेल*	लीलिएसी	कन्द
जन्जाबील	*जिन्जीबर ऑफिसिनेल*	जिन्जीबरेसी	राईजोम
असगंध	*विथानिया सोमनिफेरा*	सोलेनेसी	जड़
रतूल - नजान	*अल्पिनिया गलेन्गा*	जिन्जीबरेसी	राईजोम
तुरबुद	*ऑपरकुलिना दुपरथम*	कनवोल्वुलेसी	जड़
गुल-ए-बाबुना	मैट्रीकेरिया चमेमिला	एसट्रेसी	पत्तियां, जड़
मजीठ इरानी	*रूबिया भंजिष्ठ*	रूबिएसी	जड़
कायफल	*मिरिका नागी*	मिरिकेसी	जड़, छाल
सदकूफी	*साइप्रस रोटन्डस*	पोएसी	कन्द
करनफल	*साइजीजियम् एरोमेटिकम*	मिर्टेसी	जड़, छाल
नर्कचूर	*जिन्जीबर जीरमबेट*	जिन्जीबरेसी	राईजोम
ताज	*सिन्नामोमम कासिया*	लोरेसी	छाल
वाज	*एकोरस कैलामस*	एरेसी	राईजोम
गुल-ए-टेसू	*ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*	फेबेसी	फूल

दीर्घकालीनता में वजाउल मफासिल के उपचार के लिये लम्बे समय की आवश्यकता होती है। इसमें व्यायाम और औषधियों का इस्तेमाल होता है। जल्दी से जल्दी तथा नियमित उपचार ही जोड़ों को खत्म होने से बचा सकता है।

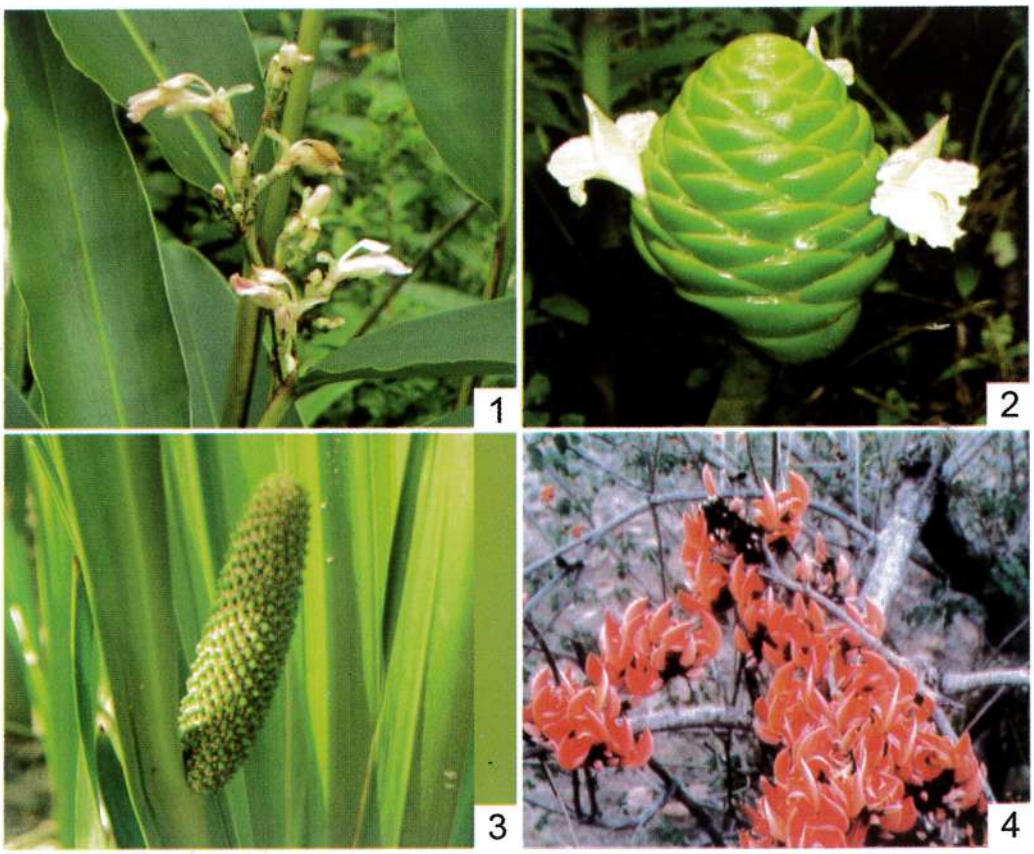

1. रतूल-नजान : *अल्पिनिया गलेन्गा* 2. नर्कचूर : जिन्जीबर जीरमबेट 3. वाज : *एकोरस कैलामस* 4. गुल-ए-टेसू : *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*

लोक वनस्पति विज्ञान (ETHNOBOTANY) : एक अवलोकन

हरीश सिंह 'भुजवान'
केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला, हावड़ा

लोक वनस्पति विज्ञान शब्द की उत्पत्ति लोक (Folk/Ethnic) + वनस्पति विज्ञान (Botany) अर्थात् मूल निवासियों की वनस्पति जानकारी से हुई है। 'इथनोबोटनी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1895 ई० में जान विलियम हार्शबर्गर ने आस्ट्रेलिया के मूल निवासियों द्वारा वनस्पतियों के उपयोग के अध्ययन के लिए किया था। तत्पश्चात् इस शब्द को 'एबओरिजिनल बोटनी', 'नृवनस्पति विज्ञान' जैसे नाम देकर इनकी अलग-अलग परिभाषायें दी गयी। साधारण शब्दों में लोक वनस्पति विज्ञान को इस प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं ''मनुष्य जाति का अपने चारों ओर पाये जाने वाले वनस्पतियों से सीधे पारम्परिक संबंध (उपयोगी, अनुपयोगी, सामग्री, संस्कृति, सभ्यता, धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, आर्थिक आदि) के अध्ययन को लोक वनस्पति विज्ञान कहते हैं।'' यह सर्व विदित है कि सदियों से मनुष्य अनेक उपयोगी वस्तुएँ जैसे खाद्य, औषधि, रेशे, चारा, ईंधन, आदि पेड़-पौधों से पारम्परिक रूप से प्राप्त करता चला आ रहा है। आदिकाल से मानवजाति ने अपने अन्तर ज्ञान, अनुभवों, प्रयोग, त्रुटियों, विश्लेषणों एवं उपयोगों के आधार पर उपयोगी व अनुपयोगी वनस्पतियों की पहचान की है। उसने जंगली जीव-जन्तुओं और पशु-पक्षियों द्वारा खाये जाने वाले पेड़-पौधों को देखकर, तथा स्वयं कुछ पौधों को चख कर खाद्य योग्य पौधों की पहचान की, जिनको बाद में कृषि वैज्ञानिकों ने शोध एवं तकनीकी प्रक्रिया द्वारा वर्तमान कृषि विज्ञान में शामिल किया। इसी प्रकार उसने औषधीय एवं अन्य उपयोगी पौधों की खोंज भी अपने अनुभवों, प्रयोगों विश्लेषण एवं उपयोगों से किया। इस तरह से मानव जाति ने यह सुनिश्चित किया कि कौन सी वनस्पति किस उपयोग के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए तथा पौधों का कौन सा भाग क्यूँ कब, कितना और कैसे प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार से प्राप्त यह ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मौखिक रूप से चलता गया और अगली पीढ़ी के लोग इस ज्ञान का उपयोग अपनी सुविधा व इच्छानुसार कर मौखिक रूप से अपनी अगली पीढ़ी को बताते चले गए। समय के बदलते चक्र के साथ उनमें से कुछ बताने वाला व कुछ सुनने वाला भूलता चला गया। आज स्थिति यह हो गयी कि इस प्रकार का पारम्परिक ज्ञान न केवल शहरी क्षेत्रों से अपितु ग्रामीण एवं जन-जातीय क्षेत्रों से भी ज्ञानी बुजुर्गों के मरणोपरान्त धीरे-धीरे विलुप्त होता जा रहा है। अतः वनस्पतिज्ञों के एक वर्ग ने इस दिशा में गहन मंथन कर सोचा कि अगर समय रहते इस प्रकार के ज्ञान को कम से कम वनवासी, आदिवासी व ग्रामीण क्षेत्रों से एकत्र कर लिखित रूप से संरक्षित नहीं किया गया तो वह दिन दूर नहीं होगा जब इस प्रकार का पारम्परिक ज्ञान का अस्तित्व ही इस धरा से समूल नष्ट हो जाएगा।

इस प्रकार का अध्ययन अमेरिका, इंग्लैंड, चीन, कनाडा, तन्जानिया, ब्राजिल, इन्डोनेशिया, न्यूजीलैड, नेपाल, पाकिस्तान आदि देशों में शूल्ट्ज, एल्कोर्न, बर्लिन, सेन्गाजी, बाये, चेलेन्डेर, फोर्ड, टिमोथी, महून्ना, मर्लिन, डेरल, रोडिन, गुन्थर, वैल, प्रान्स, हाक्स, पोलक, मननधर, भन्डारी आदि जैसे विश्व विख्यात लोक वनस्पतिज्ञों ने उन्नीसवीं शताब्दी में शुरू किया। भारत वर्ष में लोक वनस्पति विज्ञान पर कार्य प्रारंभ करने का श्रेय सन् 1954 ई० में केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला, हावड़ा के तत्कालीन निदेशक सह ओ. एस. डी. श्रीमती ई. जानकी अम्माल को जाता है, जिन्होने दक्षिण भारत में खाये जाने वाले डायस्कोरिया की विभिन्न प्रजातियों पर इस प्रकार का शोध कार्य शुरु किया था। हालांकि भारत वर्ष में 1921 ई. में ही पी. ओ. बोडिंग द्वारा संथाल के औषधीय पौधों पर कार्य करने के प्रमाण उपलब्ध हैं। तत्पश्चात् 1960 के दशक में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के तत्कालीन आर्थिक वनस्पति वैज्ञानिक डा. सुधांशु कुमार जैन ने इस विषय पर तीव्रता से सर्वेक्षण पर, शोध एवं प्रचार व प्रसार शुरू किया। इसीलिए उन्हें भारतीय लोक वनस्पति विज्ञान का जनक (Father of Indian Ethnobotany) भी कहा जाता है। सन् 1981 ई. में भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय (मेन एंड बायोस्फियर प्रोग्राम) ने एक वृहत परियोजना ''आल इण्डिया को-ओर्डिनेटेड रिसर्च प्रोजक्ट ऑन इथनोबॉयलोजी'' (AICRPE) नाम से प्रारंभ किया। यह परियोजना भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के हावड़ा, पोर्टब्लेयर,

शिलांग और कोयम्बटूर परिमण्डलों के अतिरिक्त राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान (NBRI), लखनऊ, केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान (सी. डी. आर. आई) लखनऊ, क्षेत्रीय शोध प्रयोगशाला (आर. आर. एल.) जम्मू, बीरबल साहनी पुरा वनस्पति विज्ञान संस्थान (बी. एस. आई. पी.) लखनऊ, तथा गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर में दो चरणों में चलाई गयी।

भारत वर्ष में विगत् पचपन वर्षो में डा. जैन के अतिरिक्त अनेक लोक वनस्पति वैज्ञानिक जैसे जे. के. माहेश्वरी, पी. पुश्पानगदन, आर.आर.राव, आर. के. अरोड़ा, के एस. मनीलाल, आर. डी गौड़, एस. एल.कपूर, वाई. पी. एस. पांक्ति, बी. एन. मेहरोत्रा, बी. एस. असवाल; ए. के. गोयल, वी. मुदगल, एन. एस. जमीर, वाई. के. सरीन, के. एस. नेगी; पी. सी. त्रिवेदी, एन सी. साह, बी. एस. अग्रवाल, पी. जोशी, वी. सिंह, के. के. सिंह, सी. आर. तरफदार, ए. मुखर्जी, डी. नामहट्टा, ए. के. पाण्डेय, आर. पी. पाण्डे, एन. पी. सिंह, ए. एन. हेनरी, एस के. वर्मा, पी. सेनशर्मा, पी. पी. हेम्ब्रम, एस. पी. जैन, ए. के. जैन, टी. आर. साहू, एस. के. बोरठाकुर; डी. के. कुलकर्णी, एम.एस. काम्बोजकर, बी डी. बरडक, वी. एस. घाटे. वी. झा; आर. बी. क्षेत्री, ए. के. साहू, अमिनुद्दीन, आर. डी. गिराच, एम. ब्राहम्म, एच. ओ. सक्सेना, ए. ए. अन्सारी, ए. सकलानी, एच. सिंह, बी. लाल, आर. एल. एस. सिकरवार, आर. के. मैखुरी, एस. एस. सामन्त, आर. एस. रावल, डी. सी. पाल, एस. सी. नाथ, जे. के. तिवारी, एस. के. सूद, इ. बर्गीज, पी. पी. शर्मा, बी. डी. शर्मा, आर. बी. मोहन्ती, के. के. खन्ना, एन. के. ढाल, एन. सी. राउत, के. कुमार, डी. ए. पाटिल, बी. एल. पुजानी, पी. आर. सूर, पी. सी. पाण्डे, एस. पी. गुप्ता, पी. के. हाजरा, जी. एल. शाह, एस. एल. मीना, आर. मजुमदार, वी. मित्रे, एस. एन दीक्षित, आर. डी दीक्षित, जी. एस. पुरी, यू. सी. भट्टाचार्या, बी. के. सिन्हा, एम. गाडगिल, जे. सी. डागर, के. के. बेहरा, आर. सेन, एस. चंद्रा, ए. पी. दास, टी. एन. लखनपाल, ए. ए. अहमद, ओ. पी. चौरसिया, एस. पवार, आर. डी. क्षीरसागर, आई. ए. खान, ए. खातून, एम. एस. रावत, एम. लालरम्घींगलोवा आदि ने इस विषय पर प्रमुख योगदान दिया है। सन् 1980 ई. में इथनोबोटनी के बेहतर उत्थान, विकास, प्रचार व प्रसार के उद्देश्य से डा. एस. के. जैन की अध्यक्षता में एक अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक मंच का गठन ''सोसाइटी ऑफ इथनोबोटेनिस्ट्स'' के नाम से एन. बी. आर. आइ. लखनऊ में किया गया, जिसमें स्वदेशी एवं विदेशी आजीवन व वार्षिक सदस्यों की संख्या कई हजारों में पहुँच चुकी है। इस सोसाइटी द्वारा 1989 से एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का जर्नल ''इथनोबोटनी'' का प्रकाशन प्रतिवर्ष किया जा रहा है। इसके अलावा कई 'न्यूज लेटर', 'डिक्सनरी' व पुस्तकों का प्रकाशन भी इस सोसाइटी द्वारा किया जा चुका हैं। इस संस्था में एक निश्चित अवधि तक आजीवन सदस्य रहने के फलस्वरूप अनेक लोक वनस्पति वैज्ञानिकों को फेलो (FES) की उपाधि से सम्मानित किया गया है। इसके अतिरिक्त इस संस्था द्वारा 1986, 1988, 1990, 1992, व 1993 में कई वैज्ञानिक/छात्रों के लिए 'ट्रेनिंग कोर्स' आयोजित किया गया। 'चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस ऑफ इथनोबॉयलोजी' तथा 'सिल्वर जुबली सिम्पोजियम ऑन इथनोबोटनी इन द न्यू मिलेनियम' का आयोजन भी इसी सोसाइटी द्वारा क्रमशः वर्ष 1994 व 2006 में लखनऊ में किया गया। इथनोबोटनी बिषय पर विशिष्ट व उत्कृष्ट शोध कार्य करने वाले वैज्ञानिक को सन् 1993 से प्रतिवर्ष ई. के. जानकी अम्माल मेडल, जे. डब्लू. हार्शबर्गर मेडल तथा एस. के. जैन मेडल भी इस सासाइटी द्वारा प्रदान किये जाते हैं। सन् 1995 में 'इन्सटीट्यूट ऑफ इथनोबॉयलोजी' की पंजीकरण व स्थापना भी डा. जैन द्वारा लखनऊ में किया गया जिसका संचालन वर्तमान में मध्य प्रदेश में टी. आर. साहू व ए.के. जैन द्वारा किया जा रहा है। भारतवर्ष में लोक वनस्पति विज्ञान विषय पर आधारित सर्वेक्षण का कार्य क्रमशः उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, उत्तराखण्ड, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उड़ीसा राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, जम्मू और कश्मीर, महाराष्ट्र, आसाम, नागालैण्ड, मणीपुर, तमिलनाडू तथा केरल में अधिक हुआ है। जबकि त्रिपुरा, मिजोरम, हरियाणा, पंजाब, गुजरात, तथा कुछ दक्षिण के राज्यों में इस विषय पर अपेक्षाकृत कम कार्य हुआ है। दक्षिण एशिया, भारतीय उपमहाद्वीप, संथाल परगना, कोल्ड डिर्जट, ट्रांस हिमालय, रावलसार हिमालय, उत्तर पूर्व भारत, सेंट्रल इंडिया, दादर, नागर हवेली व दमन, अंडमान व निकोबार, इस्टर्न घाट शीर्षक से भी लोक वनस्पति पर कुछ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जनजातियों के आधार पर इस विषय पर अधिक शोध पत्र क्रमशः सहारिया, भील, नागा, थारू, सन्थाल, टोटोपारा, निकोबारी, गारो, बैगा, इरूला, गद्दी, भोक्सा, खड़िया,

गोन्ड, खासी, निशी, आपातानी, मिकिर, आदि पर प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त खाद्य, रंग, ईंधन, चारा, इमारती लकड़ी, कामोत्तेजक पौधे, केंसररोधी पौधे, इथनो विटेरीनरी, साज-सज्जा, गहने, आभूषण, पूजा-पाठ, ग्रह-नक्षत्र, वेद-पुराण, धार्मिक ग्रंथों से सम्बन्धित दैविक वनस्पति शास्त्र, नशे व मादक पेय, चमत्कारिक पौधों, नामकरण एवं वर्गकीय, मेजिकोरिलीजियस, मौसम की पूर्व सूचना, घरेलू नुस्खे, पौधों पर आधारित लघु उद्योग, संस्कृति में पौधों का महत्व, तुलनात्मक अध्ययन, स्पर्श थिरेपी, होरोपेथी, पादपालय से एकत्रित आँकड़ों पर भी कई शोध-पत्र प्रकाशित हुए हैं। सामान्य लोक वनस्पति विज्ञान, अध्ययन की विधि, शब्दकोष, ग्रंथसूची आदि पर भी कई पुस्तकें विगत वर्षो में प्रकाशित हुयी हैं। आवृत बीजी पौधों पर सर्वाधिक शोध कार्य के अतिरिक्त अनावृत बीजी, पर्णांगोद्भिद, शैवाल, कवक, हरितोद्भिद् व शैवाक पर भी कुछ कार्य हुए हैं। वर्तमान में इस विषय से जनित कई उप-विषयों जैसे इथनो मेडिको बोटनी, इथनोटेक्सोनोमी, इथनो फार्मोकोलॉजी, इथनो फार्मोकोगनोसी, इथनो लिंगुवस्टिक, इथनो सिल्वीकल्चर, इथनो एग्रीकल्चर, इथनो हार्टीकल्चर, इथनो पेलियोलोजी, इथनो ईकोलॉजी, इथनो आर्कियोबोटनी, इथनो इटाईमोलाजी, इथनो वेटेरिनरी, इथनो एल्गोलाजी, इथनो माइकोलाजी, इथनो टेरिडोलॉजी, इथनो लाइकेनोलाजी आदि के नाम से भी अध्ययन किया जा रहा है। इन सभी उप विषयों के अध्ययन करने की विधि अलग-अलग हो सकती है किन्तु आँकड़े प्राप्त करने का स्रोत एक ही होता है। विगत 50-60 वर्षो में भारतीय लोक वनस्पति विज्ञान को उपलब्धियों के दृष्टिकोण से देखा जाय तो इस विषय पर अब तक में लगभग 2,500 शोध पत्र, 70 पुस्तकें और 60 से अधिक शोध ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। 125 से अधिक जन-जातियों पर शोध कार्य, 50 प्रतिशत से अधिक आवृत बीजी पौधों का लोक वानस्पतिक अध्ययन, 120 से अधिक जैव सक्रिय तत्वों की खोज, AICRPE की फाइनल रिपोर्ट के अनुसार 10,000 पौधों की जातियों का विभिन्न जनजातियों द्वारा उपयोग जिनमें से 8000 औषधि में (1,75,000 तरह से प्रयोग) तथा 2000 से अधिक नई जानकारी, 50 से अधिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध जर्नल में लोक वानस्पतिक शोध पत्रों का प्रकाशन, 600 से अधिक अनाज की जंगली प्रजातियों की खोज, 100 से अधिक वनस्पतियों का आधुनिक चिकित्सा में प्रयोग, लोक विश्वास के आधार पर कई वृक्षों व लगभग एक लाख पावन वनों का संरक्षण, केरल के कानी जनजातियों से प्राप्त आँकडों के आधार पर ट्राइकोपस जेलेनिका से 'जीवनी' नामक औषधि की खोज आदि उपलबिब्यां किसी भी दृष्टि से कम नहीं है। परम्परागत ज्ञान व उपयोग के आधार पर चयनित 4,500 पौधों का केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान (सी. डी. आर. आई.) लखनऊ व राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला पुणे द्वारा परीक्षण कर लगभग 750 पौधों में सक्रिय तत्वों की पुष्टि कर माना है कि आकस्मिक रूप से चयनित पौधों की अपेक्षा परम्परागत उपयोग के आधार पर चयनित पौधों में 17 प्रतिशत अधिक सक्रियता पाई जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर भी पर मेक्सिको से मक्का की रोग प्रतिरोधी जंगली प्रजाति जिआडिप्लोप्रेनिस की खोज तथा न्यूगुआनिया से सोफोकार्पस टेट्रागोनोलोबस नामक सर्वाधिक प्रोटीन (35 - 37 प्रतिशत) युक्त दाल की खोज तथा चीन से कोर्डिसेप्स साइनेंसिस 'हिमालयन व्याग्रा' नामक कामोत्तेजक की खोज भी इसी विषय की देन है।

किसी क्षेत्र विशेष का सर्वेक्षण करने के लिए वहाँ के पुराने वैद्यों, जनजातियों से साक्षात्कार कर लोक वानस्पतिक आँकड़ो को एकत्र कर सकते हैं। पुराने 'गज़ेटियर', 'फ्लोरा', 'आर्कियोलॉजी', ट्रेवलाग' 'मटेरिया-मेडिका', संग्रहालय व पादपालय में अंकित टिप्पणियों से तथा पौराणिक क्षेत्र, स्मारक में अंकित साहित्य से भी लोक वानस्पतिक आँकड़े एकत्र किये जा सकते हैं। किसी भी क्षेत्र की लोक वानस्पतिक अध्ययन के लिये सम्बंधित शोध कर्ता को उस क्षेत्र की भौगोलिक, वानस्पतिक व स्थानीय निवासियों की क्षेत्रीय भाषा का समुचित ज्ञान होना अति आवश्यक होता है। उस क्षेत्र में पूर्व में किये गए इस प्रकार के कार्य (साहित्य) की जानकारी, पेड़ पौधों के आँकड़े, स्थानीय निवासियों व उनके गाँवों की सूची आदि उपलब्ध साहित्य से या स्थानीय प्रशासन से पत्र-व्यवहार द्वारा जान सकते हैं। क्षेत्र विशेष में पहुँचते ही विकास खण्ड, तहसील या जिला स्तर के स्थानीय प्रशासन तथा वन विभाग, जनजाति परियोजना विभाग से सम्पर्क कर जन प्रतिनिधियों के माध्यम से ही पारम्परिक ज्ञान के ज्ञाता वैद्यों व बुजुर्गों तथा गाँव वालों से सम्पर्क करना उचित होता है। उस क्षेत्र में स्थानीय लोगों के रीतिरिवाजों, धर्म व संस्कृति का सम्मान करते हुए तथा उन्हें विश्वास मे लेकर तथा अच्छे सम्बंध बनाने के पश्चात ही सौहार्द पूर्ण वातावरण में क्षेत्र की वनस्पतियों के पारम्परिक उपयोग के बारे में जानने

का प्रयास करना चाहिए। यहाँ तक उनके साथ ठहरने, खाने, उनके सुख-दुख, धर्म, मेले, जन्म, विवाह, मृत्यु संस्कार आदि में भी शामिल होने के साथ उनकी मानसिक व आर्थिक मदद करने का प्रयास भी करना चाहिए। यहाँ पर यह उल्लेख करना भी आवश्यक होगा कि कुछ तथाकथित छद्म लोक वनस्पतिज्ञ (Pseudo Ethnobotanist), जिनको संभवतः या तो इस विषय की पूर्ण जानकारी नहीं होती है, या बिना गहन सर्वेक्षण व सत्यापन के इस विषय पर शोध-पत्र प्रकाशित करने का कुत्सित प्रयास करते हैं, वे लोग लोक वनस्पति विज्ञान की आलोचना कर इसे हतोत्साहित करने के लिए निम्न कोटि का वैज्ञानिक शोध कार्य मानते हैं। इनका एक वर्ग तो इसे वैज्ञानिक अध्ययन तक कहने से कतराते हैं, जबकि लोक वनस्पतिक अध्ययन करने मे 'फ्लोरिस्टिक' अध्ययन से अधिक मेहनत करने के पश्चात आँकड़े एकत्रित किये जाते हैं। फ्लोरिस्टिक अध्ययन में किसी क्षेत्र का भ्रमण कर उपलब्ध वनस्पतियों के नमूने का एकत्रीकरण, उनकी पहचान, वर्गीकरण, विवरण व सूची तैयार की जाती है, जबकि लोक वानस्पतिक अध्ययन में उपरोक्त के अतिरिक्त उन वनस्पतियों का क्षेत्र के लोगों से पारम्परिक सम्बन्ध के आँकड़े भी एकत्र करने होते हैं। उस क्षेत्र के जानकार लोगों के सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव नहीं हो सकता जबकि फ्लोरिस्टिक अध्ययन में स्थानीय लोगों की भूमिका आवश्यक नहीं होती हैं। वैद्यों व जानकार ग्रामीणों की संख्या भी दिन प्रतिदिन कम होने के कारण उनकी तलाश में कई दूरस्थ क्षेत्रों में भटकना पड़ता है। कभी-कभी तो दिन भर गर्मी, जाड़ा और बरसात में पैदल चलने के पश्चात भी वैद्य व जानकार लोग घर पर नहीं मिल पाते हैं। उपयोगी पौधों की जानकारी लेने के बाद भी उन पौधों के नमूनों को एकत्र करने के लिए उन जानकार लोगों के साथ उनके प्राकृतिक प्राप्ति स्थल का भ्रमण करना आवश्यक होता है। आज के व्यस्तता के युग में किसी वैद्य से पूछ कर जानकारी लेने के पश्चात् उन पौधों के नमूनों को एकत्र करने के लिए जंगलों में भटकने के लिए उनसे अनुनय-विनय करने के बाद भी वित्तीय सहायता करना अति आवश्यक होता है। सर्वेक्षण कार्य के पश्चात् एकत्रित पादप नमूनों की वैज्ञानिक पहचान कर उनके उपयोगों के आधार पर उन्हें सूची बद्ध किया जाता है। उपलब्ध साहित्य से एकत्रित आँकड़ों का तुलनात्मक अध्ययन कर नये व अल्प ज्ञात पौधों, उनके सहयोगों की सूची तैयार करते है तत्पश्चात् पौधों के उपयोगी भागों का विभिन्न प्रयोगशालाओं से फाइटोकेमिस्ट्री, फार्माकोगनोसी, बॉयलोजिकल स्क्रीनिंग व न्यूट्रीशनल एनालिसिस कर उनकी औषधि, खाद्य व अन्य उपयोगों की वैज्ञानिक पुष्टि करते हैं।

इस विषय को अधिक लोकप्रिय, उद्देश्य पूरक, वैज्ञानिक, उपयोगी, शीघ्र प्रभावी, इको फ्रेन्डली' एवं व्यवहारिक बनाने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है : किसी भी जाति, वर्ग या क्षेत्र (कम से कम जनपद स्तर) की लोक वानस्पतिक अध्ययन के लिए उस क्षेत्र की स्थानीय भाषा व रीति-रिवाज, धर्म, संस्कार, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक जानकारी अवश्य होनी चाहिए। उस क्षेत्र में जानकार लोगों के साक्षातकार से ही नहीं बल्कि उनके साथ लम्बे समय तक रहकर, उनके धर्म-संस्कारों में सम्मलित होकर तथा पेड़-पौधों के उपयोगों को स्वयं देखकर भी आँकड़े एकत्र करना चाहिए। उन लोगों के कुछ अवैज्ञानिक से प्रतीत होने वाले रीति-रिवाजों व अन्ध-विश्वासों का परिहास व मजाक कभी नहीं करना चाहिए। एकत्रित आँकड़ों को अन्य लोगों से या उसी व्यक्ति से दुबारा पुष्टि कर, चर्चा कर तथा तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात ही नये व अल्प-ज्ञात ज्ञान को प्रमाणित कर प्रकाशित करना चाहिए। पारम्परिक अल्प ज्ञात व नये औषधीय व खाद्य पौधों के उपयोगी भागों का सी. डी. आर. आई. लखनउ, एन. सी. एल. पुणे, तथा सी. एफ. टी. आर. आई., मैसूर व अन्य प्रयोगशालाओं से वैज्ञानिक परीक्षण कर उनकी पुष्टि करनी चाहिए। वैज्ञानिक पुष्टि के उपरान्त नये शीघ्र-प्रभावी आधुनिक औषधियों का निर्माण तथा नये खाद्य के स्त्रोतों को भारतीय कृषि में मानव कल्याण हेतु सम्मिलित करना चाहिए। इन पारम्परिक ज्ञान व धरोहर को तुरन्त स्वायत्तीकरण (पेटेन्ट) कराने की कोशिश करनी चाहिए अन्था दूसरे विकसित देश इनसे संकेत लेकर शीघ्र प्रभावी व आधुनिक औषधि एवं खाद्य पदार्थ तैयार कर इसका स्वायत्तीकरण कराते रहेंगे। पारम्परिक जानकारी के आधार पर निकले किसी भी परिणाम (नई खोज) का स्वायत्तीकरण से होने वाले लाभ का उचित हिस्सा उन स्थानीय लोगों को अवश्य दिलाना चाहिए। सन् 1993 में जैव विविधता सम्मेलन (सी. बी. डी.) के अनुसार भी देशों तथा व्यक्तियों को उनके पारम्परिक ज्ञान व जैविक सम्पदा का उपयोग होने पर लाभ अर्जित करने का अधिकार दिया गया है। अतः इससे सम्बन्धित नियम व संहिताओं को सख्ती से

लागू करने के साथ साधारण जन-मानस को भी अपने इन अधिकारों के प्रति जागरूक कराना चाहिए। इस प्रकार के विस्तारित किन्तु बिखरे पड़े आँकड़ों को एकत्र कराने के लिए सरकारी विभागों के अतिरिक्त सरकारी संस्थाओं (NGO) की भी सहायता लेनी चाहिए। सभी वैज्ञानिक जर्नलों, पत्रिकाओं व पुस्तकों में प्रकाशित लोक वानस्पतिक आँकड़ों को एक जगह एकत्र कर उसका विस्तृत सामूहिक डाटा-बेस तैयार कर इंटरनेट पर स्थापित (Float) करना चाहिए। ताकि राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी जन-मानस को सुगमता से इस प्रकार के पारम्परिक ज्ञान उपलब्ध हो सके। इस विषय की बहु-गुणीय उपयोगिता को देखकर डा. जैन ने सन् 2007 में कोलकाता में आयोजित एक समारोह में ठीक ही कहा था कि कुछ वर्ष तक लोक वनस्पति विज्ञान को आर्थिक वनस्पति विज्ञान (Economic Botany) की एक शाखा माना जाता था किन्तु आज आर्थिक वनस्पति विज्ञान ही लोक वनस्पति विज्ञान की एक शाखा हो गयी है। वर्तमान में लोक वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान की प्रबल संभावनाओं को देखकर ही हमारे देश के पर्यावरण मंत्रालय, विज्ञान एवं तकनीकी विभाग, सी. एस. आई. आर., आई. सी. ए. आर., आई. सी. एम. आर. तथा यू. जी. सी. जैसे प्रमुख संगठनों द्वारा इस विषय को एक प्रमुख क्षेत्र मानकर अनेक परियोजनायें चलाई जा रही है।

अतः इस प्रकार के अध्ययन से सिर्फ विलुप्त होते उपयोगी ज्ञान का संरक्षण ही नहीं अपितु नये आर्थिक महत्व के उपयोगी पौधों, उनके नये उपयोगों, नये औषधि, नये खाद्यपौधों की खोज की भी प्रबल सम्भावनायें हैं। इसके अतिरिक्त परम्परागत विश्वास व मान्यताओं के कारण कुछ प्रजातियों एवं कुछ पावन वनों का प्राकृतिक संरक्षण, पारम्परिक व्याधि रहित, सूखे व बाढ़ प्रतिरोधी पुरानी प्रजातियों के 'क्रास ब्रीडिंग' से नयी कृषि प्रजातियों की खोज, पौधों पर आधारित लघु उद्योगों की स्थापना से क्षेत्रीय लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार, पारम्परिक ज्ञान को आधार बनाकर 'बायो-पायरेसी' से मुक्त होने तथा संबंधित व्यक्ति/क्षेत्र/देश को पारम्परिक ज्ञान से अर्जित लाभ की समुचित हिस्सेदारी मिलने की भी अपार सम्भावनायें हैं।

———

ग्रह व राशियों से संबंधित वनस्पतियाँ और उनका संरक्षण

गोपाल कृष्ण एवं हरीश सिंह 'भुजवान'
केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला, हावड़ा

जैविक सम्पदा का माप दण्ड मात्र पौधों और जन्तुओं की संख्या व प्रजातियां ही नहीं वरन् स्थानीय निवासियों के लिए उनकी उपयोगिता तथा परम्परागत सांस्कृतिक संबंध भी है। मानव आदिकाल से ही पेड़-पौधों से औषधि, भोजन, ईंधन, चारा, इमारती लकड़ी, मसाले, रेशे, रंग, गोंद आदि उपयोगी वस्तुएँ प्राप्त करने के अतिरिक्त आध्यात्मिक रूप से भी जुड़ा रहा है। पौधों में जीवन होने की बात तो सभी वैज्ञानिक समाज व समूचा संसार मानता है, किन्तु उनमें मन व आत्मा होने का विश्वास भी कई लोगो ने स्वीकारा है। भारतवर्ष के अतिरिक्त कई विकसित व उन्नत पश्चिमी देश के निवासी भी ईश्वर तथा अन्य दैवीय शक्तियों से पौधा का संबंध मानते हैं, वे पौधे से अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ, भाग्यवान-अभागा और रोगी-निरोगी होने की बात भी स्वीकारते हैं। पूर्व में अधिकांश वनस्पतिज्ञों ने पौधों के प्रति लोगों की आस्थाओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया किन्तु कुछ वर्षो से लोक वानस्पतिज्ञों ने वनस्पतियों पर मान्यताओं, विश्वासों तथा उनसे सम्बन्धित आस्थाओं का अध्ययन कर इस ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। मानव जाति का पेड़ पौधों से वह संबंध अथवा ज्ञान जो आस्था, मान्यता, विश्वास और परम्परा पर आधारित है के अध्ययन को दैविक वनस्पति शास्त्र या दिव्य वनस्पति शास्त्र (Divine Botany) के नाम से जाना जाता है। इस विषय के अन्तर्गत प्राचीन धार्मिक ग्रंथों (जैसे रामायण, महाभारत, बाइबिल, कुरान आदि) में उल्लेखित वनस्पतियों से संबंधित ज्ञान, वर्तमान में प्रचलित मान्यतायें, दैनिक जीवन (जैसे जन्म, नामकरण, यज्ञोपवीत, विवाह, मृत्यु संस्कार), त्यौहार, पूजा-पाठ तथा अन्य समाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक पहलुओं से जुड़े पौधों के अतिरिक्त ग्रह, नक्षत्र, राशि तथा वास्तुकला से संबंधित पेड़-पौधों का अध्ययन किया जाता है। वनस्पतियों से मनुष्य के जो सांस्कृतिक, धार्मिक तथा परम्परागत व भावनात्मक संबंध हैं वे प्रायः निम्न प्राकर के विश्वासों और धारणाओं पर आधारित है। कुछ वनों में दैवीय शक्तियों का निवास माना जाता है जिन्हें पवित्र उपवन (सेक्रेड ग्रूव) कहते है। कई वृक्षों को दैवीय शक्तियों का निवास स्थान मानने, कुछ वृक्षो के नीचे बैठने से ज्ञान प्राप्त होने जैसे महात्मा बुद्ध को पीपल के नीचे तथा शंकराचार्य को कल्प वृक्ष के नीचे, कुछ वृक्षों की उत्पत्ति ही देवताओं के शरीर से होने जैसे पलास ब्रह्माजी के और पीपल विष्णुजी के शरीर से, कुछ क्षेत्रों में मानव जाति की उत्पत्ति अमुक वृक्ष के नीचे होने, कुछ वृक्षों को नारी सम्मान का रक्षक मानने जैसे माल्वा में चंदन, कुछ वृक्षों पर मृत आत्माओं का निवास होने जैसे सप्तपर्णी वृक्ष, कुछ पौधों का स्वयं पूज्य होने, कुछ पौधों का स्वरूप किसी देवी देवता से मिलने, कई वृक्षों पर आधारित जन-जातियों के नाम व गोत्र पड़ने, कुछ पौधों के फल-फूलों को पूजा-अर्चना में प्रयुक्त करने, कुछ पौधों को पूजा में वर्जित करने के अतिरिक्त कुछ पौधों को अशुभ, कुछ को संकट मोचक व कुछ को ग्रह नक्षत्रों व राशियों से जोड़कर शुभ मानने की परम्परा हमारे देश में सदियों से रही है। आज के इस वैज्ञानिक युग में केवल आदिवासी, वनवासी और ग्रामीण क्षेत्र के निवासी ही नहीं, अपितु शहरों एवं शिक्षित परिवार के अधिकांश लोग भी ग्रहों, नक्षत्रों, राशियों से सम्बधित पेड़ पौधों में आस्था व विश्वास रखते हैं। वे लोग उन पेड़ पौधों को अपनी अपनी राशि, नक्षत्र एवं ग्रह के अनुसार रोपित व पूजा कर उनके दोष का निवारण कर शुभ फल की कामना करते हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में पेड़ पौधों को देवता के रूप में पूजने की आदिकाल से ही परम्परा रही है। ऐसी मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति की राशि का एक प्रतिनिधि वृक्ष होता है जिसके सानिध्य, पूजन और रोपण से उस व्यक्ति को शुभ फल मिलता है। वास्तु में भी राशि के अनुसार पेड़ लगाना, उसकी पूजा करना सकारात्मक फलदायक माना जाता है। इसलिए घरों में पेड़ लगाने से पूर्व अपनी राशि व ग्रहों से सम्बन्धित पेड़ पौधों के बारे में जानकारी करना आवश्यक है। अतः 12 राशि व 9 ग्रहों में संबंधित पेड़-पौधौं की सूची उनके हिन्दी व वैज्ञानिक नामों के साथ दिया जा रहा है।

तालिका 1

राशि से सम्बंधित वनस्पतियाँ

क्र. सं.	राशि का नाम	संबंधित पौधे का हिन्दी व लैटिन नाम
1.	मेष (Aries)	लाल चंदन (टेरोकार्पस सैन्टेलिनस), खैर (अकेशिया कटेचू), हींग (फेरूल नार्थेक्स)।
2.	वृष (Taurus)	काला शीशम (डलबर्जिया लेटीफोलिया), आंवला (एम्बलिका आफिसीनेलिस), भू आंवला (फाइलेन्थस नीरूरी), अपराजिता (क्लाइटोरिया टर्नेटिया)।
3.	मिथुन (Gemini)	सप्तपर्णी (अलस्टोनिया स्कालरिस), चंदन (सेन्टेलम अलबम), कटहल (आर्टोकार्पस हेट्रोफाइला)।
4.	कर्क (Cancer)	मौल-श्री (माइसूसोप्स एलेन्गी), पलास (ब्यूटिया मोनोस्पर्मा)।
5.	सिंह (Leo)	कटहल (आर्टोकार्पस हेट्रोफाइला), समन्दर सोरव (अरजिरिया नर्वोशा) बादल (स्टीरिओस्पर्मम कोलाइस)।
6.	कन्या (Virgo)	आम (मेंगीफेरा इंडिका), समन्दर सोरव (अरजिरिया नर्वोशा), कटहल (आर्टोकार्पस हेट्रोफाइला)।
7.	तुला (Libra)	बेल (एगल मारमोलस), मदार (कैलोट्रोपिस जाइजैन्शिया), मौल-श्री (माइसूसोप्स एलेन्गी)।
8.	वृश्चिक (Scorpio)	रक्त चंदन (टेरोकार्पस सैन्टेलिनस), खैर (अकेशिया कटेचू), सप्तपर्णी (अलस्टोनिया स्कालरिस)।
9.	धनु (Sagittarius)	मौल-श्री (माइसूसोप्स एलेन्गी), चंदन (सेन्टेलम अल्बम), सप्तपर्णी (अलस्टोनिया स्कालरिस)।
10.	मकर (Capricorn)	आंवला (एम्बलिका आफिसीनेलिस), भू आंवला (फाइलेन्थस नीरूरी), अपराजिता (क्लाइटोरिया टर्नेटिया), मृत्येंगा (बुर्सेरा सीरेर्टा)।
11.	कुंभ (Aquarius)	नाग केशर (मिसुआ फेरिरा), पीपल (फाइकस रिलिजीयोसा), पाती (आर्टिमीसिया पाइरीफ्लोरा), बरगद (फाइकस बेंगेलेलसिस), समी (प्रोसोपिस साइनीरीयेरा)।
12.	मीन (Pisces)	बरगद (फाइकस बेंगेलेन्सिस), पीपल (फाइकस रिलिजीयोसा), नागकेशर (मसुआ फेररा)।

तालिका 2

ग्रह से सम्बंधित वनस्पतियाँ

क्र. सं.	राशि का नाम	संबंधित पौधे का हिन्दी व लैटिन नाम
1.	सूर्य (Sun)	मदार (कैलोट्रोपिस जाइजैन्शिया), बेल (एगल मारमेलास)।
2.	चंद्रमा (Moon)	बकुल (माइसूसोप्स ऐलेन्गी), पलास (ब्यूटिया मोनोस्पर्मा)।
3.	मंगल (Mars)	लाल चंदन (टेरोकार्पस सैन्टेलिनस), खैर (अकेशिया कटेचू), हींग (फेरूल नार्थेक्स)।
4.	बुध (Mercury)	फेरूल इकटेन्सा, कटहल (आर्टोकार्पस हेट्रोफाइला), लटजीरा (एकराइन्थस अस्पेरा)।
5.	वृहस्पति (Jupiter)	पीपल (फाइकस रिलिजीयोसा), पाती (आर्टिमीसिया पाइरीफ्लोरा)।
6.	शुक्र (Venus)	गुलर (फाइकस ग्लोमेरेटा), सप्तपर्णी (अलस्टोनिया स्कालरिस), चंदन (सेन्टेलम अल्बम)।

7.	शनि (Saturn)	खैर (अकेशिया कटेचू), समी (प्रोसोपिस साइनोरीयेरा), लाल चंदन (टेरोकार्पस सैन्टेलिनस), आंवला (एम्बलिका आफिसीनेलिस), भू आंवला (फाईलेन्थस नीरूरी)।
8.	राहु (Rahu)	चंदन (सेन्टेलम अल्बम), दूब (साइनोडॉन डक्टायलॉन)।
9.	केतु (Ketu)	कास (सैकरम स्पोन्टेनियम), अश्वगंधा (विथानिया सोमनीफेरा) कुश (डेस्मोस्टेचिया बाइपिन्नेटा)।

उपरोक्त के अतिरिक्त वास्तुशास्त्र के अनुसार घर के प्रत्येक दिशा में एक प्रतिनिधि वृक्ष को दिग्पाल के रूप में लगाने से घर की रक्षा की भी मान्यता रही है। भवन व भूमि के उत्तर में जामुन (साइजिजियम कुमिनी), उत्तर पूर्व में हवन, उत्तर पश्चिम में सादड़ (टर्मिनेलिया क्रीन्यूलेटा), पश्चिम में कदम्ब (एन्थोसिफेलस चाइनेन्सिस), दक्षिण पश्चिम में चंदन (सेन्टेलम अल्बम), दक्षिण में आँवला (एम्बलिका आफिसीनेलिस), पूर्व में बाँस (डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रीक्टस) तथा दक्षिण पूर्व में गूलर (फाइकस रेसिमोसा) के पेड़ को अष्ट दिग्पाल वृक्ष के रूप में लगाने की परम्परा भी रही है।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हमारी संस्कृति में वनस्पतियों की पूजा, सम्मान तथा विश्वास के नाम पर उनकी संरक्षण व संवर्धन की पद्धति पीढ़ियों से रही है। दैविक पौधों से संबंधित इस प्रकार की मान्यताओं, विश्वासों व आस्थाओं ने इन पेड़ पौधों का संरक्षण ही नहीं बल्कि प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक जैव विविधताओं का भी संरक्षण व रखरखाव में बहुमूल्य योगदान प्रदान किया है। अनेक वन तथा वृक्ष आज इसलिए सुरक्षित है क्योंकि उनके साथ कोई न कोई आस्था, मान्यता अथवा पारम्परिक विश्वास जुड़ा है। हालांकि कुछ लोग इस प्रकार के अध्ययन को अवैज्ञानिक व अंध विश्वास जैसे नामों से पुकारते हैं, किन्तु इसका अन्तिम सुखद व वैज्ञानिक परिणाम देखकर वे भी अपने विचारों को बदलने पर मजबूर हो जाते हैं। इसलिए इस प्रकार के वनस्पतियों का संरक्षण सिर्फ ग्रामीण व जनजातिय क्षेत्रों में ही नहीं अपितु शहरी व विकसित क्षेत्रों में भी विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं के माध्यम से कराने का प्रयास करना चाहिए। उड़ीसा राज्य मे मयूरभंज जिले के रामतीर्था एवं झारखण्ड राज्य के राँची जिले में वन विभाग द्वारा नवग्रह वाटिका (Astral Garden) का निर्माण किया गया है जिसमें ग्रह एवं नक्षत्रों के आकृतियों के साथ उनसे संबंधित पौधों को लगा कर जन-साधारण को इस विषय की ओर आकृष्ट करने का सार्थक प्रयास किया गया है।

रामतीर्था (उड़ीसा) में वन विभाग द्वारा स्थापित नवग्रह वाटिका (Astral Garden)

यदि इस प्रकार की वाटिकाएं अधिक से अधिक संख्या में देश के प्रत्येक जनपदों के विभिन्न उद्यान, पार्क, गाँव या शहर में स्थापित करने की कोशिश की जाये तो साधारण जनमानस भी इन पौधों के बारे में विज्ञ होकर तथा इनके संरक्षण व संवर्धन के प्रति सचेत रह कर हमारे इस प्राकृतिक धरोहर की रक्षा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकते हैं। इसलिए लोक-वानस्पतिक सर्वेक्षण के दौरान पौधों की उपयोगिता के साथ-साथ इनसे जुड़ी मान्यताओं, आस्थाओं तथा अन्य सांस्कृतिक संबंधों पर भी विस्तृत जानकारी लेने का प्रयास लोकवानस्पतिज्ञों द्वारा अवश्य किया जाना चाहिए।

———

भारत के दीर्घायु वृक्ष

विजय कुमार मासतकर
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

देश में सबसे अधिक आयु वाले वृक्षों का कोई व्यवस्थित एवं प्रामाणिक रिकार्ड उपलब्ध नहीं है। ज्यादातर रिकार्ड पुराने लोगों के कथन पर आधारित है। कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली विश्वविद्यालय के डा. विरेन्द्र कुमार एवं भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के डा. आर. एस. राव ने इस संदर्भ में कुछ कार्य किया था। समय-समय पर विभिन्न समाचार पत्रों में वृक्षों के संबंध में प्रकाशित समाचारों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि देश में 5000 से लेकर 100 वर्ष की उम्र के पेड़ उपस्थित हैं।

देश का सम्भवतः सबसे पुराना वृक्ष मुजफरनगर (उ० प्र०) के पास स्थित प्रसिद्ध तीर्थ स्थल शुकताल में है जिसकी उम्र यहाँ के लोग 5,000 वर्ष के आसपास बताते हैं। एक किंवदंती के अनुसार इस वृक्ष के नीचे बैठकर महाराज शुकदेव ने राजा परीक्षित को भागवत कथा सुनाई थी। शुकदेव आश्रम सेवा समिति द्वारा प्रकाशित पुस्तिका शुकतीर्थ संक्षिप्त परिचय में भी उक्त किंवदंती की पुष्टि की गई है।

तीन हजार वर्ष से अधिक उम्र के दो वृक्ष आज जीवित हैं। 3,500 वर्ष पुराना एक आम का वृक्ष (मैंगीफेरा इंडिका) चेन्नई से लगभग 70-75 किलोमीटर दूर चैन्नई-बैंगलोर मार्ग पर कांचीपुरम के शिकांजी जिले के चिंगलपेट में एक मंदिर के अहाते में लगा है। यह मंदिर एकाम्बदेश्वर के नाम से जाना जाता है। इस आम वृक्ष की विशेषता यह है कि इसके चारों शाखाओं पर चार अलग अलग स्वाद के फल लगते हैं। 1980 के आसपास पेनसिल्वेनिया विश्वविद्यालय के कुछ वनस्पति वैज्ञानिकों ने यहाँ आकर पेड़ का अध्ययन किया था।

इसी प्रकार इलाहाबाद में संगम के किनारे बाओबाब (मांड़व की इमली) का एक विशाल पेड़ है, जिसका व्यास 6 मीटर है। वैज्ञानिक प्रो. एंडर्सन के अनुसार यह 3,200 वर्ष पुराना है। इस वृक्ष का जिक्र 1350 वर्ष पूर्व चीनी यात्री व्हेनसांग ने भी किया था।

एक हजार वर्ष से अधिक आयु वाले वृक्षों की गणना में प्रसिद्ध तीर्थ स्थान बद्रीनाथ के पास जोशीमठ में लगा एक शहतूत वंश का वृक्ष *मोरस सेराटा* है। जिसकी उम्र 1,200 वर्ष के आसपास आंकी गई है। बताया जाता है कि आदि गुरु शंकराचार्य ने इसी वृक्ष के नीचे समाधि ली थी।

शाल (शोरीया रोजस्टा) का एक हजार वर्ष की आयु वाला एक पेड़ छत्तीसगढ़ मे कोरबा से 25 किलोमीटर दूर स्थित गांव मातभार में देखा गया है। इस प्राचीन वृक्ष की जानकारी स्थानीय वन विभाग को 2006 में मिली थी। लगभग 300 की आबादी वाले इस छोटे से गांव में सितम्बर 2006 में कुछ हाथियों ने आक्रमण किया था, बचाव कार्य के लिए आए वन अधिकारियों ने इस वृक्ष को देखा एवं इसकी जानकारी एकत्र की। शाल (शोरिया रोबस्टा) के इस पेड़ की ऊँचाई 25 मीटर एवं मोटाई 19 फीट है।

बिहार में बोधगया का प्राचीन मूल बोधिवृक्ष (पीपल) तो नष्ट हो गया परन्तु अब जिसे बोधि वृक्ष माना जा रहा है, उसकी कलम श्रीलंका से यहाँ लाकर लगाई गई थी। यह भी 900 वर्ष पुराना है। हैदराबाद के नजदीक गोलकुंड़ा किले के अंदर बाओबाब का एक 700 वर्ष पुराना पेड़ लगा है, जिसके तने ने लगभग 95 वर्गफीट जमीन घेर रखी है। इस विशाल वृक्ष में 60 प्रकार के पक्षी निवास करते हैं।

जम्मू-कश्मीर के बड़गाम जिले के छत्तरगाम में एक बगीचे में लगभग 650 वर्ष का चिनार (*प्लेटेनस* ओरिएंटेलिस) का पेड लगा है, जिसे मशहूर सूफी संत सैयद अब्दुल कासिमशाह हमदानी मे लगाया था। तने का घेरा करीब 30 मीटर है।

आंध्रप्रदेश के अनंतपुर जिले के गुटी गांव में दो हैक्टर में एक बरगद का पेड़ फैला है जिसकी उम्र 500 वर्ष के लगभग बताई गई है। स्थानीय लोग इस प्राचीन पेड़ को थिमा मनी मेरू कहते हैं। चैन्नई और गुजरात में 400 वर्ष

पुराना वट (फाइकस बैंगालेंसिस) एवं बेर (जिजीफस मैरिसियाना) का वृक्ष भी रोचक जानकारियां समेटे है। चैन्नई में थियोसाफिकल सोसाइटी, अड्यार के परिसर में लगा 400 वर्ष पुराना वट वृक्ष 1989 में आए भारी तूफान के कारण धराशायी हो गया था। बाद में रेलवे, सेना एवं बंदरगाह कर्मचारियों की मदद से इसे खड़ा किया कया था। लगभग 8 टन भारी इस वृक्ष को उठाने में 20 टन वजन वाली क्रेन का उपयोग किया गया था। 40,000 वर्गफीट में फैले इस वृक्ष को रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, डॉ.राजेन्द्र प्रसाद एवं श्रीमती इंदिरा गान्धी ने भी देखा था।

गुजरात के ज़फराबाद में राजाभाई अलीभाई के अहाते में लगा एक बेर का पेड़ बगैर कांटेवाला है। इसकी ऊँचाई 15 मीटर तथा घेरा 19 मीटर है। इस पेड़ में एक बार में 600 किलो तक फल लगते हैं राजाभाई के पूर्वजों ने इसे लगाया था, जो लुहारी का धंधा करते थे। पूर्वजों को अरब देश से आए किसी व्यापारी ने इसका रोपा प्रदान किया था।

एक 300 वर्ष पुराना कटहल (आर्टोकार्पस हिटिरोफाइलस) का पेड़, बेंगलोर के पास काचाहारी गांव में हाल ही में देखा गया है, जिसे कर्नाटक सरकार धरोहर के रूप में संरक्षित करने पर विचार कर रही है। केरल के पेरम्बीकुलम स्थान पर भी वन विभाग ने एक 300 वर्ष पुराना सागौन (टिकटोना ग्रेंडिस) का वृक्ष खोजा है, जिसकी ऊँचाई 47 मीटर एवं गोलाई लगभग 7 मीटर है।

200 वर्ष से अधिक उम्र के कई वृक्ष देखे गए हैं। इनमें प्रमुख है हावड़ा के भारतीय वनस्पति उद्यान में लगा विशाल वट वृक्ष। इस वृक्ष के मुख्य तने को सन् 1864 और 1867 में गंगा नदी के जल अर्थात् बाढ़ के पानी से काफी नुकसान पहुँचा था। तथा इसके मुख्य तने में फूफँद के लगने से वह नष्ट हो गया, लेकिन जमीन से निकलने वाली जड़े एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़ी हैं कि पूरा वृक्ष एक जंगल के समान दिखाई देता है। इसकी प्रॉपकट 2880 हैं तथा यह 1.5 हैक्टर में फैला है। इस वृक्ष की इस खासियत की वजह से इसे गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में शामिल किया गया था सन् 2005 में। इस विशाल वट वृक्ष को भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग के भारतीय वनस्पति उद्यान के कर्मचारियों तथा वैज्ञानिकों की देखरेख में संरक्षित किया जा रहा है। पं. बंगाल में ही नदिया जिले के कृष्णनगर से 80 कि. मी. दूर गांव अम्बरपुर में भी 200वर्ष पुराना बटवृक्ष है। 17 एकड़ भूमि में फैले इस वृक्ष में 300 लटकती जड़ें तथा 140 शाखाएँ है।

जम्मू-कश्मीर के बड़गाम जिले के सोईबाग गांव में चिनार का एक 200 वर्ष पुराना पेड़ है। इस पेड़ की एक विशेषता यह है कि इस पर 100 वर्ष से पुराना एक घर भी बड़े व्यवस्थित ढंग से बना है। गुजरात में कबीर बड़ एवं नीम भी 200 वर्ष की उम्र के देखे गए हैं। कबीर बड़ के नाम से प्रसिद्ध वट वृक्ष भरूच से 22 कि.मी. दूर स्थित है। एक किंवदंती के अनुसार संत कबीर जिस बड़ की डाली दातून करते थे उसी से यह बना है। मेहरता जिले के लुणवा गांव में नीम का 200 वर्ष पुराना पेड़ है जिसकी ऊँचाई 18 मीटर तथा तने की गोलाई 5 मीटर है। 100 वर्ष से अधिक उम्र के तो क्ई पेड़ होंगे परंतु हाल ही में म० प्र० के रायसेन जिले से 25 कि.मी. दूर साल के लगभग 75 पेड़ ऐसे देखे गए हैं जिनकी उम्र (तने की गोलाई 4 फीट के आधार पर) 125 वर्ष से अधिक आंकी गई है।

जैव विविधता संरक्षण के समय में देश की इस प्राचीन हरित धरोहर को संरक्षित करना काफी जरूरी है। परंतु एक दुखद पहलू यह भी है कि देश के प्राचीन वृक्षों को सूचीबद्ध करने, उनका इतिहास एकत्र करने एवं उन्हें संरक्षण प्रदान करने हेतु अलग से विभाग या एजेंसी नहीं है।

देश में इमारतों के संरक्षण एवं रख रखाव हेतु जिस प्रकार पुरातत्व विभाग है ठीक उसी प्रकार प्राचीन वृक्षों के लिए भी कोई पृथक विभाग आवश्यक है। स्वतंत्रता संग्राम में जुड़े कई लोगों को अंग्रेजों द्वारा वृक्षों पर लटकाकर फांसी दी गई थी। क्ई प्राचीन पेड़ उस शहादत के मौन साक्षी हैं। अतः उनकी जानकारी भी एकत्र की जानी चाहिए।

मुख्य स्त्रोत – रोजगार और निर्माण, 22-28/09/08 भोपाल (म. प्र.)

———

वट सवित्री पूजा

गौतम कुमार उपाध्याय
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

हमारे समाज में वट वृक्ष का धार्मिक एवं व्यवहारिक महत्व आदिकाल से है। वट-वृक्ष एक पौराणिक वृक्ष के रूप में भारत के लगभग सभी राज्यों में जाना जाता है। वैज्ञानिक रूप से यह वृक्ष मोरेसी कुल के अन्तर्गत फीकस वंश में आता हैं। इसका वनस्पतिक नाम *फीकस बेन्गालेन्सिस* लिं (Ficus benghalensis L.) है। भारत वर्ष के विभिन्न राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा एवं पश्चिम बंगाल आदि जगहों पर वट वृक्ष की पूजा का भी चलन है। इस चलन के पीछे एक पौराणिक रोचक कथा जुड़ी हुई है।

वर्ष के आरम्भ में जेठ महीने की कृष्ण चतुर्दशी के अवसर पर विवाहित स्त्रियां व सुहागिनें लाल जोड़े में सजधज कर अपने माथे पर एवं वट वृक्ष पर सिन्दुर लगाकर कलावा बाँधते हुए परिक्रमा करती हैं। और गहने, सिक्के व गूलर वट देवता को अर्पित करते हुए जीवन साथी के स्वस्थ, निरोग एवं लम्बे जीवन की कामना करती हैं। पौराणिक कथानुसार आदिकाल में राजकुमारी सावित्री का विवाह एक नौजवान लकड़हारे सत्यवान के साथ जेठ महीने में अमावस के दिन करा दिया जाता है। विवाह के वाद सावित्री को यह ज्ञात होता है कि उसके पति की उम्र महज एक वर्ष शेष है तो वह चिन्तित हो जाती है। नियत समयानुसार एक साल बाद सत्यवान की मृत्यु हो जाती है परन्तु जब यमराज सत्यवान के मृत शरीर को लेने पृथ्वी पर आते हैं तो सावित्री उनसे अपने पति के प्राण रक्षा हेतु याचना करती है और उसकी याचना अस्वीकार किए जाने पर वह स्वयं भी यमराज के साथ यमपुरी जाने लगती है। यमराज सावित्री की धर्म व पति परायणता देखकर प्रसन्न हो जाते हैं और सत्यवान को पुनः जीवित कर देते हैं तथा सावित्री को वरदान देकर वट वृक्ष के पास अन्तर्धान हो जाते हैं। तब से लेकर यह मान्यता चली आ रही की वट पूजा से सुहागिनों के सुहाग चिरंजीवी होते हैं।

हालांकि *मोरेसी* कुल के फीकस वंश में अन्यतम प्रजातियों में से अश्वत्थ वृक्ष *फीकस रिलीजियोसा* लि. (Ficus religiosa L.) भी सामाजिक तथा धार्मिक कार्य में शुभ माना जाता है तथा इसकी लगभग हर धार्मिक अवसर पर पूजा अर्चना भी की जाती है। परन्तु वट वृक्ष की पूजा सिर्फ कुछ मौकों पर ही सीमित है। चाहे अवसर कोई भी हो लोग आज भी वट वृक्ष को अश्वत्थ वृक्ष की तरह ही घरों व पवित्र स्थानों में रोपण को शुभ एवं लाभदायक मानते हैं तथा इससे यह प्रजाति स्वतः ही संरक्षित हो जाती है। इसी कारण भारत वर्ष के लगभग सभी राज्यों में यह वृक्ष बगैर किसी मानवीय क्षति के वर्ष भर पुष्पित व पल्लवित होता रहता है।

a. पूजनीय वट वृक्ष; b. वृक्ष की चारों ओर कलावा
c. पूजा में लगने वाले वृक्ष की गूलर फल

———

धारीदार फल है। आयुर्वेद के अनुसार इस वृक्ष का भी औषधीय महत्व हैं। यह नेत्रों के लिए भी उपयोगी है। इसके फलों का इस्तेमाल पेट के रोग के लिए किया जाता है। इसके अलावा यह श्वास, उदर, विकार, कृमि, कब्ज, बवासीर, पेट भारी होना, गैस बनना, भूख कम लगना पेट में दर्द होना आदि रोगों में फायदे मंद होता है। आधुनिक चिकित्सा में इसका इस्तेमाल हर्बल औषधि के रूप में बहुत हो रहा है। हर्रे शरीर की क्रियाओं के लिए बहुत भी लाभकारी है। आधुनिक चिकित्सकों ने इसे परम उपयोगी वृक्ष माना हैं। इसकी छाल चर्म रोग के लिए भी लाभकारी है। हर्बल औषधि के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण वृक्ष है।

9. **बहेड़ा** :– कोम्ब्रीटेसी कुल के इस वृक्ष का वैज्ञानिक नाम टार्मिनालिआ बेलेरिका है। यह वृक्ष भी ऊंचाई वाला है। इसे भी कई नामों से जाना जाता है वहेरा और वहेड़ा नाम अधिक प्रचलित है। यह अप्रैल से मई तक उगता है। आयुर्वेद के अनुसार इसका भी औषधीय महत्व है। इसके फलों को चूर्ण बनाकर इस्तेमाल में लाया जाता है। इसका सूखा फल अपच, अतिसार, बवासीर, कब्ज, पेट में दर्द होना गैस बनने आदि में बहुत ही लाभकारी है। इसके फलों का इस्तेमाल त्रिफला बनाने में किया जाता है। जिसके कारण त्रिफला में इस्तेमाल मे बाद स्वस्थ जीवन को बनाये रखने में बहुत ही उपयोगी माना गया है। त्रिफला तीन फलों के मिश्रण से बनता है हरड, बहेड़ा और आँवला।

10. **अर्जुन** :– कोम्ब्रीटेसी कुल के इस वृक्ष का वैज्ञानिक नाम टार्मिनालिआ अर्जुना है। यह भी अप्रैल से मई के बीच उगता है। इस वृक्ष की भी उँचाई काफी अधिक है। आयुर्वेद के अनुसार इस वृक्ष का भी औषधीय महत्व है। इसके रस का इस्तेमाल डायरिया, अलसर आदि रोगों में भी उपयोगी माना जाता है। इसका रस टानिक का काम करता है। यह हृदय के रोगों के लिए बहुत ही उपयोगी है तथा उच्च रक्तचाप एवं लीवर के लिए, कान दर्द में इस्तेमाल किया जाता है। इसके अलावा साँप के काटने पर भी इसका उपयोग विष को कम करने के लिए किया जाता है।

11. **चन्दन** :– सेंटलेसी कुल के इस वृक्षका वैज्ञानिक नाम सेंटेलम एलबम है। यह मध्यम उँचाई का वृक्ष है। यह भारतीय प्रायद्वीप के शुष्क क्षेत्रों में मिलता है किन्तु कुछ लोगों का मानना है कि यह भारतीय न होकर विदेशी पौधा है जिसे इंडोनेशिया से लाया गया है। इस पौधा का वर्णन हमारे ग्रंथों में भी है। भारतीय संस्कृति में इसे सबसे अधिक महत्व दिया गया है। यह वृक्ष अपनी सुगन्ध एवं शीतलता से सबका मन मोह लेता है। यह मैसूर एवं तमिलनाडू के क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है। इसके अलावा इसका विस्तार उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश राजस्थान, उड़ीसा आदि जगहों पर हो रहा है। चन्दन की लकड़ी बहुउपयोगी है। इससे निकला हुआ तेल तथा उच्च श्रेणी की लकड़ी भी कीमती होती है एवं तौल कर बिकने वाली एकमात्र लकड़ी है। इसका तेल, बुखार, त्वचा रोग, दस्त, पेचिस सम्बन्धी बीमारियों को दूर करता है। इसकी लकड़ी का इस्तेमाल हवन सामग्री के रूप में किया जाता है। चन्दन एवं कपूर को एक साथ पीसकर सिर पर लेप लगाने से सिर दर्द एवं ज्वर से आराम मिलता है। इसका उपयोग सौन्दर्य एवं सुगन्धित सामानों के निर्माण में भी किया जाता है।

12. **अमरूद** :– मिर्टेसी कुल के इस वृक्ष वैज्ञानिक नाम साइडियम ग्वाजावा है। इसे कई नामों से जाना जाता है जिसमें अमरूद एवं प्यारा मशहूर नाम है। सस्ता, स्वास्थवर्धक एवं विटामिन सी से भरपूर। अमरूद भोजन को पचाने में तथा कब्ज को दूर करने में सहायक है। आयुर्वेद में इसके फल के अतिरिक्त पत्तियाँ, कोपल एवं छाल का भी उपयोग होता है। दमा एवं खाँसी में फल को भूनकर खाने से लाभ मिलता है यह कृमिनाशक एवं गुर्दे की बीमारी में भी उपयोगी है। इसमें पाये जाने वाले विटामिन सी मसूढो तथा दाँतों के लिए उपयोगी है। टांसिलाइटीस में इसके पत्तियों को पानी में उबालकर गरारे करने से आराम मिलता है। इसके कोपलों को पीसकर गोली बनाकर खाने से खूनी पेचिस में आराम मिलता है उसके अलावा दाद, खुजली तथा सोराइसिस रोगों में भी लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

13. **दालचीनी** :– लउरेसी कुल के इस वृक्ष का वैज्ञानिक नाम सीनामोमम वेरम है। यह 15 से 20 मी. की ऊँचाई का वृक्ष है। इसके छाल का इस्तेमाल लोग मसाले के रूप में स्वाद बढ़ाने के लिए करते हैं। कान एवं आँख में निरंतर पीड़ा होने पर इसको पीसकर लगाने से आराम मिलता है। यह ज्वर के पूर्व की कपकपी एवं सर्दी, दस्त को रोकने में

भी उपयोग किया जाता है। इसे शक्तिवर्धक, शरीर की वायु या वात विकार या वादी हटाने की दवा के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह कमजोरी तथा उल्टी में भी लाभकारी है।

14. **लवंग** :– मिर्टेसी कुल के इस पौधे का वैज्ञानिक नाम साइजीजिएम एरोमेटिकम है। तासीर में गर्म एवं स्वाद में चटपटी होने के कारण शीत ऋतु में इसका उपयोग बहुत होता है। लवंग/लौंग हमारे जीवन में बहुत उपयोग है। इस पौधे की छाल एवं अपरिपक्व पुष्प कलिकाएँ औषधीय महत्व की होती है। सर्दी लगने पर लवंग के चूर्ण को चाय में डालकर पीने से उसका स्वाद भी बढ़िया होता है तथा सर्दी से राहत मिलती है। सर्दी जुकाम में तुलसी के पत्ते, काली मिर्च के साथ इसका काढ़ा बनाकर लेने से राहत मिलती है। खाँसी होने पर इसे पीसकर मधु के साथ चाटने से राहत मिलती है। इसके अलावा इसका इस्तेमाल पाचन क्रिया, मुँह में बदबू, दाँतों की सड़न, गला बैठने एवं दंत मंजन में होता है। इसका तेल दाँतों के दर्द के लिए बहुत ही फायदेमंद है। इस पौधे की छाल दमा, फोड़ा, फुंसी, दाग, खुजली, आदि चर्म रोगों में बहुत ही लाभदायक है। लवंग एवं फिटकरी वाले चूर्ण से मंजन करने पर दाँत एवं मसूड़े मजबूत रहते हैं। इसका नियमित सेवन करने से खून में रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। लवंग का प्रयोग पान सुपारी के साथ मुख शुद्धी के लिए भी प्रसिद्द हैं।

15. **पीपली** :–पाइपरेसी कुल के इस पौधे का वैज्ञानिक नाम पाइपर लोंगम है। इसे पीपली, पीपुल, पीपलामूल आदि कहते हैं। बुखार, सर्दी एवं खाँसी, फेफड़े में कफ जमना आदि में इसको पीसकर मधु के साथ खाने पर आराम मिलता है। इसका इस्तेमाल काढ़ा बनाकर भी किया जाता है।

16. **इलायची** :–जिंजीबरेसी कुल के इस वृक्ष का वैज्ञानिक नाम इलिट्टेरिया कारडामोमम हैं। यह मुख्य रूप से मसाले के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह केवल, तमिलनाडु एवं कर्नाटक में पाया जाता है। इसकी खेती पश्चिमी घाटी में होती है। इसका उपयोग कढी बनाने तथा व्यंजन को स्वादिष्ट बनानें में किया जाता है। इसका औषधीय महत्व भी हैं। इसका उपयोग शक्ति बढ़ाने, भूख बढ़ाने, उदर सम्बन्धी शिकायत एवं शरीर की वायु या वात-विकार को नियंत्रित रखने में किया जाता है एवं मुख की दुर्गन्ध दूर करन में भी यह मदद करता है। बाजार भाव बहुत ही महँगा होने के कारण इसकी खेती कर्नाटक और उसके आस-पास बहुत अधिक मात्रा में होती है। यह मधुर सुगंध एवं सुस्वाद के लिए मशहूर है।

17. **अदरख** :– जिंजीबरेसी कुल के इस पौधे का वैज्ञानिक नाम जिंजिवर आफीसीनेलिस कहा गया है। यह सभी जगहों पर उपलब्ध अनेक विकारो में प्रयुक्त होने वाली औषधि है। यह शक्ति वर्धक, नाड़ी के लिए उत्तेजक एवं वात-शामक पाचन एवं पाचन बढ़ाने वाली, पेट फूलने, उदर पीड़ा की औषधि है। खाँसी में घी के साथ इसके रस को मिलाकर लिया जाता हैं। यह कफ निस्तारक, रक्तशोधक हेतु श्रेष्ठ माना गया है। इसके सूखे फल को सोंठ या सुण्ठी कहते हैं। अदरख सुखाने के बाद जब उसका जल वाष्पीकृत हो जाता है तब इसे सोंठ का नाम दिया जाता है। सोंठ में महत्वपूर्ण अमीनो अम्ल पाया जाता है जो औषधि का काम करता है। यह सभी प्रकार के सामान्य ज्वर में प्रयुक्त किया जाता है। बाहरी प्रयोग में इसे आम वात में पीसकर लेपन करते हैं तथा अरूचि में इसे भोजन के पूर्व लेते हैं।

18. **गोलमरीच/मिर्च** :– पाइपरेसी कुल के इस पौधे का वैज्ञानिक नाम पाइपर नीग्रम है। लतादार पौधा होने के कारण इसे बाँस या किसी पेड़ का सहारा दिया जाता है। इसका फल गुच्छेदार होता है तथा हरा भी होता है। यह पकने पर काला होता है। इसका इस्तेमाल हल्का बुखार एवं वात की कमजोरी, पाचन में, पेट फुलने, कफ निवारणो खाँसी एवं त्वचा सम्बन्धी रोगों में अति लाभदायक है। छोटे बच्चें को इसका चूर्ण बनाकर मधु के साथ देने से बच्चों को कफ से आराम मिलता है। इसका काढ़ा बनाने में भी इस्तेमाल किया जाता है। अधिक खाँसी मे इसके चूर्ण को गुड़ एवं घी के साथ पकाकर लेने से बहुत ही लाभ मिलता है। इसका उपयोग मसाले में स्वाद बढ़ाने के लिए भी किया जाता है।

19. **महुआ** : – सेपोटेसी कुल। इसका वैज्ञानिक नाम मधुका इंडिका है। यह वृक्ष 20 मी. तक का होता है तथा यह बहुत ही उपयोगी होता है। इसकी छाल का काढ़ा चर्मरोग, फोड़ा इत्यादि में लेप करने से आराम होता है। इसका

पुष्प कफ तथा ब्रोंकाइटिस के उपचार में लाभकारी होता है। इसके बीजों का तेल दाद, खाज, खुजली, फोड़ा, गैस, फुंसी तथा चर्मरोगों में भी उपयोगी होता है। इसका बीज उदर रोगों में उपयोगी है। इसके पुष्पों से शराब निर्मित की जाती है। इसके फूल बड़े ही सुगन्धित होते हैं। इसके पुष्पों का सेवन शक्ति बढ़ाने तथा सूजनको कम करने में भी उपयोगी है। इसके फूलों को लोग सुखाकर गुड़ के साथ खाते हैं।

20. **तुलसी** : – लेमियेसी कुल इस पौधे का वैज्ञानिक नाम ओसीमम सेन्टम हैं। यह हिन्दुओं के घर-घर में पाया जाता है। इस पौधे के धार्मिक महत्व के साथ ही औषधीय महत्व है। आयुर्वेद में तुलसी को सभी रोगों का नाश करने वाली औषधि बताया गया है। यह वृक्ष निःसन्देह अपने गुणों के कारण एक दिव्य औषधि है। इसका औषधीय उपयोग क्ई रोगो में किया जाता है जैसे– सुबह खाली पेट तुलसी का रस लेने से बहुत लाभ मिलता है। तुलसी के पत्ते और बीज लेने से मल के साथ आने वाला खून बन्द हो जाता है। खाँसी, दमा, आदि में इसके पत्ते को खाने से लाभ मिलता है। ज्वर भी इसके पत्ते का रस लाभकारी होता है। इसके अलावा खून साफ करने, कोलेस्ट्राल की मात्रा कम करने, टी.वी, ह्रदय रोगों, जिगर रोग, उदर रोग, मुर्च्छा, दाद, मधुमेह, कान दर्द, एवं बच्चो को सर्दी जुकाम, उल्टी एवं कफ को कम करने में इसके पत्ते का रस शहद के साथ मिलाकर देने से लाभ मिलता है। कहा गया है कि जहाँ एक भी तुलसी का पौधा रहता है वहाँ सभी देवता उपस्थित रहते हैं।

21. **पाथरकुची** :– क्रेसुलेसी कुल के इस पौधे का वैज्ञानिक नाम कालान्ची पीनाटा है। यह वर्ष भर चिर स्थायी या बारहमासी पौधा कहलाता है। इसकी पत्तियाँ धारीदार एवं मोटी होती है। जिसके कारण यह वर्ष भर हरी-भरी रहती हैं। इसकी पत्तियों को गर्म करके क्ई रोगों में इस्तेमाल किया जाता है। चोट एवं घाव में इसके पत्ते के भूनकर लगाने से आराम मिलता है। इसके पत्ती को पीसकर सूजे हुए स्थान पर लगाने से आराम मिलता है तथा जमे हुए रक्त को ठीक करता है।

22. **पुदीना** :– लेमिएसी (Lamiaceae) कुल के इस पौधेका वैज्ञानिक नाम मेन्था अरवेनिसस (Mantha arvensis) है। औषधीय महत्व के कारण इस पौधे का उपयोग आयुर्वेद चिकित्सा में सबसे अधिक होता है। इसकी पत्तियों के तेल का इस्तेमाल औषधीयों में होता है। पेट में दर्द या पेट भारी होने पर इसकी पत्तियों को पीसकर खाने से आराम मिलता है। लोग चटनी के तौर पर भी इसका इस्तेमाल करते हैं। इसके पत्तियों के आशवन से पुदीन हरा नामक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक गोली तैयार होती है। यह स्वाद में बहुत ही अच्छा लगता है। लोग गर्मी के दिन में इसका उपयोग शर्बत बनाने में करते हैं। यह वायुसारी एवं उत्तेजक होती है। यह वमन, कब्ज, पाचन एवं उदर सम्बन्धी विकारों में अत्यन्त लाभकारी होता है।

23. **मेथी** : – पेपिलिओनेसी कुल के इस पौधे का वैज्ञानिक नाम ट्राइगोनेला फोजनम हैं। हरी पत्तेदार सब्जी के अलावा यह एक गुणकारी औषधि है। इसके नियमित उपयोग से शरीर स्वस्थ रहता है। इसकी पाचन संबन्धी क्ई रोग जैसे – बदहजमी, पेट में गैस बनना आदि में उपयोग किया जाता है। इसकी पत्तियों में आयरन की मात्रा अधिक होती है। जिसके चलते यह लाल रक्त कणों की कमी को दूर करता है। किशोरियों के लिए इसका सेवन बहुत लाभ दायक होता है। गला खराब होने पर इसके बीजों को पानी में उबालकर गरारे करने से लाभ मिलता है। निमोनिया, ब्रोंकाइटिस, जुकाम आदि में मेथी की चाय लेने से शरीर में ज्यादा पसीना आता है और बुखार जल्दी उतर जाता है। मधुमेह के लिए भी इसका बीज रोज लेने से डाइबीटिज रोगियों में ग्लुकोज सीरम कोलोस्ट्रल आदि के स्तर में कमी आती हैं। जलने पर इसे पीसकर लगाने से आराम मिलता है।

24. **धृतकुमारी** :– लिलिएसी कुल केइस पौधे का वैज्ञानिक नाम एलो वेरा है। बारह मासी या वर्षभर बराबर रहने वाला यह स्वदेशी औषधीय पौधा छोटा एवं कँाटेदार पत्ती वाला है। इसके पत्तों का रस एवं जड़ों का आयुर्वेद में इस्तेमाल होता है। त्वचा सामग्री सभी रोगों तथा बालों का झड़ना, बालो का न बढना एवं असमय वालों का पकना आदि में इसके तेल का इस्तेमाल किया जाता है जो इन सभी को रोकने में मदद करता है। विशेष रूप से यह बालों के लिए अचूक दवा है।

25. **सर्पगन्धा** :– एपोसाईनेसी कुल के इस पौधे का वैज्ञानिक नाम राउलफिया सर्पेन्टाइना है। इस पौधे का आयुर्वेद जगत में बहुत ही महत्व है। सर्पाकार मुड़ी हुई जड़ों एवं पत्तियों के अपने औषधीय महत्व के लिए ही मशहूर है। यह छोटे आकार का झाड़ीनुमा पौधा है जो अत्यधिक प्रयोग के कारण दुर्लभ प्रजाति के पौधे में आ गया है। इसके पत्ती का रस नेत्र रोग में लाभकारी है। इसकी जड़ों का चूर्ण तैयार कर मानसिक रोगों में इस्तेमाल होता है। यह अनिद्रा में एवं तनाव को कम करने में लाभकारी पौधा है। इसका उपयोग कृमि नाशक, ज्वर एवं टानिक के रूप में भी है।

26. **अश्वगंधा** :–सोलानेसी कुल के इस पौधे का वैज्ञानिक नाम विथेनिया सोमनीफेरा है। अश्वगंध वराह कर्णा, आसंध आदि नामों से परिचित इस पौधे के कच्चे मूल से अश्व के समान गंध आने के कारण इसे अश्वगंधा नाम दिया गया है। कम ऊँचाई का झाड़ीदार पौधा है। पश्चिमी मध्यप्रदेश में मन्दसौर और नागौर में अधिक पाया जाता है। इसके पत्ते रोमयुक्त, फूल में पीला होता है। फल गोलाकार एवं रसभरी के फलों के समान होता है। यह कार्तिक एवं मार्गशीर्ष में पकते हैं। आयुर्वेद जगत में इसके जड़ को निकालकर जाड़े में सुखाकर इसके पूर्ण का उपयोग विभिन्न रोगों के लिए किया जाता है। इसका मूल ही प्रयुक्त होता है। इसके जड़ में कई एल्केलायड जैसे तत्व पाये जाते हैं। जो औषधि में काम आते हैं। मूलतः यह अल्सर, सूजन, कफ, वातशामक, बलवर्धक, जीर्ण रोग आदि के लिए श्रेष्ठ माना गया है। यह शरीर में धातुओं की वृद्धि करता है तथा माँसमज्जा का शोधन करती है। इसके अलावा यह मस्तिष्क के तनाव, श्वास रोग, उच्च रक्तचाप, मूर्च्छा, अनिद्रा, आदि में समान रूप से लाभकारी है। इसके प्रयोग से रक्त का हिमोग्लोबिन बढ़ता है। यह आयु को बढ़ाता है और यह टानिक का काम करती है।

27. **मेंहदी** :–लाइथ्रेसी कुल के इस पौधे का वैज्ञानिक नाम लोसोनिआ इनरमिस है। मेंहदी केवल शृंगाार की ही वस्तु नहीं इसमें अद्‌भुत औषधीय गुण भी है। इसका वृक्ष छोटा एवं झाड़ीनुमा होता है। बालों में मेहंदी लगाने से बाल काले एवं मुलायम होते हैं। यह एन्टीसेप्टीक भी है। इसके लेप से हथेलियों एवं तलवों की जलन कम होती है। उच्च रक्तचाप की शिकायत में समय-समय पर हथेली एवं तलवों में लगाने से नींद अच्छी आती है तथा रक्तचाप सामान्य हो जाता है। बार-बार उल्टी होने पर इसके पत्तों को चबाने से उल्टी बन्द हो जाती है। मुख में छाले पड़ने पर मेहँदी के चूर्ण को गर्म पानी में घोलकर कुल्ला करने पर आराम मिलता है। शरीर का कोई भाग जलने पर शहद के साथ मिलाकर लगाने से आराम मिलता है। सिर में फोडे एवं फुँसी या रूसी की शिकायत में रात के समय में इसे पानी मे भिगोकर प्रातः उसी पानी से सिर को धोने से शिकायत दूर हो जाती है। फटी एड़ीयों में मेहँदी के चूर्ण को वैसलीन के साथ लगाने से आराम मिलता है तथा फटी एड़ियाँ ठीक होने लगती है। इसके अलावा खूनी दस्त, मूत्र में अवरोध, नाक से खून टपकने या नकसीर होने पर एवं सिर के सफेद बाल को काला करने में यह अति लाभकारी पौधा है।

28. **ब्राह्मी** :–स्क्रोफुलेरिएसी कुल के पौधे का वैज्ञानिक नाम बकोपा मौनीरा है। ऐन्द्री, नीरब्राम्ही, बरभी आदि नामों से परिचित इस पौधे के बुद्धिवर्धक होने के कारण ब्राम्ही नाम दिया गया है। छोटे क्षुप के रूप में यह उत्तरी भारत में गंगा के किनारे वर्ष भर पायी जाती है। इसमें फूल ग्रीष्म ऋतु तथा फल वर्षा ऋतु में लगते हैं। इसके अलावा यह सारे भारत में पानी से लगी भूमि में बिरवरी पायी जाती है। मस्तिष्क, नाड़ी की दुर्बलता, मस्तिष्क की रक्तवाही नलिकाओं में थक्के जमने, मिरगी में इसका प्रयोग अत्यंत लाभकारी है। चिंता, अवसाद, घबराहट, हिस्टेरिया जैसे मनोविकारों या मानसिक रोगों में भी इसका सेवन लगातार करने से लाभ मिलता है। ब्राह्मी का सेवन स्नायुकोशों को उत्तेजित करना है एवं मस्तिष्क में प्रचुर मात्रा में रक्त पहुँचाना है। यह सीधे हाइपोथेलेमस पर प्रभाव डालता है इसलिए यह मनोविकारों या ज्वर रोगों में भी लाभकारी है। इसका उपयोग साधना के समय एकाग्रता बढ़ाने के लिए की जाती है वैज्ञानिक प्रयोग भी बताते हैं कि इसके प्रयोग से मस्तिष्क कार्य में वृद्धि होती है।

29. **भृंगराज** : – एसट्रेसी कुल के इस पौधे का वैज्ञानिक नाम इकलिप्टा अल्बा है। भौरे के सामान शोभायमान केशों को जन्म देने के कारण ही यह नाम दिया गया है। इसके अलावा इसे केश रंजन, केशराज, भांगराव, केसुरिया आदि नामों से भी जानते हैं। वर्षा में पुष्प और हेमंत में फल लगते हैं। सफेद फूलों वाला भृंगराज केश एवं केश रोगों

प्रस्ताव दिया। PNAS के नये अंक में कंसोर्टियम फार द बारकोड आफ लाइफ (CBOL) के पादप कार्य समूह (PWG) द्वारा प्रस्तावित ''स्थलीय पादप के लिए डी० एन० ए० बारकोड'' द्वारा अधिक लोग द्रुत गति से अच्छे अभिनिर्धारण कर सकते हैं।

पौधों की बारकोडिंग के लिए रायल बाटनिक गार्डेन, एडिनबर्ग के पीटर होलिंग्सवर्थ के नेतृत्व में 9 देशों में 24 संस्थानों से 52 वैज्ञानिकों ने पौधों के लिए डी० एन० ए० बारकोड डाटा हेतु प्रतिष्ठान के तौर पर rbcL एवं matK से लगभग 1450 बेसपेयर के संक्षिप्त अनुक्रम के जोड़ का प्रस्ताव दिया है। जाँच किए गए 907 नमूनों में rbcL एवं matK के उपयोग करते हुए पादप कार्य समूह ने 72% मामलों में जाति अभिनिर्धारण में पूर्ण सफलता पाई और शेष मामलों में जातियों को सम वंशीय जातियों के समूहों से मिलाकर सफलता हासिल की।

इस प्रकार की बारकोडिंग से किसी भी जार में उपस्थित पादप-चूर्ण, या CITES के अंतर्गत प्रतिबंधित पादप जाति या उद्यान के किसी पौध की आसानी से पहचान की जा सकेगी। पादप कार्य समूह ने विश्वव्यापी मापदंडों को अपनाया है –सभी स्थलीय पौधों के लिए किस लोकाइ की नियमित क्रमबद्धता हो सकती है? –बिना किसी संदिग्ध base call के दो दिशाओं में जाने वाले अनुक्रम के लिए किस लोकाइ की अधिकतम उपयोगिता है? –किस लोकाइ से अधिकतम जातियों के पार्थक्य की जानकारी होगी?

इस दल ने विभिन्न प्रयोगशालाओं से आवृतबीजी के 445, अनावृतबीजी के 38 एवं क्रिप्टोगेम के 67 जातियों के 907 अनुक्रम डाटा समेत नमूने एकत्रित किये। कोई भी भारतीय या भारतीय प्रयोगशाला पादप कार्य समूह (PWG) के इस अध्ययन में शामिल नहीं था। डी० एन० ए० बारकोडिंग से पैराटैक्सोनोमिस्ट एवं अन्य लोग उन नमूनों के अभिनिर्धारण कर लेते हैं जो पहले विशेषज्ञ ही करते थे। अब वे विशेषज्ञ पुनरीक्षात्मक अध्ययन एवं अत्यंत जटिल मामलों में अपना समय दे सकते हैं।

Barcode of Life Database में 5,80,00 प्राणी जातियों के 6,20,000 से भी अधिक नमूनों के कोशिका गुणसूत्र (Cytochrome) C. Oxidase 1 (CO1) अनुक्रम पहले ही संग्रह कर लिए हैं। पौधों के लिए अब तक 13,533 जातियों के rbcL data sets संगृह हो चुके हैं। लगभग 380,000 नामित पादप जातियों के साथ आगे के विशाल कार्य में सभी साझेदारों की सहयोगिता अपेक्षित है। CBOL पादप कार्य समूह (PWG) ने पार्थक्य क्षमता (power) से विभिन्न लोकाइ से सापेक्षिक पार्थक्य क्षमता पर अधिक जोर दिया है। नामित स्थलीय पौधों में से लगभग 90% आवृतबीजी (पुष्पी पौधे) के लिए पादप कार्य समूह की रणनीति के अच्छे परिणाम 3,00,000 या उससे अधिक जातियों के rbcLएवं matK के लिए एक उपयोगी अनुक्रम लाइब्रेरी का पथ प्रशस्त करते हैं।

प्रामाणिक दो विंदुपथ (लोकस) बारकोड matK एवं rbcL के उपयोग के लिए होलिंग्सवर्थ के नेतृत्व में 52 वैज्ञानिकों द्वारा वर्णित एवं प्रामाणीकृत प्रणाली से सशक्त विश्व व्यापी वनस्पतिक कुंजी बनेगी। आशा है भारत में भी इस कार्य को लेकर नई पहल होगी और हम जैवविविधता को एक नये दृष्टिकोण द्वारा अधिक साफल्यवादी (holistic) रूप में जान और पहचान पाएंगे।

———

पर्यावरण समाचार

संकलक : संजीव कुमार
भा. व. स. मुख्यालय कोलकाता

1. महानगरों में पेड़ों की संख्या लगातार कम होने से व नये पौधे नही लगाने से हरियाली लगातार घटती जा रही है। नई दिल्ली में 20 प्रतिशत, हैदराबाद में 30 प्रतिशत, मुम्बई में 0.03 प्रतिशत, चेन्नई में 2 प्रतिशत व कोलकाता में 8 प्रतिशत हरियाली के इलाके बचे हैं।

सौजन्य : दैनिक जागरण

2. ग्लोबल वार्मिंग के कारण तिब्बत के अस्तित्व को खतरा है। ग्लेशियर के तेजी से पिघलने के कारण सूखा और बाढ़ आने लगा है। इससे मौसम असंतुलित होता जा रहा है। झील सूख रहे हैं। बीते सालों में तिब्बत के तापमान में लगातार वृद्धि होती रही है। तिब्बत की सीमा भारत के लद्दाख, उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश से सटी हुई है।

सौजन्य : दैनिक जागरण

3. राज्य पर्यावरण विभाग ने मोबाइल सेवा प्रदाता कंपनियों को टावर लगाने के लिए नया निर्देश जारी किया है। मोबाइल टावरों से निकलने वाले रेडिएशन की वजह से लोग कैंसर की चपेट में आ सकते हैं तथा पक्षियों पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ सकता है। टावरों से निकलने वाले इलेक्ट्रो मैगनेटिक तंरगों से पक्षियों पर सबसे अधिक दुष्प्रभाव पड़ता है। इसलिए अस्पतालों, स्कूलों व सार्वजनिक भवनों की छतों पर टावर का निर्माण नहीं किया जा सकता।

सौजन्य : दैनिक जागरण

4. जलवायु परिवर्तन का जूट उद्योग पर बुरा असर पड़ सकता है। जूट की खेती के लिए भारी वर्षा की आवश्यकता होती है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण लगातार वर्षा में कमी आ रही है। जूट सिंथेटिक वस्तुओं का अच्छा विकल्प हो सकता है।

सौजन्य : दैनिक जागरण

5. ऑटो रिक्सा में अवैध रूप से इस्तेमाल हो रहे काटा तेल से कैंसर और फेंफड़ो का रोग हो सकता है। कारण तथाकथित इस काटे तेल से बेजिन, कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर, हाइड्रो कार्बन, नाइट्रेट और कार्बन डाइक्साइड जैसी जहरीली गैसों का उत्सर्जन होता है।

सौजन्य : दैनिक जागरण

6. बंगाल की मछलियों में जहरीली धातु मिली है। 264 किस्म की मछलियों के नमूने एकत्र कर उसकी बारीकी से जांच की गई। जांच के दौरान 79 किस्मों में पारा होने का पता चला है। मछली खाने वालों के लिए यह चिन्ता का विषय है।

सौजन्य : दैनिक जागरण

7. भारत में बाघों की संख्या हाल में काफी घट गई है। 2002 में बाघों की संख्या 8,642 थी जो 2006 में घटकर 1,411 रह गई। इसके अतिरिक्त भारत और नेपाल से प्रत्येक वर्ष 12 मिलियन पक्षी यूरोप के बाजारो में तस्करी से भेज दिए जाते हैं। इन अपराधों को रोकने के लिए हेल्पलाइन खोले जाने की योजना है। यह कदम इसलिए उठाया गया है ताकि वन्यजीव प्रेमी ऐसी घटनाओं की सूचना सही समय व स्थान पर दे सकें।

सौजन्य : हिन्दुस्तान टाइम्स पत्रिका

8. बाघों के मृत्यु का एक नया कारण बाघों के बीच इलाके पर कब्जे को लेकर आपस में खूनी भिड़ंत है। एक इलाके में एक ही बाघ रह सकता है। दूसरे अन्य बाघ के उस इलाके में प्रवेश करने पर वे आपस में भिड़ जाते हैं और खूनी संघर्ष में बाघों की मृत्यु हो जाती है। ऐसी घटनाएं कान्हा और पेंच राष्ट्रीय पार्को में घटी हैं।

सोजन्य : हिन्दुस्तान टाइम्स पत्रिका

9. अमेरिका में एक खतरनाक मेंढ़क फंगस (frog fungus) उभयचर की सैंकड़ो जातियों का सफाया कर चुका है और अब फिलीपीन्स में मेंढ़क की पांच जातियों का सफाया करने पर तुला है। यह फंगस त्वचा पर आक्रमण करती है व शरीर की बनावट पर बुरा प्रभाव डालता है।

10. लाल अबीर से होली खेलना दूसरे रंगो की तुलना से अधिक सुरक्षित है। लाल अबीर में लेड की मात्रा सबसे कम पाई जाती है। लेड स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। इसका मस्तिष्क, हड्डी और यकृत पर बुरा असर पड़ सकता है। लेड की सर्वाधिक मात्रा पीले अबीर में पाई गई। प्रति 100 ग्राम में अनुमानित मात्रा 0.06 ग्राम है जबकि पीले अबीर में 4.6 ग्राम मिली।

सौजन्य : दैनिक जागरण

अंटार्कटिका : क्या आप जानते हैं..... ?

आर. के. गुप्ता एवं श्याम किशोर महतो
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

1. वर्ष 1981 में अंटार्कटिका के लिए प्रथम वैज्ञानिक अभियान दल रवाना हुआ। इस दल के नेता सैयद जहूर कासिम थे।
2. वर्ष 1983 में भारतीय वैज्ञानिकों ने प्रथम अंटार्कटिका स्टेशन दक्षिण गंगोत्री की स्थापना की थी।
3. वर्ष 1988 में द्वितीय भारतीय स्टेशन मैत्री की स्थापना की गयी थी।
4. अभी तक भारत 28 वैज्ञानिक अभियान दल को अंटार्कटिका भेज चुका है।
5. प्रारंभ से लेकर अब तक भारतीय अंटार्कटिका अभियानों में भूगर्भशास्त्र, भूविज्ञान, अंतरिक्ष विज्ञान, जीव विज्ञान,

1

2

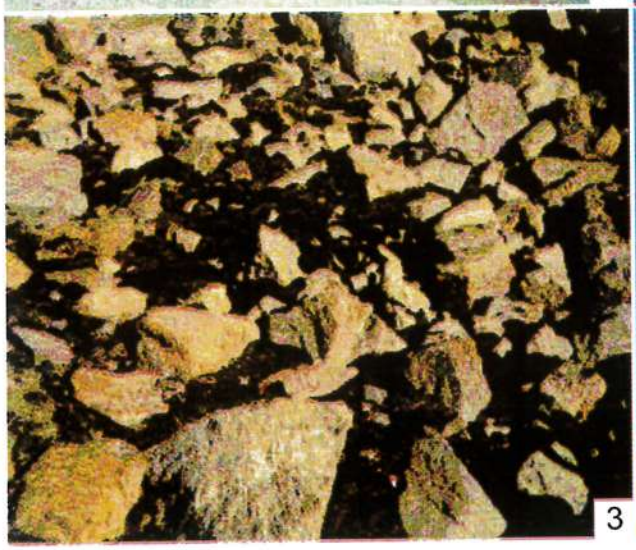
3

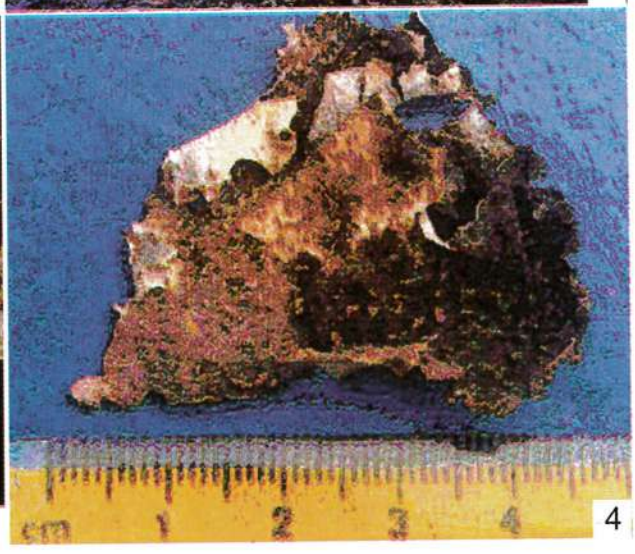
4

1. सर्वेक्षण पिस्टन बुली द्वारा
2. बर्फीली आंधी के बाद का दृश्य
3. पत्थरों कें बीच हरितोदभिद् मॉस समूह
4. शैवाक : अम्लीकारिया एफ्रीना

वनस्पति विज्ञान, भूभौतिकी, हिमनद, समुद्री विज्ञान, मानव जीव विज्ञान, हिम एलबीडो इत्यादि के क्षेत्रों में विशेष अनुसंधान किये गये।

6. डा० डी० के० सिंह भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पहले वैज्ञानिक हैं जिन्होंने 16 वें अंटार्कटिक अभियान में भाग लिया।
7. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने अभी तक 6 अंटार्कटिक अभियान में भाग लिया है।
8. ध्रुवीय अनुसंधान को और सुदृढ़ बनाने हेतु महासागर विभाग ने गोवा में अंटार्कटिका अध्ययन केन्द्र की स्थापना की है।
9. अंटार्कटिका में औसत बर्फ की मोटाई 2,800 मीटर व कहीं-कहीं पर 4,500 मीटर है।
10. अगर अंटार्कटिका की पूरी बर्फ पिघल जाये तो समुद्र की सतह लगभग 60 मीटर तक उठ जायेगी।
11. अंटार्कटिका का क्षेत्रफल लगभग 1.5 करोड़ वर्ग कि. मी. है इसमें से केवल 2% बर्फ रहित है।
12. अंटार्कटिका गोंण्डवाना लैंड का ही हिस्सा था जो कि विभिन्न कल्पों में धीरे-धीरे दक्षिणी अमेरिका, भारतीय उपमहाद्वीप, न्यूजीलैण्ड, अफ्रीका एवं आस्ट्रेलिया से अलग होकर अपनी वर्तमान स्थिति में आ गया। आकार में यह विश्व का पाँचवा बड़ा महाद्वीप है।
13. अंटार्कटिका में अभी तक – 80° से. ग्रेड न्यूनतम तापमान रिकार्ड किया गया है।
14. भारत ने जून 1988 में अंटार्कटिका खनिज स्रोत के व्यवसाय कानून नियमों पर हस्ताक्षर किये।
15. अंटार्कटिका महाद्वीप सबसे अधिक ठंडा, तेज वायु तथा सूखा बर्फीला क्षेत्र है।
16. अंटार्कटिका महाद्वीप की खोज सन् 1820 में हुई लेकिन वास्तविक अनुसंधान कार्य 20 वीं सदी में आरम्भ हुआ।
17. भारत ने अंटार्कटिका में एक डाकघर की स्थापना की है और यह 7 वें अंटार्कटिक वैज्ञानिक अभियान दल द्वारा दक्षिण गंगोत्री में स्थापित किया गया।
18. 19 अगस्त 1983 को भारत ने अंटार्कटिका संधि की सदस्यता प्राप्त की है।
19. अंटार्कटिका में करीब 45 देशों के स्टेशन हैं जिनमें शोध कार्य चल रहा है।

सत्य की खोज, वैज्ञानिक ज्ञान का तथ्य और चुनौतियों का सामना करने की इच्छा शक्ति से ही बहुविधात्मक तथा बहुसंस्थापक अभियानों के लिये प्रमुख प्रेरणा शक्ति मिलती रही है।

———

भू-मण्डलीय तापन : वर्तमान समय का सर्वाधिक चर्चित विषय

ए. के. वैश्य, ए. प्रामाणिक एवं सव्यसाची साहा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

वर्तमान विश्व में भूमण्डल के बढ़ते तामपान को लेकर समस्त मानव समाज अत्यन्त चिन्तित हो रहे हैं। भूमण्डल के इस बढ़ते हुए तापमान को भूमंडलीय तापन नाम से अधिक जाना जाता हैं। भूमंडलीय तापन को हमेशा एक गम्भीर पर्यावरणगत समस्या के रूप में वर्णित किया जाता हैं। कारण एक तो यह समाज के उन्नति और आर्थिक वृद्धि के साथ जुड़े हुए है और दूसरा ये धरती के ताप और विकिरण समानता को नष्ट कर रहे हैं। पृथ्वी तल से निकट की हवा तथा महासागरों के औसत तापमान में वृद्धि को भूमंडलीय तापन कहते हैं। विगत 100 वर्षो में धरती का औसत तापमान 1 डिग्री सेन्टिग्रेड बढ़ गया है। भूमंडल के तापमान के वृद्धि के मुख्य कारण हैं वर्धित हरित गृह प्रभाव। भूमंडलीय तापन को समझने के लिए समझना पड़ेगा कृत्रिम हरित गृह, प्राकृतिक हरित गृह, साधारण हरित गृह प्रभाव, वर्धित हरित गृह प्रभाव व असाधारण परिवर्तन पर क्योटो नयाचार क्या है।

कृत्रिम हरित गृह : नीचे दिये गए चित्र से हमें कृत्रिम हरित गृह के बारे में जानकारी मिलेगी।

चित्र 1 : कृत्रिम हरित गृह

अधिकांश कृत्रिम हरित गृह शीशे के छोटे घर जैसे होते हैं। हरित गृह में विशेषतः शीतकाल में पौधे उगाए जाते हैं। सूर्य ताप को संजोकर हरित गृह अपने कार्य करते हैं। शीशों से छनकर प्रकाश के साथ हरित गृह में आने वाला ताप निकल नहीं पाता है। इस प्रकार हरित गृह शीतकाल में भी तप्त रहता है।

प्राकृतिक हरित गृह : हमारी धरती के वातावरण मे भी कुछ गैस हैं जो कि वही कार्य करती हैं जो कृत्रिम हरित गृह में शीशा करता है। इन सब गैसों को हरित गृह गैस कहते हैं। नीचे दिए गए चित्र से हमे वातावरण के हरित गृह गैसों और उनके परिमाण के हिसाब मिलेगा।

साधारण हरित गृह प्रभाव : सूर्य किरण इन सब हरित गृह गैसों के आस्तरन को पार करके धरती के वातावरण में पँहुचती है और भूमि, जल एवं जीवमंडल इस सूर्य किरण की ऊर्जा को अवशोषित करके तप्त होते हैं। धरती के ये ताप धरती में न रह कर अवरक्त (इन्फ्रारेड) विकिरण के रूप में अन्तरिक्ष की ओर चल पड़ते हैं। अगर वातावरण में इन

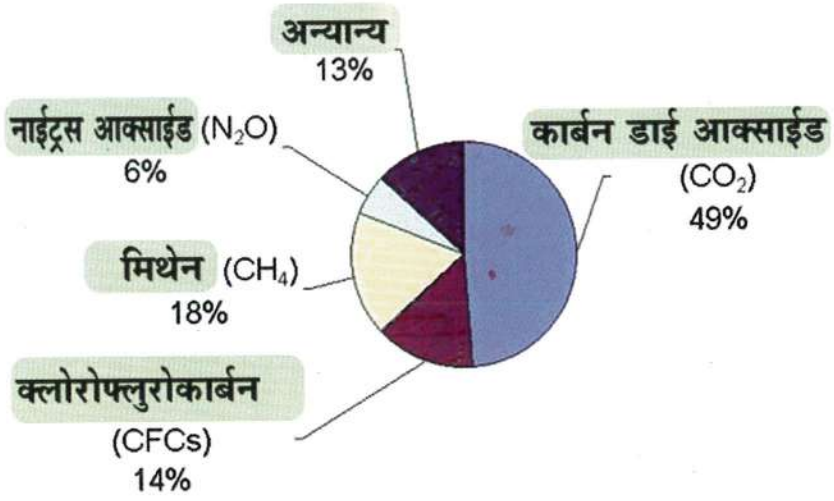

चित्र 2 : वातावरण में हरित गृह गैस

सब हरित गृह गैसों की उपस्थिति न हो तो ये सारे अवरक्त विकिरण अन्तरिक्ष में चले जाते और हमारी धरती हमेशा अतिशीतल, बर्फिली और प्राणहीन रहती। खुशनसीबी से धरती से निकलता हुआ सारे अवरक्त विकिरण के कुछ अंश वातावरण की इन सब हरित गृह गैसों के फंदो में फाँसके धरती में वापस आता है और धरती को तापित रखता हैं जिससे वनस्पति कुल और प्राणी कुल रह सके। नीचे दिए गए चित्र से हमें साधारण हरित गृह प्रभाव को समझने में आसानी होगी।

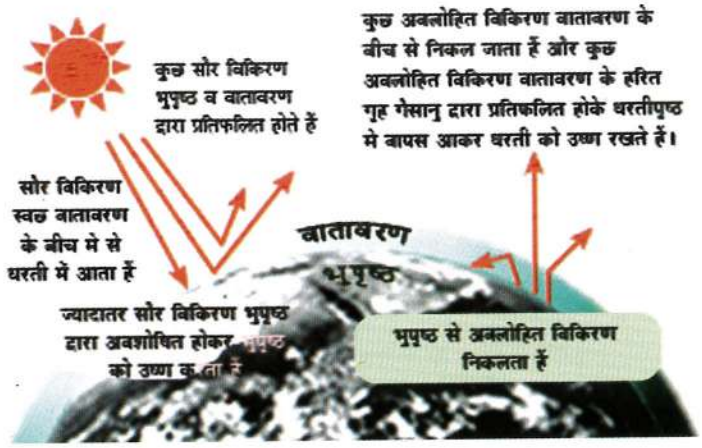

चित्र 3 : साधारण हरित गृह प्रभाव

वर्धित हरित गृह प्रभाव : हाल की मानवीय गतिविधि से साधारण हरित गृह प्रभाव बढ़ रहा है। वातावरण की कुछ-कुछ हरित गृह गैसों के परिमाण स्वाभाविक से ज्यादा हो जाने के कारण पृथ्वी पृष्ठ से निकले हुए अवरक्त विकिरण के ज्यादातर भाग वातावरण से धरती में वापस आ रहा है और धरती स्वाभाविक से ज्यादा उष्ण हो रही हैं। इसे वर्धित हरित गृह प्रभाव कहते है जिसके कारण हमें भूमंडली तापन महसूस हो रहा है। यह वैसा है जैसे हरित गृह के शीशे मोटे हो गए हों। नीचे दिए गए चित्र से हमें वर्धित हरित गृह प्रभाव के बारे मे कुछ जानकारी मिलेगी।

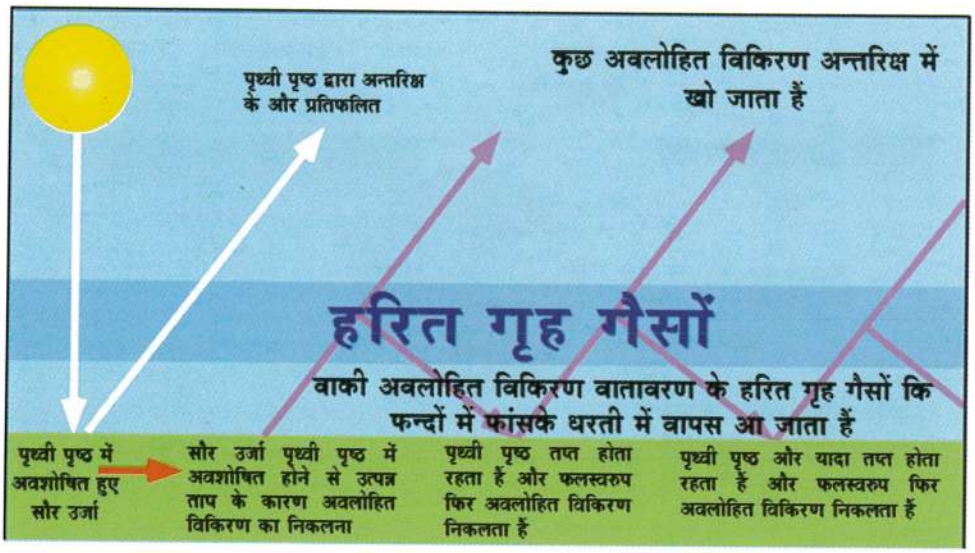

चित्र 4 : वर्धित हरित गृह प्रभाव

हरित गृह प्रभाव वर्धित होने का कारण :

* हरित गृह प्रभाव वर्धित होने का मुख्य कारण है वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड और मिथेन की मात्रा अत्यधिक बढ़ जाना। प्राग औद्योगीकरण युग (1750) से लेकर आज तक अपशिष्ट पदार्थ के रूप में कार्बन डाई आक्साइड और मिथेन का वातावरण में रिसाव की मात्रा बढ़ कर 36 प्रतिशत व 149 प्रतिशत हो गयी हैं। ये बढ़ना मुख्यतः ऊर्जा व परिवहन के लिये जीवाश्म ईंधन (कोयला, तेल, प्राकृतिक गैस) जलाने से और जीवों तथा पौधो की श्वसन क्रिया के लिए हैं।

* अच्छी फसल के लिए अकार्बनिक उर्वरक के प्रयोग से नाईट्रस आक्साइड वातावरण में पहुँच कर हरित गृह प्रभाव कुछ हद तक वर्धित करते हैं।

* शीत कारक यंत्रों से वातावरण में निकलने वाला क्लोरोफ्लोरोकार्बन भी वर्धित हरित गृह प्रभाव के लिए उत्तरदायी हैं।

* भूमि उपयोग में परिवर्तन, खास कर कृषि योग्य जमीन के लिए वन विनाश जैसे मानवीय कृत कर्म से होने वाले रिसाव भी हरित गृह प्रभाव को वर्धित करते हैं।

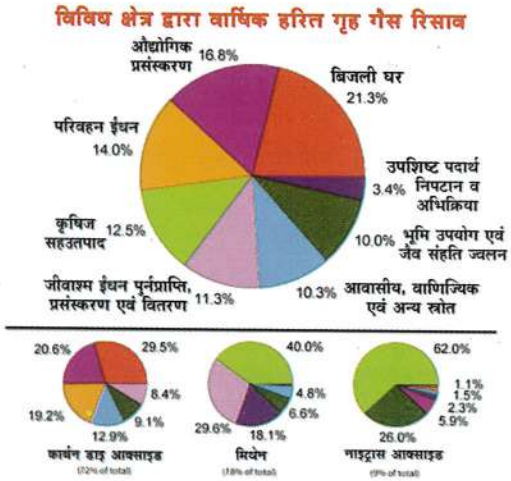

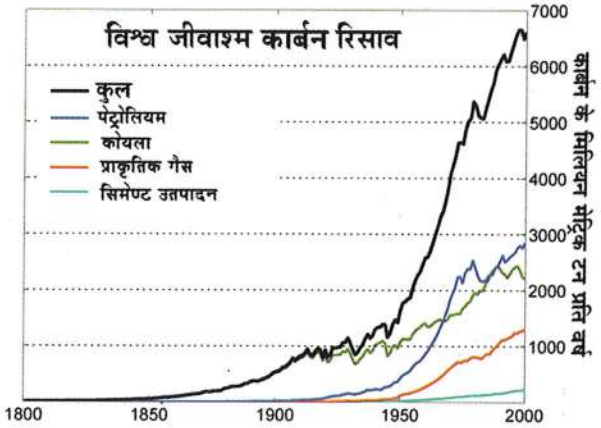

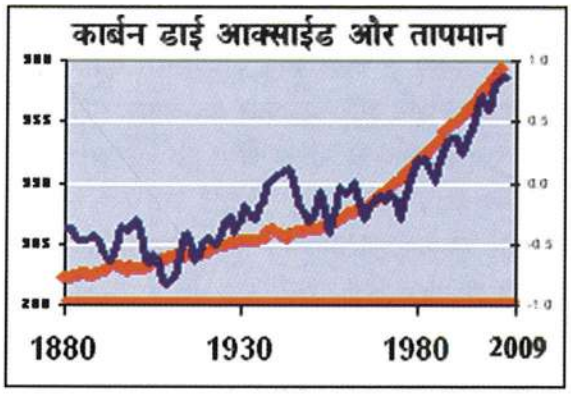

वर्धित हरित गृह प्रभाव से भूमंडल का बढ़ता तापमान : हम लोग अब तक जान चुके हैं कि पृथ्वी पृष्ठ से निकलने वाला अवलोहित सौर विकिरण को फंसा कर धरती में वापस भेज के धरती को उष्णतर करने के लिए कार्बन डाई आक्साइड एवं नाइट्रास आक्साइड ही ज्यादातर जिम्मेदार है। इसलिए कहा जा सकता है कि भूमंडलीय तापन का वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड व नाईट्रस आक्साइड जमा होने के साथ प्रत्यक्ष रूप से समानुपात हैं। यानिकि मानवीय कृत कर्म से होने वाले कार्बन डाइ आक्साइड, नाईट्रस आक्साइड, क्लोरोफ्लोरोकार्बन एवं मिथेन के रिसाव की मात्रा जितनी बढ़ेगी (वर्धित हरित गृह प्रभाव) भूमंडल का तापमान उतना बढ़ेगा (तापित धरती)।

भूमंडल के बढ़ते तापमान के परिणाम :

भूमंडल का तापमान 3 डिग्री बढ़ जाने से वृष्टिपात प्रणाली में ऐसा परिवर्तन होगा कि अकाल और सूखा लाखों लोगों की जान ले लेंगे। कृषि उत्पादन मे कमी होने से 40 करोड़ लोग अकाल की चपेट में आयेंगे, करोड़ों लोग बाढ़ का कठिन संकट और पेय जल का अभाव झेलेंगे। ग्रीनलैंड एवं अंटार्कटिका में बर्फ की पर्तों के पिघलने से सागरों का जल स्तर 40 फीट से अधिक ऊँचा उठ जाएगा। तापमान की इस वृद्धि से असंतुलित परितंत्र में विश्व की आधी वन सम्पदा दावानल से नष्ट हो जाएगी। सागर का जल स्तर ऊँचा होने से तटीय नमभूमि का पाँचवा भाग सागर में विलीन हो जाएगा। भूमंडल का तापमान बढ़ने से भयंकर आंधी तूफान आयेंगे। महासागरों के जल के उपरी सतह के उष्ण जल प्रभंजन को बहुत विनाशकारी बना देते हैं, वे अधिक गति और क्षमता के साथ बार-बार आते हैं। वायुमंडल का निम्न स्तर अत्यधिक उष्ण होकर ऊपरी सतह में घूर्ण वायु सृजन की क्षमता बढ़ा देगा। हिमवाह अपनी जगहों से खिसकने लगेंगे। जीव-जंतुओं, पेड़-पौधों की अनेक जातियाँ लुप्त हो जाएगी। तरह-तरह के व्याधि फैलने लगेंगी। चारों और विनाश के दृश्य होंगे।

कृषि पर वैश्विक तापन का प्रभाव : नीचे दिए गए चित्र से हमे कृषि पर वैश्विक तापन के संभावित लाभ और हानि के बारे में पता चलेगा।

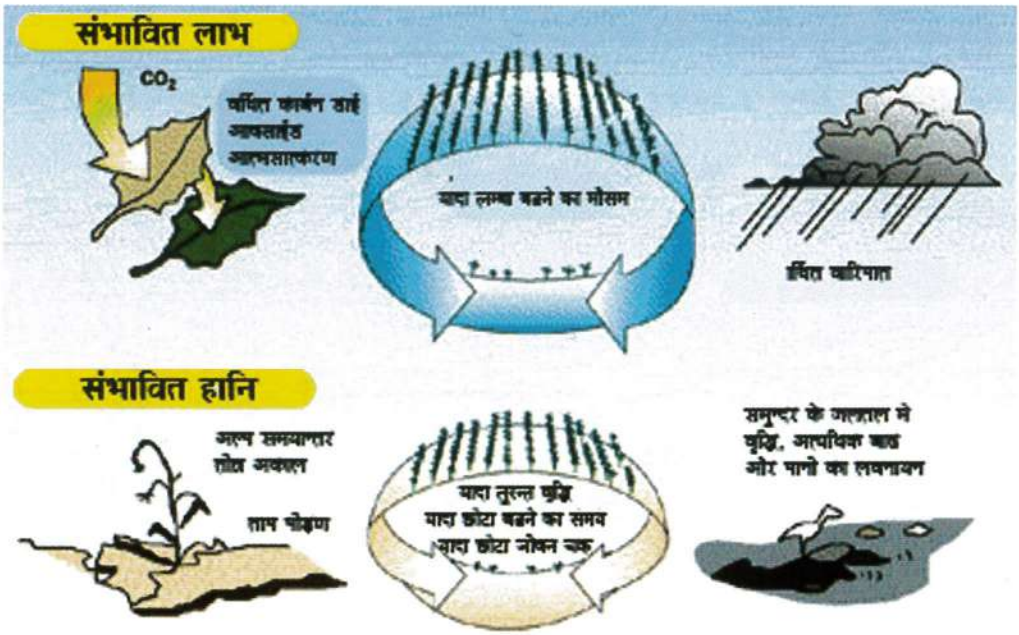

वैश्विक तापन रोकने के उपाय : मानवीय क्रिया कलापों से वातावरण में कार्बन डाइ आक्साइड की उत्सर्जित मात्रा ही भूमंडलीय तापन के सबसे महत्वपूर्ण अंशदायी हैं। इस परिस्थिति की उपचार के लिए न केवल इस उत्सर्जित मात्रा को रोकने की जरुरत है बल्कि उन्हें घटाना पड़ेगा। कार्बन डाइ आक्साइड के रिसाव को घटाया जा सकता है जीवाश्म ईंधन का व्यवहार कम करके, मोटर गाड़ी व्यवहार में कटौती करके, ऊर्जा दक्षता में निवेश करके, ऊर्जा संरक्षण विधि को कार्यान्वित करके और पवन, सौर, जल आदि पुनः नवीकरण संसाधनों को उपयोग करके। जीवाश्म ईंधन का न्यूनतम उपयोग मिथेन, नाइट्रस आक्साइड और ओजोन के रिसाव भी कम करेगा। पेड़ और पौधे अपने वृद्धि के समय कार्बन डाइ आक्साइड को उपयोग करते है; इसलिए पेड़-पौधे की कटाई को रोक कर वन-रोपन कार्यक्रम को लागू करके वातावरण में कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा को घटाया जा सकता है।

क्या वैश्विक तापन रोकने में बहुत देर हो गई है?

ये सही है कि वैश्विक तापन अब हो रहा है और हमारे जीवन धारा को प्रभावित कर रहा है।ये अति आवश्यक हो गया है कि वैश्विक तापन को रोकने के लिए कदम उठाए जाएं। यदि हम हरित गृह गैस के रिसाव को रोकने वाला शुद्ध ऊर्जा के व्यवहार और ऊर्जा दक्षता की ओर परिवर्तित नही हुए तो उष्मा की लहरें और तूफान की विनाश लीला, जो हम अब तक झेल चुके हैं, ज्यादा भयंकर होकर बार-बार सामने आएगी।

क्योटो नयाचार :

* जलवायु परिवर्तन पर संयुक्तराष्ट्र संरचना कन्वेंशन का क्योटो नयाचार एक अंतरराष्ट्रीय संधि का संशोधन है जिसमें हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र हरित गृह गैसों के रिसाव निर्धारित परिमाण तक कम करने के लिए बाध्य हैं।

* नयाचार का मकसद है जलवायु पर संकट लाने वाले ऐसे मानवीय हस्तक्षेप रोकना जिससे हरित गृह गैसों की सघनता बढ़ती है।

* दिसम्बर 2008 तक कुल 169 देश (जो विश्व का कुल हरित गैस रिसाव का 62 प्रति शत रिसाव करते हैं) तथा अन्य सरकारी तंत्रों ने समझौते से सहमति जताई। उल्लेखनीय अपवाद है अमेरिका और आस्ट्रेलिया। कुछ अन्य देश, जैसे भारत और चीन, जिन्होंने नयाचार से सहमति जताई, वर्तमान समझौते के तहत कार्बन रिसाव कम करने के लिए बाध्य नहीं हैं।

अन्त में स्वामी विवेकानन्द के एक कथन से इस लेख को समाप्त किया जा रहा है ताकि आने वाले पीढ़ी को हम एक बेहतर विश्व उपहार दे सकें।

जो हम हैं उसके लिए हम खुद जिम्मेदार हैं। हम जो होना चाहते है उसके लिए हमे सामर्थ्य है। हम आज जो कुछ हैं वह यदि हमारे अपने ही कर्म का फल है तो भविष्य में हम जो होना चाहते हैं वह आज का हमारा कर्म निर्धारित करेगा। हमे यह समझ लेना है कि हमें क्या करना चाहिए।

– स्वामी विवेकानन्द

सौजन्य : चित्र और रेखाचित्र समूह इन्टरनेट के सौजन्य से संकलन किया गया

———

दाहक बिन्दु की ओर बढ़ते कदम

ए० बी० डी० सेलवम
मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

भूमंडल के तापमान में वृद्धि एक अत्यंत जटिल समस्या है। इसके पीछे कुछ घटकों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष योगदान हैं जैसे वातावरण (वायु), ओजोन परत, जीवमंडल, हाइड्रोस्फियर (जल), लीथोस्फियर (भूमि) आदि। भूतल के तापमान का धीरे-धीरे बढ़ना पर्यावरण को अत्यधिक प्रभावित करता है। पर्यावरणविदों की राय में ओजोन परत का क्षरण एवं हरित गृह गैसों की प्रचुरता तापमान में वृद्धि के प्रमुख कारण हैं।

ओजोन परत

वातावरण में प्राकृतिक रूप से विद्यमान गैसों में एक है ओजोन। आक्सीजन के तीन परमाणुओं से इसका निर्माण होता है। ओजोन परत अथवा Ozonosphere धरातल से 20-25 कि.मी. की दूरी पर सूर्य से आनेवाली पराबैगनी (UV) विकिरण से वातावरण को बचाता है।

ओजोन परत में छिद्र हैलोन 1211 कार्बन टेट्राक्लोराइड, मिथाइल क्लोरोफार्म जैसे पदार्थो के कारण दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। इन पदार्थों के क्लोरीन व ब्रोमिन की ओजोन अणुओं के साथ क्रिया से वे स्वाधीन आक्सीजन परमाणु बन जाते हैं। वातावरण में प्राकृतिक ओजोन परत का क्षरण तापमान वृद्धि का मूल कारण है।

ओजोन परत का महत्व जन साधारण तक पहुँचाने के लिए हर साल 16 सितम्बर को ''विश्व ओजोन दिवस'' मनाया जाता है।

हरित गृह गैस एवं हरित गृह प्रभाव

धरती पर आधारभूत ऊर्जा का प्रधान स्रोत सूर्य है। सूर्य किरण धरातल पर आते - आते वातावरण में हरितगृह गैस द्वारा आंशिक अवशोषण से बचे हुए विकिरण वातावरण में लौट जाते हैं। वातावरण में हरित गृह गैसों द्वारा अवशोषित होने वाले पदार्थो में प्रमुख हैं जलवाष्प (H_2O) ओजोन (O_3) कार्बन डाइआक्साइड (CO_2) मिथेन (CH_4) नाइट्रस आक्साइड (N_2O) एवं क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC)। हरित गृह गैसों में धरातल पर वातावरण में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बहुत अधिक बढ़ती जा रही है। इन हरित गृह गैसों के अणु फँास बनकर धरातल का तापमान बढ़ा रहे हैं।

ओजोनमंडल समेत सभी हरित गृह गैस शीशे की तरह अल्प तरंग दैर्घ्य (Wave length) विकिरण को अन्दर आने देते हैं तथा एक हद तक दीर्घ तरंग दैर्घ्य विकिरण को रोक देते हैं। धरती पर जीवन-चक्र बने रहने के लिए यह आवश्यक होने पर भी सीमा से बाहर जाते ही धरातल का तापमान संकट खड़ा करने लगता है। जनसंख्या विस्फोट, वनविनाश, औद्योगीकरण, बेशुमार यान-वाहन भी इसके लिए जिम्मेदार हैं।

जीव-जन्तुओं के श्वसन, कार्बन युक्त ईंधन (कोयला, लकड़ी, गोबर, पेट्रोल, मिट्टी का तेल, गैसोलिन आदि) के जलने से वातावरण में कार्बनडाइ आक्साइड की मात्रा बढ़ती है।

तापमान बढ़ने के परिणाम

तापमान बढ़ने से ऋतु-चक्र प्रभावित हो रहा हैं। असाधारण गर्मी पड़ने लगी है, गर्म हवा के झोंकों से जीव-जन्तुओं की परेशानी के साथ महासागरों के तापमान बढ रहे हैं, हिमनद, आर्कटिक एवं अंटार्कटिक में बर्फ पिघलने से सागरों के जलस्तर बढ़ रहे हैं, तटीय क्षेत्रों में बाढ़ की विभीषिका अधिक से अधिक भयानक होती जा रही है। वर्षा, हिमपात, बाढ़, सूखा, जलाभाव, दावाग्नि की घटनाएँ अधिक होने लगी हैं जो जीव-जन्तु तथा वनस्पति के अस्तित्व पर असाधारण संकट आने के स्पष्ट संकेत आने लगे हैं।

संयुक्त राष्ट्र की जलवायु संबंधी रिपोर्ट के अनुसार गंगा नदी के जल स्रोत के 2030 तक विलुप्त होने की आशंका है। गंगा उत्तर भारत के विशाल भूभाग के लिए जल आपूर्ति करती है। गंगा के बिना इस भूभाग के अस्तित्व की कल्पना असंभव है।

बढ़ते तापमान को कैसे रोका जाए?

इसे एकदम रोकना संभव नहीं लगता है परन्तु इसे धीरे-धीरे कम करने के प्रयास हो सकते हैं। निम्नलिखित उपायों से कुछ सकारात्मक परिणाम की आशा की जा सकती है।

1. हरित गृह गैसों में कमी

बढ़ते तापमान एवं पर्यावरण प्रदूषण के नियंत्रण हेतु भारत सरकार कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम उठा रही हैं। इस अभियान के लिए व्यापक जन सहयोग अपेक्षित है। हम कार्बनडाइआक्साइड कम करने की दिशा में बढ़ते हुए आतिशबाजी से परहेज करेंगे चाहे जो अवसर हो। पुराने कपड़ो एवं अन्य अनावश्यक वस्तुओं को जलाने की अपनी आदत बदलेंगे।

2. गैर-पारम्परिक एवं सतत उपयोगी ऊर्जा स्रोत को प्रोत्साहन

ऊर्जा स्रोत के रूप में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, तरंग ऊर्जा, जल ऊर्जा से कृषि, फार्म, कारखानों, घरों मे बिजली के लिए इन स्रोतों के उपयोग पर समुचित ध्यान देने से पर्यावरण प्रदूषण कम होगा। पवन ऊर्जा का उपयोग भूगर्भ से जल निकालने में भी होता हैं। इन स्रोतों को प्रोत्साहन देने से समस्या के समाधान की संभावना बढ़ेगी। सौरऊर्जा का उपयोग बिजली के घरेलू उपयोग के लिये पर्याप्त होगा।

3. वनों की रक्षा

वनों के विनाश से तापमान और तेज रफ्तार से बढेगा। वातावरण से कार्बन डाइ आक्साइड का अवशोषण और उसके बदले आक्सीजन देकर संतुलन बनाए रखने का काम पेड़-पौधे ही करते हैं। इमारती प्रयोजन, कृषि के लिए भूमि बढ़ाने, लोगों के वासस्थान आदि के लिए लगातार वृक्ष काटे जा रहे हैं।

4. ''एक परिवार : एक वृक्ष'' नीति

स्वस्थ तथा हरे-भरे भारत के लिए यह नीति अच्छी तरह लागू करना अनिवार्य-अपरिहार्य लग रहा है। इससे अन्य समस्याओं के समाधान के पथ भी प्रशस्त होंगे।

इस नीति को लागू करने के लिए एक आदर्श पौधा होगा मोरिंगा ओलिफेरा (सजना/संजना/सहजन/डाटा), औषधीय एवं आर्थिक दृष्टि से गुणों का भण्डार, पौष्टिक तत्वों का अद्‌भुत समाहार। उष्ण एवं अर्धोष्ण जलवायु में इसकी डाल के दुकड़े रोपने से तीन महीने में पेड़ का आकार लेने लगाता है, छः महीने में फूलने-फलने लगता है। यह एक ओर हमे व्यक्तिगत लाभ देगा तो दूसरी ओर वातावरण में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा घटाएगा। ऐसे उपायों पर ध्यान देने से तापमान में कमी आएगी, पर्यावरण प्रदूषण पर आंशिक नियंत्रण होगा। इन पर ध्यान नहीं देने से जीव-जन्तु और पेड़ पौधों का कष्ट दिन प्रति दिन बढ़ेगा।

———

भू-मण्डलीय तापन : एक वैश्विक समस्या

सौरभ सचान
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय

पर्यावरण, दो शब्दों परि + आवरण से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है हमारे चारो ओर का आवरण। मानव भी इस पर्यावरण का एक अभिन्न अंग है। परन्तु मानवों द्वारा संसाधनों का अनियोजित एवं अविवेकपूर्ण दोहन तथा औद्योगीकरण नीतियां सतत् जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारण हैं। वास्तव में जलवायु परिवर्तन के लिये प्राकृतिक एवं मानवीय दोनो ही कारक उत्तरदायी माने गये हैं, लेकिन प्राकृतिक कारक अपना प्रभाव एक निश्चित समयावधि में डालते हैं, जब कि मानवीय कारकों के प्रभाव तत्कालिक होते हैं, उदाहरणार्थ : भू-मण्डलीय तापन; जो कि आंशिक रूप से मानव-जनित वैश्विक समस्या का एक वीभत्स रूप है।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री के मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार डेविड किंग के अनुसार ''विश्व में जलवायु परिवर्तन आतंकवाद से भी अधिक खतरनाक है और इसके समाधान के लिए प्रयासों में विलम्ब उचित नहीं है।''

मानव ने अपने सुविधाओं हेतु मोटर वाहनों का उपयोग बढ़ाया, जनसंख्या वृद्धि से बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु औद्योगीकरण को विकसित किया, वनों कि अंधाधुंध कटाई की व भोजन के लिए वन्यजीवों का संहार किया। इसी कारण पर्यावरणीय कारकों (जल, वायु एवं मृदा) के भौतिक गुणों में अनेक अवांछनीय परिवर्तन हुए जो कि सम्पूर्ण जीव-जाति के लिए सतत अहितकर सिद्ध हो रहे हैं जैसे : जलवायु परिवर्तन, समय से पूर्व बसन्त ऋतु आगमन, समुद्री कोरल रीफों का विघटन, व्याधियों का प्रसार, जलप्रलय, बाढ़, सूखा, अनियमित वर्षा एवं हिमपात इत्यादि।

हमारे वायुमण्डल में सभी गैसें एक निश्चित अनुपात में रहती हैं। जैसेः क्रमशः नाइट्रोजन 78 प्रतिशत, आक्सीजन 21 प्रतिशत, कार्बनडाई आक्साइड 0.03 प्रतिशत तथा कुछ निष्क्रिय गैसें एवं जल-वाष्प इत्यादि। पिछले कुछ दशकों से इस आदर्श अनुपात में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि दर्ज हुई है जैसे आज से लगभग दस दशक पूर्व कार्बन डाई आक्साइड गैस का वायुमण्डल में स्तर 275 पी. पी. एम. था परन्तु आज यह स्तर 350 पी. पी. एम. है और वर्ष 2035-40 तक इसका स्तर 450 पी. पी. एम. या उससे भी अधिक होने का अनुमान है जो कि एक गंभीर चिन्ता का विषय है।

कार्बन डाई आक्साइड एक ऊष्मा-रोधी गैस है जो कि क्षोभ मण्डल (Troposphere) तक सीमित रहती है। वायुमण्डल में इसकी उच्च सान्द्रता एक गम्भीर प्रदूषक की तरह कार्य करती है क्यों कि कार्बन डाई आक्साइड एवं जलवाष्प की यह मोटी परत सौर-विकिरण को पुनःवाह्य आकाश में विकरित होने से रोकती है। यह मोटी परत सतह ठीक उसी प्रकार कार्य करती है जैसे हरित गृह के शीशों के किवाड़, जिससे होकर प्रकाश आर-पार निस्यंद हो सकता है परन्तु ऊष्मा पूर्ण रुपेण वाह्य आकाश में विकरित नहीं हो सकती है। वायुमण्डल में गैसों का यह प्रभाव हरित गृह प्रभाव (Green House Effect) कहलाता है तथा इसके लिए जिम्मेवार गैसें (कार्बन डाइ आक्साइड, मेथेन, नाइट्रस आक्साइड, हाइड्रोप्लोरोकार्बन, परफ्लोरोकार्बन, तथा सल्फर हैक्साफ्लोराइड) ग्रीन हाउस गैसें (GHGs) कहलाती हैं। इस प्रकार अधिकतर वायुमण्डलीय ऊष्मा, कार्बन डाई आक्साइड एवं जलवाष्प द्वारा वायुमण्डल में ही अवशोषित हो जाती है जिसके कारण पृथ्वी पर वायुमण्डल के कुल तापमान में सतत् वृद्धि होती जा रही है। वैश्विक ताप-वृद्धि की यह घटना भू-मण्डलीय तापन (Global warming) कहलाती है। इन्टर गवर्नमेन्टल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आई. पी. सी. सी.) के एक सर्वेक्षणानुसार ग्रीन हाउस प्रभावों के लिए 60 प्रतिशत कार्बन डाई आक्साइड, 12 प्रतिशत क्लोरो-फ्लोरोकार्बन्स, व अन्य गैसें तथा जलवाष्प जिम्मेंवार होती हैं। वायु-मण्डल में ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा लगभग 20 करोड़ टन प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है। पर्यावरणविदों द्वारा यह माना जा रहा है कि ग्रीन हाउस गैसें ही समुद्र के तापीय प्रसार, ध्रुवीय बर्फ चोटियों के पिघलने का मुख्य कारण हैं। कुछ ग्रीन हाउस गैसों के प्रकार व स्रोत निम्नलिखित है :

मीथेन (CH_4) : स्रोत हैं; प्राकृतिक गैस-दहन क्रिया, कृषि, पशु, दलदल

नाइट्रस आक्साइड (N_2O) : इसका स्रोत है; दहन क्रिया एवं उर्वरक प्रयोग

CFC-11 : स्रोत हैं कीटनाशक छिड़काव; प्रशीतक

CFC-13 : स्रोत है औद्योगिक क्रिया कलाप

CFC-12 : स्रोत है कीटनाशक छिड़काव, प्रशीतक

CF_2Cl_2-12 : स्रोत है औद्योगिक क्रिया कलाप

CFC-22 : स्रोत है प्रशीतक और औद्योगिक क्रिया-कलाप

CH_3CCl_3 : स्रोत है औद्योगिक क्रिया कलाप

CFC-113 : स्रोत है औद्योगिक क्रिया-कलाप

विकसित देश ईंधनों (जीवाश्म, द्रव, गैसीय) के दहन से प्रतिवर्ष 5 सहस्र टन कार्बनडाई आक्साइड वायुमण्डल में उत्सर्जित करते हैं जो कि विकासशील देशों के योगदान का केवल आठवाँ भाग है। प्रतिवर्ष जितनी (CO_2) सान्द्रता में वृद्धि होती है उसके 25 प्रतिशत के लिए निर्वनीकरण कारक, 22.5 प्रतिशत के लिए परिवहन, 22.5 प्रतिशत के लिए बिजली उत्पादन गृह, 16 प्रतिशत के लिए उद्योग जगत व शेष के लिए आवासीय व व्यवसायिक उपयोग जिम्मेदार हैं। उर्जा आयोग की एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2007 में केवल चीन ने ही विश्व में उत्सर्जित होने वाली कुल कार्बन डाई आक्साईड का 28 प्रतिशत उत्सर्जित किया जो कि संयुक्त राज्य अमरीका के विगत वर्षो के 21.1 प्रतिशत से भी अधिक है। विगत वर्षो तक संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा वायुमण्डल में 30 प्रतिशत कार्बन डाई आक्साइड केवल परिवहन क्षेत्र से व 40 प्रतिशत विद्युत उत्पादन गृहों से मुक्त होती थी परन्तु चीन ने अपने प्रौद्यौगिकिय विकास की अन्धीदौड़ में संयुक्त राज्य अमरीका को भी मात दे दी है। प्रौद्यौगिकिय विकास की अन्धी-दौड़ के कारण वैश्विक तापमान में प्रतिवर्ष 0.5°C - 0.7°C सेल्सियस की वृद्धि हो रही है जिसके कारण हिमालय के हिमनद तेजी से सिकुड़ रहे हैं।

हाल ही में इसरो के स्पेस एप्लिकेशन सेन्टर की टीम ने हिमालय श्रृंखला के 466 हिमनदों का उपग्रह चित्रों और जमीनी पड़ताल के जरिए अध्ययन किया। उनके अनुसार हिमालय क्षेत्र के कम से कम 127 हिमनद अपने मूल क्षेत्रफल से 38 प्रतिशत सिकुड़ गए हैं इसी इलाके के बड़े हिमनदों के क्षेत्रफल में कम से कम 12 प्रतिशत की कमी आ गई है। पिछले 40 वर्षो में हिमालय श्रृंखला के प्रमुख हिमनद लगभग 21 फीसदी सिकुड़ चुके हैं। इसी प्रकार यूरोपीय स्पेश एजेंसी के उपग्रह से प्राप्त चित्रों से यह जानकारी मिली है कि ग्लोबल वार्मिंग के कारण अंटार्टिका स्थित विल्किंस आइस शेल्फ टूटने के कगार पर है। इस आइस शेल्फ का क्षेत्रफल 16,000 वर्ग कि.मी. था, परन्तु वर्ष 1990 के बाद इसमे टूटने के लक्षण दिखाई देने लगे थे। कुछ पर्यावरणविदों के अनुसार ग्लशियरों के तेजी से पिघलने का एक अन्य कारण अनियमित बर्फवारी है जो कि निश्चित समय (दिसम्बर - जनवरी) के मध्य न होकर फरवरी-मार्च में हो रही है जिसके तुरन्त बाद ग्रीष्म आने के कारण बर्फ की क्रिस्टलीकरण प्रक्रिया बाधित होती है। बर्फ को क्रिस्टल बनने में कम से कम 30-40 दिन के सर्द - मौसम की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में अच्छी बर्फबारी के बाबजूद भी ग्लेशियरों पर बर्फ नहीं टिक पा रही है।

वर्ष 2100 तक पृथ्वी के औसत तापमान में 1.5 से 4.5°C तक बढ़त होगी तथा इससे जलवायु में तेजी से परिवर्तन आयेंगे। अनुमान है कि भूमि-सतह अधिक तेजी से गर्म होगी अतः उत्तरी अक्षांशों में शीत ऋतु में भी तापमान अधिक रहेगा एवं वाष्पीकरण अधिक होगा। ध्रुवीय बर्फ पिघलने से समुद्री जल स्तर तेजी से बढ़ेगा और निचले तटीय क्षेत्र जैसे ग्रीनलैण्ड, आइस लैण्ड, नार्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड, साइबेरिया आदि जलमग्न हो जायेंगे। एक आकलन के अनुसार यदि पृथ्वी पर उपस्थित सारी बर्फ पिघल जाए तो सभी महासागरों की सतह में लगभग 200 फीट तक जल अधिक हो जायेगा, और इससे ढाका से शंघाई तक स्थित समस्त शहर भी जलमग्न हो सकते हैं। कहीं बाढ़ की विभीषिका, तो कही सूखा

व अकाल जैसी स्थितियां दृष्टिगोचर होंगी जिसका सर्वाधिक असर विकासशील देशों की अर्थ-व्यवस्था पर पड़ेगा। इस खतरे से बचने हेतु ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन दर में 60-70 प्रतिशत तक कमी लानी होगी। इसके अतिरिक्त ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी एवं नियमन हेतु, पर्यावरणविदों द्वारा अनेक प्रभावी उपाय भी सुझाये गये हैं जैसे;

1. गैर परम्परागत एवं प्रदूषण रहित संसाधनों का उपयोग।

2. वृक्षारोपण कार्यक्रम को बढ़ावा एवं वनों की कटाई पर अंकुश।

3. औद्योगिक इकाईयों व कारखानों के संचालन में इको-फ्रेंडली तकनीकों को अमल में लाया जाना चाहिए एवं इनसे निष्कासित वर्ज्य पदार्थो के पुर्नचक्रण एवं जैव अपघटन की समुचित व्यवस्था।

4. शहरीकरण की प्रक्रिया को रोकने हेतु गांवो में ही स्वरोजगार एवं कुटीर उॅद्योगों की स्थापना।

5. रेफ्रिजरेटर, एअरकंडीशनर आदि प्रशीतकों का सीमित प्रयोग।

6. वाहनों में थर्मोरिएक्टर का प्रयोग। थर्मोरिएक्टर एक ऐसी युक्ति है जोकि कार्बनमोनो आक्साइड (CO) को शुद्ध आक्सीजन में परिवर्तित कर देता है।

7. कार्बन डाई आक्साइड उत्सर्जक युक्तियों एवं वाहनों के प्रयोग में न्यूनता एवं इनके स्थान पर सी. एन. जी., बैटरीचालित, एवं यूरो IV वाहनों का प्रयोग।

8. ओद्योगिक कचरे के निबटान हेतु साइक्लोन कलेक्टर, बैग-फिल्टर एवं इलेक्ट्रो स्टेटिक प्रेसीपिटेटर आदि संयंत्रो का प्रयोग।

9. ग्रीन-हाउस गैसों के सन्दर्भ में विश्व के सभी विकसित एवं विकासशील देशों के लिए उत्सर्जन सीमा।

10. पर्यावरण निम्नीकरण, प्रदूषण, एवं जलवायु परिवर्तनों तथा इनसे होने वाले खतरों के बारे में जानकारियां रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं एवं दूरदर्शन के माध्यम से प्रचार।

11. सभी दर्जो के पाठयक्रमों में अनिवार्य पर्यावरण शिक्षा।

12. पारि-मित्र (Eco-friend) एवं स्वच्छ विकास प्रक्रिया (Clean-Development Mechanism) का प्रचार - प्रसार।

भारत सरकार द्वारा इस क्षेत्र में अनेको महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं। 30 जून सन् 2008 को प्रधान मंत्री डा० मनमोहन सिंह ने जलवायु परिवर्तन के विपरीत प्रभावों से बचाव हेतु G8 देशों के साथ एक संयुक्त मिशन प्रारम्भ करने की घोषणा की है। इन सभी कार्य-योजनाओं को प्रधान मंत्री के अधीन बने जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी विशेषज्ञों की परिषद ने तैयार किया है। ये मिशन ऊर्जा के गैर-परम्परागत, वैकल्पिक स्त्रोतो एवं संसाधनों के संरक्षण पर केन्द्रित होगा। इसके अतिरिक्त यह ऊर्जा के संतुलित प्रयोग वाली अर्थ-व्यवस्था का निर्माण एवं संतुलित विकास प्रक्रिया को सुनिश्चित करेगा।

सिक्किम सरकार ने ग्लेशियर एवं क्लाइमेट चेंज कमीशन की स्थापना की है। इसके चेयरमैन डा० इकबाल हसनैन है। डा० इकबाल हसनैन के नेतृत्व में ही हिमाचल प्रदेश के लाहौल-स्पीति स्थित छोटा शिगरी ग्लेशियर में स्वचालित ग्लेशियर मानीटरींग केन्द्र की स्थापना की गई है जिससे ग्लेशियरों में होने वाली वर्फ-बारी एवं इनके पिघलने की दर का सटीक अनुमान लगाया जा सकेगा।

———

''कलम बोली''

भगवती प्रसाद उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

गुमसुम बैठी कलम एक दिन
स्याही से यों बोली,
आओ मिल कर बच्चों के संग
कर लें हंसी ठिठोली।।
कागज भैया को भी अपने
साथ में हम ले लेते हैं।
अ, आ, इ, ई, ए. बी. सी. डी.
लिख सबको खुश कर देते हैं।।
रंग हमारे प्यारे साथी
उनको भी बुलवाते हैं।
पर्वत, नदियां, ताल तलैया
उनसे चित्रित करवाते हैं।।
पशु, पक्षी और वृक्ष, लतायें
कल कल करते झरने।
जीवन के सब साधन हैं ये
ये भी चित्रित करवाने।।
ये दुनियां वाले पल पल इनका
शोषण करते जाते हैं।
दुष्परिणाम भुगतते, लेकिन
फिर भी नहीं अघाते हैं।।
बिना बिचारे जो करते हैं
वे आखिर पछताते हैं।
आओ स्याही, आओ कागज
मिल कर इन्हें बताते हैं।।
पर्यावरण के महत्व को
मिलकर हम समझाते हैं।।

———

''क्रिकेट''

भगवती प्रसाद उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

बड़ा गजब है क्रिकेट का खेल।
बहुत कुछ राजनीति से रखता है मेल।।
खेल मैदान में, पर फील्डर ''गली'' में होता है।
जैसे नेता अंडरग्राउंड, और फसाद गली में होता है।।
खिलाड़ी ग्यारह पर एक ''थर्डमैन'' होता है।
जैसे नेता जी का एक गनमैन होता है।।
एक ''शॉर्ट लेग'' व एक ''लाँग लेग'' होती है।
जैसे नेता की एक टांग देश में तो दूसरी विदेश मे होती है।।
खेल में ''लेग ब्रेक'' व ''गुगली'' होती है।
तो राजनीति में लेग पुलिंग व चुगली होती है।।
खेल में ''मैच फिक्सिंग का शोर है,
तो राजनीति में ''हॉर्स ट्रेडिंग'' का जोर है।
''बाइस गज'' होती है पिच की लंबाई।
और गजों में ही आंकी जाती है जुबान की लंबाई।।
ध्यान देने योग्य एक और तथ्य है।
खेल व राजनीति, दोनों में, ''पाँच'' का बहुत महत्व है।।
योजना पंच वर्षीय और चुनाव पांच साला।
तो भला ''टेस्ट मैच'' क्यों न हो पांच दिन वाला।।
अब तो राजनीतिज्ञ, क्रिकेट पर छाने लगे हैं।
और खिलाड़ी राजनीति में आने लगे हैं।।
प्रभो, कृपा कर इन्हें चुनाव जितवा देना।
और एक को पर्यावरण मंत्री बनवा देना।।
हम उनसे पौधे लगवायेंगे और बतायेंगे
कि खेल के लिये बल्ला जरूरी है।
और बल्ला बनाने के लिये पेड़ जरूरी है।।

''अब धरती को चैन से रहने दें''

भोला नाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

जब ईश्वर का वरदान है धरती, यह कथन कोई अपवाद नहीं।
अब धरती को चैन से रहने दें, कभी उपजे कोई विवाद नहीं।।

है इकलौती जीवित ग्रह धरती, जिसे प्रकृति ने विविध उपहार दिया।
नदियां, वन, पर्वत, झरनों, झीलों से जिसका रुप संवार दिया।।

जहाँ वन्यजीवों की विविध जातियाँ, सदियों से यहीं आबाद रहीं।
अब घरती को चैन से रहने दें, कभी उपजे कोई विवाद नहीं।।

मानव विकास की यात्रा में कितने ही वनों को काट दिया।
अगणित जलस्रोत प्रदूषित हैं कुछ कूड़े-कचरों से पाट दिया।।

प्राकृतिक खनिज पाने की होड़ में, भूतल को किया बर्बाद कहीं।
अब धरती को चैन से रहने दें, कभी उपजे कोई विवाद नहीं।।

उन प्राकृतिक वनों का पता नहीं, जहाँ बादलगण करें बसेरा है।
बिन जंगल, प्रकृति संतुलन कैसे, वहाँ धूल-धुएं का घेरा है।

चलें, वृक्षारोपण कर, प्रकृति संवारें, श्रमदान करें, संवाद नहीं।
अब धरती को चैन से रहने दें, कभी उपजे कोई विवाद नहीं।।

उन अभयारण्यों की दशा देखिये, धरती पर बनाया जहाँ-जहाँ।
धीरे-धीरे जन आबादी जाकर, अतिक्रमण किया है यहाँ-वहाँ।।

उन संरक्षित वनों में वन्य जीवों का, मिलता सही हिसाब नहीं।
अब धरती को चैन से रहने दें, कभी उपजे कोई विवाद नहीं।।

भौतिक, रासायनिक, खनिज खनन का, चालू व्यवसाय आज भी है।
ये गतिविधियाँ अति घातक हैं, जिसे वैज्ञानिक एतराज भी हैं।।

संरक्षण प्रति बने कड़ी व्यवस्था, कुछ थम जाये अपराध कहीं।
अब धरती को चैन से रहने दें, कभी उपजे कोई विवाद नहीं।।

प्रदूषण है एक विकट समस्या, जनसंख्या कितनी विस्फोटक है।
सारे प्रयास असफल ही रहे, दोनों ही अनिष्ट के सूचक हैं।

इस समीकरण का क्या हल हो, कहीं मिलता सही जवाब नहीं।
अब धरती को चैन से रहने दें, कभी उपजे कोई विवाद नहीं।।

वैज्ञानिक सुझाव आदर्श मानकर, धरती को बनायें हम ऐसा।
जहाँ समृद्धि के सूचक फूल खिलें, वहाँ परिवेश बनायें हम वैसा।।

संरक्षण ही उत्तम समाधान है, कभी इसका बुझे चिराग नहीं।
अब धरती को चैन से रहने दें, कभी उपजे कोई विवाद नहीं।।

———

''भारत की प्राकृतिक सम्पदा''

भोला नाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

जहाँ आस्था का अजब दरबार लगे, संस्कृतियों ने जिसे सुधारा है।
यों, प्राकृतिक सम्पदाओं का दर्पण, यह 'भारत देश' हमारा है।।
उत्तर में अडिग गिरिराज हिमालय, जिसे दुनिया शीश झुकाती है।
जिसके अंचल की प्रकृति सम्पदा, जन-गण-मन को भाती है।।
गंगा, यमुना, सरयू, सतलज की, जहाँ बहती निर्मल जलधारा है।
यों, प्राकृतिक सम्पदाओं का दर्पण, यह 'भारत देश' हमारा है।।
यह तपोभूमि ऋषि-मुनियों की, देवों का कथित स्थान भी है।
यहाँ शास्त्रों, वेद, पुराणों में वर्णित, अति संरक्षित विज्ञान भी है।।
जहाँ तीर्थो की स्थापत्य कला का, जग अदभुत किया नजारा है।
यों, प्राकृतिक सम्पदाओं का दर्पण, यह 'भारत देश' हमारा है।।
कार्बेट, कान्हा, गिरि, बोरी, दुधवा वन, वन्य-जीवन हेतु समर्पित हैं।
अमरकंटक, पंचमढ़ी, बाँधबगढ़, पश्चिमी घाट के, पेरियार आदि वन चर्चित है।।
नर्मदा, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा ने, वन-वैभव सतत संवारा है।
यों, प्राकृतिक सम्पदाओं का दर्पण, यह 'भारत देश' हमारा है।।
पूरब में असम-अरुणाचल तक, गज-गैंडों का अभयारण्य बना।
लोहित, तिस्ता, ब्रह्मपुत्र नदियों से, कजिरंगा वन सौन्दर्य घना।।
मेघालय में मेघ निवास करें, वर्षा के लिए पिटारा है।
यों, प्राकृतिक सम्पदाओं का दर्पण, यह 'भारत देश' हमारा है।।
हुगली से गंगा सागर तक सुन्दरवन की संप्रभुता है।
पौराणिक महत्व की धरती पर, क्षण क्षण गतिमय गुणवत्ता है।।
जहाँ वनस्पति, प्राणि, भूमि, सर्वेक्षण, पर्यावरण को सतत संवारा है।
यों, प्राकृतिक सम्पंदाओं का दर्पण, यह 'भारत देश' हमारा है।।
पूरब, पश्चिम, दक्षिण की ओर तक, जहाँ विस्तृत सागर सीमायें हैं।
जिसके भौगोलिक पृष्ठ भाग पर, अगनित वन-पर्वत-मालायें हैं।।
जहाँ संरक्षण की प्रक्रिया चले निरन्तर, वैज्ञानिक लक्ष्य का नारा है।
यों, प्राकृतिक सम्पदाओं का दर्पण, यह 'भारत देश' हमारा है।।

———

खुश रहो

अरविन्द सकलानी
पिरामल लाईफ साईंसस् लि., मुम्बई

जिन्दगी है छोटी, हर पल में खुश रहो.....
आफिस में खुश रहो
घर में खुश रहो
आज पनीर नहीं है,
दाल में ही खुश रहो
आज जिम जाने का समय नहीं
दो कदम चल के ही खुश रहो
आज दोस्तों का साथ नहीं
टी वी देख के ही खुश रहो
घर जा नही सकते तो फोन कर के ही खुश रहो
आज कोई नाराज है, उसके इस अन्दाज में भी खुश रहो...
जिसे देख नही सकते उसकी आवाज में ही खुश रहो...
जिसे पा नही सकते उसकी याद में ही खुश रहो
लैपटॉप न मिला तो क्या
डेस्कटॉप में ही खुश रहो
बीता हुआ कल जा चुका है, उसकी मीठि यादें है, उनमे ही खुश रहो....
आनेवाले पल का पता नहीं...स्वप्नों में ही खुश रहो
हँसते हँसते ये पल बीतेंगे, आज में ही खुश रहो
जिन्दगी है छोटी, हर पल में खुश रहो

कल हिन्दी दिवस है, इसे प्यार से मनाकर खुश रहो

———

वनस्पति विज्ञान की आधार शब्दावली

नवीन चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

वनस्पति जगत (Vegetable Kingdom) : सजीव जगत की दो शाखाओं में से एक जिसके अंतर्गत सभी पौधे हैं। लैटिन शब्द 'वेजिटो (Vegeto) अर्थात् सजीव।

संघ (Phylum) : जीवजगत के एक ही भाँति के जीवों का मुख्य तथा विशाल समूह। पादप वर्गीकरण में इसके बदले प्रभाग का प्रयोग करते हैं। ग्रीक शब्द 'फुलोन' (Phulon) अर्थात प्रजाति।

वर्ग (Class) : 1. जीवों की एक व्यापक श्रेणी, जो वर्गीकरण में गण (order) के ऊपर संघ के नीचे होती है। 2. एक समूह जिसमें समान परिमाण के परिवर्त शामिल होते हैं। लैटिन शब्द 'क्लैसिस' (Classis) अर्थात् समूह।

गण (order) : वर्गीकरण का स्तर जिसका स्थान कुल से ऊपर और वर्ग से नीचे होता है। लैटिन शब्द 'ओर्डो' (ordo) अर्थात पंक्ति।

कुल (family) : निकट संबंधी पादपों का विशेष समूह। साधारणतः एक कुल के अन्तर्गत बहुत से वंश होते हैं। लैटिन शब्द 'फेमिलिआ' (familia)।

वंश (genus) : समान लक्षणों वाले जीवधारियों का विशिष्ट समूह या वर्गक (taxon) जिसमें प्रायः कई जातियाँ होती हैं। द्विनाम पद्धति (binomial nomenclature) में पहला नाम वंश का होता है जो रोमन लिपि में बड़े अक्षर से शुरू होता है। मूल लैटिन शब्द।

जाति (species) : 1. जीवों के वर्गीकरण की इकाई। 2. एक विशेष वर्ग के जीव-समूह जिनमें अंतर प्रजननके फलस्वरूप अबंध्य संतति उत्पन्न हो सके। मूल लैटिन शब्द 'स्पेसिओ' (specio)।

प्रजाति (races) : जाति के उपविभाजन जो पहचान में एक दूसरे से स्पष्टतया भिन्न होते हैं। मूल इतालवी शब्द'रेज्जा' (razza)।

उपजाति (variety) : जीवों का एक प्रकार का समूह। मूल लैटिन 'वेरिअस' (varius)।

* * *

मृदा (Soil) : विच्छेदित शैल, जैव पदार्थ, लवण आदि के मिश्रण से बना भूपटल का ऊपरी स्तर जिसमें पौधे उगते हैं। लैटिन 'सोलिअम' / 'सोलम' (solium/solum)।

बीज (seed) : बीजांड के निषेचन के फल स्वरूप भ्रूण, उसके आवरण तथा प्रायः भ्रूणपोष की बनी संरचना जो अंकुरण के पश्चात् नए पौधे को जन्म देती है।

मूल (Root) : मूलांकुर से परिवर्धित, भूमि के अंदर की ओर अर्थात् तने की विपरीत दिशा में बढ़ने वाला पत्र-पुष्प विहीन भाग जो जल तथा खाद्य पदार्थों का अवशोषण करता है तथा पौधे को भूमि में स्थिर रखता है।

कंद (tuber) : भूमिगत रूपांतरित तना जो खाद्य पदार्थो के संग्रहण तथा वर्धी जनन संपादित करता है। पार्श्वीय शाखाओं के सिरे पर अवस्थित इस शाखा पर कहीं कहीं आँखें (गांठ) होती हैं जिनके कक्ष से अपरिवर्धित पत्तियां निकलती हैं जैसे आलू। मूल लैटिन शब्द।

शल्ककंद (bulb) : भूमिगत रूपांतरित तना जिसमें एक छोटे से बिम्बाकार तने के उपर बहुत से मांसल शल्क पत्र और कुछ कलिकाएँ रहती हैं। उदाहरण – प्याज, लिलि। मूल शब्द ग्रीक/लैटिन।

पुमाणु (sperm/spermatozoid) : पुंधानी (एंथेरीडियम) में बनने वाला गतिशील नर युग्मक जो पक्ष्माभिकाय (सिलिया) की सहायता से अंडगोल (oosphere) की ओर गतिमान होकर अंडगोल के संलयन से युग्मनज (zygote) बनाता है। मूल ग्रीक शब्द 'स्पर्मा' (sperma)।

तना (stem) : प्रांकुर (पिम्यूल) के परिवर्धन से बना हुआ गुरूत्वानुवर्ती (negatively geotropic) सामान्यतः बेलनाकर अंग, जिस पर शाखाएँ, पत्तियां एवं पुष्प लगते हैं।

शाखा (branch) : तने अथवा किसी अन्य अंग से निकलने वाला उस जैसा अंग। लैटिन 'ब्रेंका' (branca)– पंजा।

छाल (Bark) : द्वितीय कैम्बियम के बाहर के सभी ऊतक जो सामान्यतः वृक्ष का बाहरी कड़ा आवरण होता है। मूल शब्द स्केंडेनेवियन।

कलिका, मुकुल (bud), पुष्प कलिका (floral bud), किसलय (leaf bud) चश्मा (vegetative bud)

पुष्प (Flower) : जनन कार्य के लिए रूपांतरित शाखा जिसके मुख्य भाग हैं :

1. परिदलपुंज (perianth) जो सामान्यतः दो चक्करों में होता है – बाह्यदलपुंज (calyx) और दलपुंज (corolla)
2. पुमंग (androecium) जिसमें पुंकेसर होते हैं।
3. जायांग (गाइनोशियम) जिसमें स्त्रीकेसर होते हैं।

मूल लैटिन 'फ्लोस'/फ्लोर (flos/flor)

पर्ण (leaf) : तने का सामान्यतः हरा और चपटा पार्श्विक उर्ध्व जिसका मुख्य कार्य प्रकाश-संश्लेषण तथा वाष्पोत्सर्जन है। इसके तीन मुख्य भाग–पर्णधार (leaf base) वृंत (petiole), फलक (lamina/leaf blade), पर्णांतराल (leaf gap), पर्णक, पत्रक (leaf let) पर्णदाग (leaf scar) पर्णशूल (leaf spine) पर्णवृंत (leaf stalk) पर्णानुपथ (leaf trace)।

वृंत (Petiole) : पत्ती का लम्बा पतला भाग जिससे वह आधार (तना) से जुड़ा रहता है।

दल/पंखुड़ी (petal) : एक प्रकार का पुष्पत्र जो सामान्यतः रंगीन तथा आकर्षक होता है। यह बाह्य दलपुंज (calyx) और पुमांग (androecium) के बीच में लगा रहता है।

शल्क (scale) :

1. प्रायः हरे के अतिरिक्त किसी अन्य रंग की मांसल, झिल्लीदार अथवा कठोर संरचना जैसे प्याज के छिलके।
2. नवोत्पन्न कोमल कलिकाओं के संरक्षण करने वाली पत्तीनुमा संरचनाएं

बाह्यदल (sepal) : सबसे बाहरी पुष्पपत्र जो रंग में पत्ती जैसा होता है। इनके समूह बाह्यदलपुंज (calyx) कहलाते हैं।

पुंकेसर (stamen) : पुष्प के पुमंग की एक इकाई जिसमें एक तंतु (filament) के सिरे पर परागकोष लगे रहते हैं। मूल लैटिन शब्द।

पराग (pollen) : परागकोष (anther) से उत्पन्न होने वाले लघु बीजाणुओं का समुच्चय। मूल लैटिन शब्द।

पराग कोष्ठ (pollen chamber) : पराग कण (pollen grain), पराग-पुट (pollen sac) पराग नलिका, (pollen tube) परागपिंड (pollinium), परागण (pollination)

वृक्ष (tree) : काष्ठिल, बहुवर्षी, पौधा जिसमें मूलतंत्र से एक मुख्य तना निकलता है जो माटा और लंबा होता जाता है। यह साधारणतः 30 फीट से अधिक ऊंचा होता है।

फल (fruit) : पुष्पी पादपों के निषेचित अंडाशय का परिवर्धित रूप जिसमें भीतर बीज सुरक्षित रहते हैं। कभी-कभी फूल के अन्य अंग भी इसके बनने में भाग लेते हैं। लैटिन फ्रक्टस/फ्रुओर (fuctus/fruor)।

शूल (spine) : प्रायः पत्तियों के रूपान्तरण से बनी कठोर और नुकीली संरचना जैसे बबूल के कांटे।

कंटक (thorn) : छोटे, नुकीली, पत्रहीन रूपांतरित शाखा जिसमें संवहन ऊतक होते हैं।

अष्टि (stone) : आम, आड़ू, खुबानी, सरीखे फलों की कठोर अंतः फल भित्ति (endocarp) जो बीज को बंद और सुरक्षित रखती है, जैसे आम की गुठली।

* * *

(Flora) वनस्पतिजात : फ्लोरा '(लैटिन)' फूलों की देवी का नाम।

आवृतबीजी (angiosperms) : वनस्पति जगत का एक विशाल उपसंघ (सबफाइलम) जिसमें पौधों के बीज ढके रहते हैं। ग्रीक शब्द 'एजिओन' (aggeoin) अर्थात् द्रव पात्र तथा स्पर्मा (sperma)

अनावृतबीजी (gymnosperm) : वे पौधे जिनमें बीजांड व बीज अनावृत होते है, फल व फूल के भीतर नहीं होते। ग्रीक शब्द ''गुम्नोस'' (gumnos) अर्थात् नग्न, अनावृत।

शैवाल (algae) : थैलोफाइटा का वह पादप समुदाय जिनसे अधिकांश पौधों का विकास हुआ है। ये अधिकांशतः जलीय हैं तथा इनमें पर्णहरित एवं अन्य प्रकाश संश्लेषी वर्णक (पिगमेंट) होते हैं। लैटिन शब्द।

कैक्टस (cactus) : कैक्टेसी कुल के पत्रहीन, कंटकमय मरू में उगने वाले पौधे, जैसे नागफनी। मूल लैटिन/ग्रीक; अपर्णी (aphyllous) : पत्रहीन पादप। ग्रीक शब्द 'फुलोन' (Phullon) अर्थात पत्ते।

अपुष्पी (cryptogam) : थैलोफाइटा, ब्रायोफायटा एवं टेरिडोफाइटा पादप समुदाय। ग्रीक 'क्रुप्टोस' (kruptos) एवं लैटिन 'क्रिप्टा' (crypta) तथा ग्रीक 'gamos' (गेमोस) अर्थात् विवाह।

थैलोफाइटा (thallophyta) : अपुष्पी पादपों का वह समुदाय जिसके अंतर्गत शैवाल और कवक हैं। इन्हे निम्न (लोअर) क्रिप्टोगैम भी कहते हैं। ग्रीक शब्द 'थैलोस' (thallos) अर्थात् हरित पल्लव।

ब्रायोफाइटा (Bryophyta) : निम्न श्रेणी के पौधों का संघ जिसमें भ्रूण विकसित होता है परंतु संवहन ऊतक नहीं पाए जाते हैं। मूल ग्रीक / लैटिन।

टेरिडोफाइटा (pteridophyta) : अपुष्पी पादप समुदाय जिसके अंतर्गत पर्णांग (फर्न) और उसके निकट संबंधी हैं। इनमें जड़, तने व पत्तियों के भेद किए जा सकते हैं। इसीलिए इन्हें संवहन (वैस्कुलर) क्रिप्टोगेम कहते हैं–जैसे पर्णांग, लाइकोपोडियम। ग्रीक शब्द टेरिस (pteris) अर्थात् पर्णांग।

पर्णांग (fern) : टेरिडोफाइटा श्रेणी का अपुष्पी पादप जिसमे जड़, तना, पत्तियाँ और संवहन-ऊतक होते हुए भी बीज उत्पन्न नहीं होते, जैसे–पोलिपोडियम। प्राचीन अंग्रेजी।

———

इटानगर वन्यजीव अभयारण्य

आर. सी श्रीवास्तव एवं आर. के. चौधरी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर

अरुणाचल प्रदेश सहित पूर्वी हिमालय क्षेत्र को विश्व के अति विविधता वाले केंद्रों में एक माना गया है। इटानगर के इटानगर जनपद में इटानगर वनस्पति अभयारण्य है। पहले वहाँ इटानगर संरक्षित वन था। जून 1978 में 140.8 व. कि. मी. क्षेत्र में विस्तार देकर इसे इटानगर वन्यजीव अभयारण्य का स्वरूप दिया गया। अरुणाचल प्रदेश की राजधानी इटानगर के निकट पूरब में पोमा नदी, दक्षिण में पचिन नदी, पश्चिमोत्तर में नेओरेह नदी से घिरा यह अभयारण्य 250-2000 की ऊँचाई पर है। यहाँ वार्षिक औसत वर्षा लगभग 400 मि.मि., तापमान 10-30° से. तथा जलवायु नम/आर्द्र है। वनाभास वाले इस अभयारण्य में बाँसों की अधिकता के साथ अन्य पेड़-पौधे भी हैं। बाघ, हाथी, चीता, जंगली बिल्ली, जंगली कुत्ते, सियार, असमी लघु पुच्छ बानर, साधारण लंगूर, भौंकने वाले हिरण, भालू, जंगली सूअर, साल, तीतर, उल्लू, बसन्ता, मोर, महोख, खालिज महोख, हरित पंडुक, धनेश, हरित कपोत, कठफोड़ा, ड्रेंगो, पहाड़ी मैना, सारस, रोबिन, नागराज, काला वाइपर, उड़नेवाले सर्प, अजगर, मोनिटर लिजार्ड, काला करैत, पिट वाइपर आदि स्तनपायी, पक्षी एवं सरीसृप का यह प्राकृतवास है।

इस प्राकृतवास के विनाश के साथ ही यहाँ के वनस्पतिजात का अतिक्रमण करते हुए विभिन्न स्रोत से बाहरी पेड़-पौधे आने लगे हैं। सौभाग्य से इस अभयारण्य में अभी तक *पार्थेनियम* एवं *आइकोर्निया* का प्रवेश नहीं हुआ हैं। परंतु *यूपेटोरियम, मिकेनिया, लेंटेना* आदि विभूषक जातियों ने अपनी जड़े जमा ली हैं। *निकटेंथिस आर्बोर्टिस्ट्रिस* बहुत लोकप्रिय हैं। *डूरेंटा रिपेंस, हिबिस्कस रोजेसिनेंसिस, क्लेरोडेंड्रम इनर्मि* एवं *फ्लोगेकेंथस थिर्सिफ्लोरस*, इटानगर परिसर में देखे जाते हैं। *मिरेबिलिस जलापा, पेडिलेंथस* जातियां एवं उनके कल्टिवार जहाँ - तहाँ देखे जाते हैं। विवेक विहार के निकट *क्रोटोलेरिआ स्पेक्टेबिलिस* की झाड़ियों में खिले हुए फूल मन मोहक लगते हैं। शरद ऋतु में इटानगर की सड़कों के अगल-बगल सर्वत्र *पर्किआ राक्सबर्गी* खिल उठते हैं। इन्दिरा गाँधी उद्यान के निकट पहाड़ी की तलहटी में *हेडिकियम गार्डनेरिएनम, हे. कोरोनेरिअम, हे. स्पाइकेटम* एवं *होम्सकिओल्डिआ* बहुतायत में मिलते हैं। इटानगर के परिसर में *मेस्टर्सिआ असेमिका* लताएँ सभी जगह उगती हैं। सिक्किम की राजधानी गंगटोक में अति सामान्य *डेटुरा सुएविओलंस* मात्र आर. आर. सी. कैम्पस में जीरो प्वाइंट के निकट देखे गए। चिम्पू में डेटुरा मेटल, कृष्ण तुलसी (ओसिमम सेंक्टम) एवं साधारण तुलसी के साथ उगते हैं। आर. आर. सी. में *बर्लेरिआ क्रिस्टेटा, बर्लेरिआ पेरिओनिटिस, प्लम्बेगो जिलेनिका, विथेनिआ सोम्निफेरा, पाइपर लोंगम, एंड्रोग्रेफिस पेनिकुलेटा, स्टेविआ रेबाउडिएना, ग्लोरिओसा सुपर्बा, इवोल्वलस एल्सिन्वाइडिस, एस्पेरेगस रेसिमोसस, कोलिअस बर्बेटस, विटिवेरिआ जिजेन्वाइडिस, पोगोस्टेमन पेचौली, एल्पिनिआ गेलेंगा, क्रिप्टोलेपिस बुकनेनी, लिओनोटिस नेपेटेफोलिआ, हिबिस्कस एबेलमोस्कस, अधातोडा जिलेनिका, मेलोटस फिलिपेंसिस, कर्कुमा सेसिआ* तथा गमलों में लगाए हुए *बर्जिनिआ सिलिएटा, कॉप्टिस टीटा* आदि के साथ असंख्य *औसिमम* बोसिलिकम प्रजाति के पौधे उगे हैं।

इटानगर के इर्द गिर्द पहाड़ी ढलानों में तथा जीरो प्वाइंट के निकट *फाइकस रम्फी, टेकोमा, टेकोमेला, हाइड्रेंजिआ, मुकुना प्रूरिटा* के हाल मे लगाए हुए पौधों को सामान्यतः उगे हुए *टर्मिनेलिआ अर्जुना, डेलोनिक्स रेजिआ एरेका* कटेचू आदि के साथ देखा जा सकता है। नाहर *(मेसुआ फेरिआ)* तो चारों ओर दिखाई देते हैं। चमकीले लाल-लाल फूलों वाली लता *आपोमोइया क्वेमोक्लिट* सभी का मनभावन है। वन्य *थन्बर्जिआ ग्रेंडीफ्लोरा का बिरादर थन्बर्जिआ कोक्सिनिआ* विभूषक के रूप में सर्वत्र शोभायमान हैं। कहीं कहीं *सेलिक्स बेबिलोनिका* एवं *प्लूमेरिआ एकुमिनेटा* उगाए जाते हैं। सैंकी पार्क के ऊपर पहाड़ी में असंख्य वन्य केले हैं। उसके सामने की पहाड़ी बाँसों से आच्छादित है। एरोआइड्स की श्रेणी में *एलोकेसिआ फेलेक्स, एलोकेसिआ मेक्रोराइजा, कोलोकेसिआ एफिनिस, कोलोकेसिआ इसुलेंटा* की बहुतायत है। एकोरस केलेमस कहीं कहीं दिखाई देता है।

पहाड़ी ढलानों पर *डायोस्कोरिआ* की विभिन्न जातियाँ तथा *मेनिहॉट इस्कुलेंटा, इक्सोरा चाइनेंसिस, थेस्पेसिआ पॉपुल्निया, मेल्वेविस्कस आर्बोरिअस; पीले डंठल वाले परजीवी कुस्कुटा यूरोपेइया, एमोर्फोफेलस बाल्विफर; इम्पेशेंस, बेल्सामिना (उगाए हुए), एल्पीनिआ ब्रेक्टीआटा, एल्पीनिआ मेलेक्सेंसिस, साउरउइया नेपेलेंसिस।*

ग्लोबा मल्टिफ्लोरा, रिंकोटेकम वेस्टीटम वन्य रूप में उगे हैं। कुछ जगहों पर *केलेडिअम* लगाए गए हैं। निकटवर्ती क्षेत्रों में यत्र-तत्र *जेफाइरेंथिस ग्रेंडिफ्लोरा,* हैं तो *जेफाइरेंथस केंडिडा* उद्यानों की शोभा बढ़ाते हैं। *क्रिइनम एशिएटिकम* की विपुल संख्या है। यूफॉर्बिया हिर्टा, *युफॉर्बिया नेरिफोलिया, यूफॉर्बिया रॉयलिएना टेबोर्नेमांटेना डाइवेरिकेटा, पुत्रांजीवा रॉक्सबर्गी* यहाँ के सामान्य पौधे हैं। *पीलिया ब्रेकटीटा* एवं *केथेरेंथस रोजिअस* भी हैं। अगस्त - सितम्बर में सबसे पहले *केरेक्स क्रुसिएटा* और उनके साथ ही *पाइक्रिअस, फिम्ब्रिस्टाइलिस, लिपोकार्फा* (स्क्वेरोसा) भी खिलते हैं। *हाइड्रोकोटाइल एशिएटिका, हाइड्रोकोटाइल जेवेनिका प्रभेद पोडेंथा, मेजस पर्सिके, इरिंजिअम फोटिडम ओल्डेनलेंडिया कोरिम्बोसा, साइपेरस हेस्पैन, साइपेरस एलुलेटस, ओपुंटिआ डिलेनी, इक्विसेटम डेबाइल, एब्रोमा ऑगस्टा, सैंकी* व्यू के निकट देखे जाते हैं। लाल पुष्पी क्लेरोडेंड्रम जेपोनिकम तथा *सफेद पुष्पी क्लेरोडेंड्रम कोलबुक्रिएनम, क्लेरोडेंड्रम, ब्रेक्टीएटम,* अगस्त से अक्टूबर तक सुहावने लगते हैं। *केरिका पेपेया, डोलिकोस लैब्लैब, रेफेनस सेटिवस, ब्रेसिका कम्पेस्ट्रिस, एलिअम सेपा, एलिअम सेटिवम, कोरिएंड्रम सेटिवम, एमेरेंथस कॉडेटस, एमेरेंथस विरिडिस, एकेलिफा हिस्पिडा* आदि की जमकर खेती होती है। नवम्बर में स्थानीय बाजार में *जल्पाइ (इलिओकार्पस फ्लोरिबंडस)* के फल आसानी से मिलते हैं। इससे तरह तरह के अचार बनते हैं। *इलिओकार्पस* के विशाल वृक्ष, *पोडोकार्पस नेरिफोलिअस, लिविस्टोना जेंकिंसिएना, लेजरस्ट्रोमिआ पार्वीफ्लोरा,* स्पोंडिअस पिन्नेटा, आर्टोकार्पस हेटेरोफाइला, आर्टोकार्पस चाप्लासा के मध्यम आकार के वृक्ष भी दिखाई देते हैं। नहरलागन के बाजारों में अगस्त मास से तीखे स्वाद वाले बैगन के साथ बाँस के नये कोंपल (बाँबूटेंगा) भी बिकने लगते हैं। कभी-कभी स्थानीय बाजार में कीवी फल (एक्टिनिडिआ चाइनेन्सिस) दिखाई देते हैं। आल्ने एवं जीरो अंचल में बड़े पैमाने पर इसकी खेती होती हैं। अरूणाचल के विभिन्न भागों से साइट्रस की कई जातियाँ बाजार में लाई जाती हैं। *रिसिनस कम्युनिस, थाइसेनोलेना मैक्सिमा,* बुडलेजा एशिएटिका खरपतवार के रूप भी देखे जाते हैं।

करी पत्ते के रूप में इस्तेमाल होने वाला *मुरेया कोनिगी* (कामिनी), *मुरेया पेनिकुलेटा, केलिस्टीमान लेंसिओलेटस, सायकस पेक्टिनेटा, पेंडेनस फोटिडा, मिमोसा पुडिका, मिमोसा हिमालाइका, एकेसिआ ऑरिकुलेफॉर्मिस एल्सटोनिआ वेनेनेटा, एल्सटोनिआ स्कोलेरिस, एक्विलेरिआ एगेलोचा, स्कोपेरिआ डल्सिस, स्टेफिटर्पेटा इण्डिका, इम्पेसेंस बाल्सेमिना, कोडिअम वेरिगेटम एवं इसके रोपभेद केरिओटा यूरेंस, एगल मर्मेलोस, एल्बिजिआ लेबेक, एल्बिजिआ प्रोसेरा, बॉहिनिआ पर्पुरिआ, इरिथ्रिना स्ट्रिक्टा, फाइलेंथस जातियाँ, सिडिअम गुआजावा, यूफॉर्बिआ पल्चेरिमा, टर्मिनेलिआ मिरिओकार्पा, डुआबंगा ग्रेंडिफ्लोरा, मेकेरेंगा डेंटिकुलेटा, मेकेरेंगा पेल्टेटा, ग्रेविलिआ रोबस्टा, एल्नस नेपालेंसिस, केसिआ जेवेनिका, केसिआ सिएमिआ, केसिआ नोडोसा, मेग्नोलिआ ग्रोंडिफ्लोरा, रोजा इंडिका, एमेरेंथस स्पिनोसस, यूपेटोरिअम ओडोरेटम लिआ इंडिका, लिआ ब्रेक्टेटा, लिआ एशिएटिका, लिआ क्रिस्पा, हेडेरा हेलिक्स, पेल्टोफोरम फेरूजिनिआनम, डायोस्कोरिआ बल्बिफेरा, डायोस्कोरिआ फ्लोरिबंडा, डायोस्कोरिआ पेंटेफाइला, सोंकस एस्पर, केलिकार्पा अर्बोरिआ, ओस्बेकिआ नुटेंस, ओस्बेकिआ स्टेलेटा, ऑक्सीस्पोरा पेनिकुलेटा, इम्बेलिआ राइबिस* (ribes), *पुनिका ग्रेनेटम, लुडविजिआ पेरेनिस, एकेसिआ पिनेटा, बेलमकेंडा चाइनेंसिस, हेमेरेकेलिस* एवं अन्य कई लिली, *साल्विआ आफिसिनेलिस, टेगेटस पेटुला, टेगेटस चाइनेंसिस, एलेमेंडा केथकार्टी, क्लिओम रुटिडोस्पर्मा, एसिरेंथिस बिडेंटेटा* के वन्य एवं रोपभेद सैंकी व्यू अंचल में फैले हैं।

सेरोपिजिआ बल्बोसा, पिलिआ ब्रेक्टीएटा एवं अति विरल-दुर्लभ फ्रेरिआ इण्डिका भा व स परिसर में लहलहा रहे हैं। *फाइकस रिलिजिओसा दुर्लभ है किंतु फाइकस इलेस्टिका, फाइकस हिर्टा, फाइकस पुमिला एवं फाइकस हिस्पिडा* यत्र-तत्र देखे जाते हैं। *एंथोसिफेलस कदम्बा* एवं बिक्सा ओरेलेना केन्द्रीय विद्यालय के निकट चिम्पू क्षेत्र में बहुतायत से हैं। जिजिफस मॉरिशिएना एवं *सेकेरम आफिसिनेल* घरों के इद गिर्द देखे जाते हैं। *टेक्टोना ग्रेंडिस, मीलिया एजेडेरेक, केसिआ फिस्टुला, युकेलिप्टस* की जातियाँ भी कहीं कहीं उगाई जाती है।

नवम्बर में *एमेंटोटेक्सस असेमिका* एवं रूद्राक्ष *(इलिओकार्पस स्फेरिकस)* में फल लगते हैं। औषधीय उद्यानों में सीताशोक (सेरेका असोका), *वाइटेक्स निगुंडो, एब्रस प्रिकेटोरिअस, रॉवोल्फिआ सर्पेंटिना, रॉवोल्फिया, टेट्राफाइला, पाइपर, मेलिना अर्बोरिआ, स्ट्रिक्नॉस नक्सवोमिका, रूबिया मंजीठ, टिनोस्पोरा कोर्डिफोलिआ* आदि भी पाए जाते हैं। रॉयल पाम *(रॉयेस्टेनिआ रेजिआ)* तथा अमेरिकी अशोक *(पोलिएल्थिआ लोंगिफोलिआ प्रभेद पेंडुला)* के ऊँचे पेड़ के साथ *एडेनेंथेरा पेवोनिना* एवं *रूबस* की कई जातियों के छोटे - छोटे पेड़ हैं। ''मरूआ'', ''अपोंग'' बनाने का सबसे अच्छा साधन *इल्यूसिन कोरेकेना* की खेती होती है। इटानगर की तलहटी में धान *(ओराइजा सेटिवा), लुफा एजिप्टिएका, लुफा रेक्टेंगुला, लेजेनेरिआ सिसेरेरिआ, मोमोर्डिका चेरेंशिया, ट्रिकोजेंथिस डायोइका, आपोमोइया बटाटा, कुकुमिस मेक्सिमा, कुकुमिस सैटिवा, सेचिअम इड्यूली, कॉक्सिनिआ ग्रेंडिस, फेजिओलस बल्गेरिस* आदि की खेती होती है।

इस अंचल का अनावृत बीजी पुष्पी पौधा *सायकस पेक्टिनेटा* विरले ही देखा जाता है। *पाइनस रॉक्सबर्गी, पाइनस केशिया* छोटे-छोटे वनांचलों में लगाए गए हैं। हर आदमी की पसंद होने पर भी *एरॉकेरिआ हेटरोफाइला* के छोटे पौधे ही नजर आते हैं। *थूजा ओरिएंटेलिस* उद्यानों में लगाए जाते हैं परन्तु *क्रिप्टोमेरिआ जेपोनिका* सर्वत्र उपलब्ध है। ज्वर से छुटकारा दिलाने वाला शाकीय पौधा 'सहदेइया' *(वर्नोनिआ सिनेरेरिआ), स्पिलेंथिस एक्मेला* जिसका उपयोग विशेषतः बदन दर्द, तथा गठिया के लिए उपयोग होता है, *एजेरेटम क्वाइज्वाइडिस, एजेरेटम हॉस्टोनिएनम, पोलिगोनम* की प्रजातियाँ एवं पर्णांग व समवर्गी जैसे *डाइक्रेनोप्टेरिस, डिप्टेरिस वालिची, ड्रायोप्टेरिस, लाइकोपोडिअम, सेलेजिनेला, माइक्रोसोरस, एजिओप्टेरिस, इवेक्टा, पोलिपोडिअम, लाइगोडिअम, इक्विसेटम;* ब्रायोफाइटस जैसे *रिक्सिआ, एंथोसेरस, पेलिआ, पोरेला* आदि अक्टूबर-दिसम्बर में सुलभ होते हैं। नवम्बर के अंत में लम्बे - लम्बे घासों के पुष्पपुंज नयनाभिराम हो जाते हैं। इटानगर डाकघर के द्वार पर इकलौते *'ओर्मोसिआ रोबस्टा'* के सुन्दर फूल व फल वृक्ष तल में बिखरे रहते हैं।

———

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में राजभाषा कार्यान्वयन (2008-09)

1. अधीनस्थ कार्यालयों के निरीक्षण

- डा. एम. संजप्पा, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा 7.4.2008 को पश्चिमी क्षेत्रीय केन्द्र, पुणे का निरीक्षण किया गया।
- डा. एम. संजप्पा, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा 16.6.2008 को उत्तरी क्षेत्रीय केन्द्र, देहरादून का निरीक्षण किया गया।
- डा. एम. संजप्पा, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा 14.11.2008 को पूर्वी क्षेत्रीय केन्द्र, शिलांग का निरीक्षण किया गया।
- डा. डी. के. सिंह, अपर निदेशक व राजभाषा अधिकारी, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा 4.7.2008 को दक्कन क्षेत्रीय केन्द्र, हैदराबाद का निरीक्षण किया गया।
- श्री नवीन चौधरी, हिन्दी अधिकारी, मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा 7.1.2009 को दक्षिणी क्षेत्रीय केन्द्र, कोयम्बटूर का निरीक्षण किया गया।
- डा. एम. संजप्पा, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा 10.3.2009 को अंडमान व निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर का निरीक्षण किया गया।

2. पर्यावरण एवं वन मंत्रालय / राजभाषा विभाग द्वारा भा. व. स. के विभिन्न कार्यालयों के निरीक्षण

- डा. बी. पी. नीलरत्न, संयुक्त सचिव, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा 31.10.2008 को मध्य क्षेत्रीय केन्द्र, इलाहाबाद का निरीक्षण किया गया।
- उपनिदेशक, (कार्यान्वयन) राजभाषा विभाग द्वारा 21.7.2008 को अंडमान व निकोबार क्षेत्रीय केन्द्र, पोर्ट ब्लेयर का निरीक्षण किया गया।
- श्री सु. प्र. चौबे, निदेशक (राजभाषा) पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा 22.1.2009 को मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता, का निरीक्षण किया गया।
- डा. बी. पी. नीलरत्न, संयुक्त सचिव, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा 27.2.2009 को अरूणाचल क्षेत्रीय केन्द्र, इटानगर कार्यालय का निरीक्षण किया गया।

3. हिन्दी पखवाड़ा / कार्यशाला / संगोष्ठी आदि

- भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के सभी कार्यालयों में सितम्बर 2008 में हिन्दी सप्ताह/पखवाड़ा का आयोजन किया गया।
- 17 सितम्बर 2008 को भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा ''भूमंडल का बढ़ता तापमान : समस्या और समाधान'' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में कोलकाता नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (क्षेत्र - 8) के सदस्य कार्यालयों ने भी भाग लिया।
- दिनांक 15.12.2008 व 13.3.2009 को मुख्यालय भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता में हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया।

4. विशेष प्रशिक्षण में भा. व. स. के अधिकारियों की सहभागिता

प्रशिक्षण और विकास केन्द्र (सेंटाड) बेंगलूर द्वारा संसदीय राजभाषा समिति के निरीक्षण के दौरान बेहतर निष्पादन सुनिश्चित करने के उद्देश्य से दिनांक 5 एवं 6 जनवरी, 2009 को आयोजित विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम में विभाग के निम्नलिखित अधिकारियों ने सहभागिता की।

1. डा. परमजीत सिंह, संयुक्त निदेशक, मुख्यालय, भा. व. स. कोलकाता।
2. डा. पी. सत्यनारायण, वैज्ञानिक डी, द. क्षे. के. कोयम्बटूर।
3. डा. सी. मुरूगन, वैज्ञानिक सी, अ. नि. क्षे. के. पोर्ट ब्लेयर।
4. डा. एस. एल. मीना, वैज्ञानिक बी, शुष्क अं. क्षे. के., जोधपुर।
5. श्री नवीन चौधरी, हिंदी अधिकारी, मुख्यालय, भा. व. स. कोलकाता।

5. केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली द्वारा आयोजित गहन हिंदी कार्यशाला में निम्नलिखित कर्मचारियों ने भाग लिया।

1. श्री सुबीर सेन, अवर श्रेणी लिपिक मुख्यालय, भा. व. स. कोलकाता।
2. श्री मणिशंकर दास, अवर श्रेणी लिपिक, मुख्यालय, भा. व. स. कोलकाता।

6. हिंदी सलाहकार समिति की बैठक

- दिनांक 25.3.2009 को पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के हिंदी सलाहकार समिति की बैठक में डा. देवेन्द्र कुमार सिंह, अपर निदेशक व राजभाषा अधिकारी एवं श्री नवीन चौधरी, हिंदी अधिकारी ने भाग लिया।

7. प्रोत्साहन योजना

राजभाषा विभाग की प्रोत्साहन योजना के तहत निम्नलिखित कर्मचारी पुरस्कृत हुए :

- श्री अशोक बसु, प्रवर श्रेणी लिपिक, मुख्यालय, भा. व. स. कोलकाता
- श्रीमती कल्याणी घोष, मुख्य सहायक, मुख्यालय, भा. व. स. कोलकाता
- श्री तापस कुमार घोष, मुख्य सहायक, मुख्यालय, भा. व. स. कोलकाता
- श्री सुबीर कुमार सेन, अवर श्रेणी लिपिक, मुख्यालय, भा. व. स. कोलकाता
- श्री हाराधन बेज, पुस्तकालय व सूचना अधिकारी, मुख्यालय, भा. व. स. हावड़ा
- श्री मणिशंकर दास, अवर श्रेणी लिपिक, मुख्यालय, भा. व. स. कोलकाता
- श्री लव कुमार दास, अवर श्रेणी लिपिक, मुख्यालय, भा. व. स. कोलकाता
- श्री अंचल विश्वास, अवर श्रेणी लिपिक, मुख्यालय, भा. व. स. कोलकाता

8. नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, पोर्ट ब्लेयर

1. अंडमान निकोबार क्षेत्रीय केंद्र, पोर्ट ब्लेयर को वर्ष 2007 - 2008 में राजभाषा नीति के श्रेष्ठ निष्पादन के लिए नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया ।

9. नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, कोलकाता

मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

1. दिनांक 28. 07. 2008 की बैठक में डा. ए. के. वैश्य, प्रभारी संयुक्त निदेशक ने भाग लिया ।
2. दिनांक 22. 08. 2008 की बैठक में निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण को लगातार दूसरे वर्ष उत्कृष्ट राजभाषा कार्यान्वयन हेतु शील्ड प्रदान किया गया ।
3. दिनांक 20.01.2009 की बैठक में डा. ए. के. वैश्य, प्रभारी निदेशक ने भाग लिया ।
4. समिति द्वारा पूर्वायोजित प्रतियोगिताओं के प्रतिभागी श्री एम. के. पाठक (वाद. विवाद) तथा श्री दीनेश्वर साह (निबन्ध) को पुरस्कृत किया गया ।

5. समिति की पत्रिका ''स्वर्णिमा'' में प्रकाशित विभागीय वैज्ञानिक डा. एस. एल. गुप्ता के निबन्ध (महिलाओं का पर्यावरण संरक्षण में योगदान) को उत्कृष्ट रचना का पुरस्कार प्रदान किया गया ।

- **कोलटालिक क्षेत्र** 8

1. दिनांक 5 व 6 नवम्बर 2008 को कोलकाता क्षेत्र 8 के सदस्य कार्यालयों के लिए भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा हिंदी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया ।

2. दिनांक 11 दिसम्बर 2008 को कोलकाता नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति क्षेत्र 8 के सदस्य कार्यालयों की वार्षिक बैठक आयोजित की गई ।

केंद्रीय राष्ट्रीय पादपालय में आयोजित हिंदी दिवस समारोह

केंद्रीय राष्ट्रीय पादपालय में आयोजित हिंदी दिवस समारोह